सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ६[illegible]

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

# नीति-शिक्षा-संग्रह

## दूसरा भाग

प्रकाशक—

भैरोंदान जेठमल सेठिया
बीकानेर

वीर सं० १९८३ पहली बार न्योछावर ≡।।।)

सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस बीकानेर. ( राजपूताना) ता० २६-२-२७-२०००

# प्रस्तावना.

सज्जनो! नीतिशिक्षासंग्रह का पहला भाग आपने पढ़ा ही होगा, इस समय उस का दूसरा भाग आपके सामने उपस्थित कर हृदय आनन्द से उल्लसित हो उठा है। यह छोटी सी पुस्तक उन उत्तम आवश्यकीय शिक्षारूपी रत्नों की पेटी है, जिन की आवश्यकता मानव समाज को अपने जीवन में पड़ा ही करती है और इनका उपयोग कर अपने जीवन को सुखमय बना सकता है। कैसा भोजन किस समय में हितकारी होता है, व्यायाम की उपयोगिता और उससे होने वाले लाभ तथा हानियाँ, दूध दही घी आदि प्रतिदिन काम में आनेवाली वस्तुओं का सेवन किस समय लाभदायक और किस समय हानिकारक होता है?, वीर्यरक्षा की आवश्यकता, विष मिलेहुए भोजन की परीक्षा, स्वास्थ्य रक्षा के नियम, तेलकी मालिश करने से लाभ और हानियाँ साँप विच्छू कुत्ते आदि के काटे की दवाएँ, हैज़ा हिचकी नहरुआ खाँसी आदि अनेक रोगों की दवाएँ, छात्रों के लिए शिक्षाएँ, मुहूर्त्तज्ञान, व्यापार सम्बन्धी अनुभूत शिक्षाएँ, देशसेवक जातिसेवक वकील डाक्टर कर्मचारी किसान नौकर और व्यापारी को कैसा होना चाहिए तत्सम्बन्धी, तथा नैतिक और आध्यात्मिक आदि जीवनोपयोगी विषयों की उत्तमोत्तम शिक्षाएँ सरल भाषा में गूँथी गई हैं; अतः थोड़े पढ़े भी इस से यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। जन साधारण इस का लाभ लें, इसी इच्छा से प्रेरित हो इस

पुस्तक का मूल्य लागत से भी कम रक्खा गया है, इसका ही क्या ? इस ग्रन्थमाला की सब पुस्तकों का मूल्य कम रक्खा जाता है। हमें आशा है कि सज्जन लोग इस से लाभ उठाकर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे।

निवेदक—

**भैरोंदान जेठमल सेठिया**

# नीति-शिक्षा की विषयसूची

## १ स्वास्थ्यरक्षामणिमाला (१-४३)


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| व्यायाम | ६ से ११, ४८ |
| दूध | १३ से १६ |
| दही | १६ से २१ |
| घी | २१ |
| हवा | २१ से २८ |
| वीर्यरक्षा | २२ से २३ |
| विष मिश्रित भोजन परीक्षा | २४ से २५ |
| तन्दुरुस्ती के नियम | २७ |
| शयन के नियम | २९ |
| तेलकी मालिश | ३० |
| बालकों के ज्वर की दवा | ३१ |
| विच्छु काटे की दवा | ३२ |
| पागल कुत्ते काटे की दवा | ३२ |
| सिर दर्द की दवा | ३२ से ३३ |
| कान रोग की दवा | ३३ |
| सांप काटे की दवा | ३४ से ३५ |
| नेत्ररोग नाशक दवा | ३५ से ३७ |
| हैजे से बचने के उपाय | ३७ से ३९ |
| शीतोपलादि चूर्ण | ३६ |
| कालाजीरी की चाय | ४० |
| हिचकी का इलाज़ | ४० |
| अतीसार नाशक दवा | ४० से ४१ |
| खांसी की दवा | ४२ |
| नहरुआ (वाला) की दवा | ४२ |
| बुद्धिवर्धक सरस्वती चूर्ण | ४३ |

२ छात्रादि आचरण शिक्षा मणिमाला (४४-५९)

३ गृहस्थोपयोगी मणिमाला

| | |
|---|---|
| मुहूर्त्त | ६० से ६४ |
| व्यापार | ६५ से ७० |
| समाज के नेता, पंच, सभापति, ट्रस्टी आदि के कर्त्तव्य | ७० |
| घोड़े के लक्षण | ७१ से ८६ |
| सच्चा सुखी | ८७ |
| ,, धर्मात्मा | ,, |
| ,, देश सेवक | ,, |
| ,, जातिसेवक | ,, |
| ,, अधिकारी | ,, |
| ,, वकील | ८६ |
| ,, डॉक्टर | ,, |
| ,, नौकर | ६० |
| ,, व्यापारी | ,, |
| ,, किसान | ,, |
| ,, साधु | ९१ |
| नीति की शिक्षाएँ | ९१ से ६६ |
| गायके लक्षण | ६६ से ६७ |
| नीति की शिक्षाएँ | ६७ से ९८ |
| उपयोगी कुछ वस्तुओं के गुण | ६८ से १०१ |
| नीति मणि माला | १०२ |


नोट----यद्यपि इन के अतिरिक्त और भी उपयोगी शिक्षाएँ इसमें हैं, तथापि विशेष २ विषयों की सूची पाठकों के सुभीते के लिए लिख दी गई है।

ॐ

* श्री वीतरागाय नमः *

# नीति-शिक्षा-संग्रह

## दूसरा भाग

### स्वास्थ्यरक्षामणि—माला

[१]

(१) प्रत्येक मनुष्य को प्रातःकाल सूर्योदय से पहले ब्राह्म मुहूर्त में उठना चाहिये, और उठते ही देवाधिदेव परम पिता परमात्मा का स्मरण करना चाहिये, प्रातःकाल में त्रिलोकीनाथ निरञ्जन देव का स्मरण--चिन्तन करने से दिनभर आत्मा में शान्ति—सुख का प्रकाश होता है, और अशान्ति— दुःख का नाश होता है; बाद में सूर्योदय के पहले शौच आदि क्रिया से निवृत्त होकर धार्मिक क्रिया करनी चाहिये, तत्पश्चात् व्यावहारिक क्रिया करनी चाहिये।

(२) यदि सवेरे ही काम पर जाने से पहले ही दुग्ध–पान या कुछ जल– पान कर लिया जाय तो अति लाभदायक है। इस से शरीर पुष्ट होता है और ज्वर आने का अंदेशा नहीं रहता। ताज़ा भोजन दस ग्यारह बजे के क़रीब करना चाहिये और सांझ की ब्यालू सूर्य डूबने के पहले ही कर लेनी उचित है, रात को नहीं; क्योंकि रात का भोजन अंधा भोजन है— रात में जीव जन्तु भली भांति दिखाई नहीं देते, तथा सूर्य की किरणों से जो छोटे२ जीव-जन्तु एक जगह बैठे रहते हैं, वे रात्रि में उड़ कर भोजन में गिर जाते हैं, और खाने में आ जाते हैं। कई मनुष्य रात्रि भोजन में विषैले जन्तु भक्षण कर प्राणान्त कष्ट तक पा चुके हैं ; इसलिये दिन ही में भोजन करना लाभ दायक है। जिन की अग्नितेज़ हो और जिन को शारीरिक या मानसिक श्रम करना पड़ता हो, वे लोग यदि मुख्य भोजनों के बीच में दिल दिमाग़ को तरी या ताक़त लाने वाला थोड़ा भोजन कर लें तो बुरा नहीं है।

(३) भोजन करने से पहले 'जल' पीने से अग्निमन्द होती है और शरीर में निर्बलता आती है। भोजन के अन्त में पानी पीने से कफ बढ़ता है ; किन्तु भोजन के बीच में थोड़ा थोड़ा पानी पीने से अग्नि बढ़ती है, और शरीर ठीक रहता है।

(४) भूख में पानी पीना और प्यास में भोजन करना हानि कारक है। भूख में विना भोजन किये जल पीने से 'जलोदर' रोग

हो जाता है। इसी तरह प्यास में विना जल पिये भोजन करने से गुल्म रोग हो जाता है।

(५) जो मनुष्य भोजन का समय होने से पहले ही भोजन कर लेते हैं. उनका शरीर अशक्त हो जाता है। अशक्त होने से सिर में दर्द, अजीर्ण हैजा आदि भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं; इन प्राण-घातक रोगों के पञ्जों में फंसकर विरले ही भाग्यवान् बचते हैं; इसलिये भोजन के नियत समय पर विशेषत: खूब भूख लगने पर भोजन करना चाहिये।

(६) जो मनुष्य भोजन के समय से बहुत पीछे भोजन करते हैं, उनकी पाचन शक्ति— आहार पचाने वाली अग्नि को वायु नाश कर देता है। नियत समय से पीछे जो भोजन किया जाता है, वह अग्नि के मन्द हो जाने के कारण बड़ी कठिनता से पचता है और फिर दूसरी वार भोजन करने की इच्छा नहीं होती। इसलिए भूख लगने पर भोजन के समय को टाल देना बुद्धिमानी नहीं है।

(७) बहुत ही गर्म भोजन करने से बल का क्षय होता है। शीतल और सूखा हुआ अन्न कठिनता से पचता और उस का रस अच्छा नही बनता है। जल आदि से भीगा हुआ अन्न ग्लानि करता है, सड़ा हुआ बहुत दिनों का रक्खा हुआ अन्न बुद्धि को जड़ करता है और शरीर में सुस्ती लाता है; इसलिए ऐसे अन्नों से बचना चाहिये तथा ताज़ा और रुचिकारक भोजन खाना चाहिये।

(८) पेट के चार भाग कीजिये, उन में से दो भाग अन्न से भरिये, तीसरा भाग जल से और चौथा भाग वायु के चलने फिरने को खाली रहने दीजिये। मतलब यह है कि कुछ कम खाना चाहिये, किन्तु अधिक खाना अच्छा नहीं, बहुत अधिक खाने से शरीर कमजोर हो जाता है, शक्ति घट जाती है और आलस्य घेर लेता है, तथा पेट फूलना, पेट में गड़गड़ाहट आदि उपद्रव होते हैं। इसलिए मात्रा के अनुसार ही खाना चाहिये, मात्रा से अधिक नहीं।

(९) बुद्धिमानों को भूख लगने पर, अपने शरीर, अपनी प्रकृति और देश काल आदि के अनुकूल भोजन करना चाहिये। जो पदार्थ शीघ्र पचने वाले, पवित्र, स्वादिष्ट और हितकारी हों, वही खाने चाहियें, सूखे, बासी, सड़े हुए, अध पके, जले हुए, और बेस्वाद पदार्थ न खाने चाहियें।

(१०) बहुत जल्दी जल्दी खाने से भोजन के गुण दोष मालूम नहीं होते और भोजन देर में पचता है; क्योंकि दांतों का काम आंतों को करना पड़ता है। इसलिये भोजन को खूब रोंथकर (चबाकर) खाना चाहिये, अच्छी तरह चबाकर खाया हुआ भोजन सहज में पच जाता, और अधिक पुष्टि करता है।

(११) वैद्यक शास्त्र में सवेरे शाम, दो समय भोजन करने की आज्ञा है। सवेरे का भोजन १० बजे के करीब और शाम का भोजन सूर्य अस्त होने के पहले ही कर लेना चाहिये। शाम के भोजन में

कदापि देर नहीं करना चाहिये; क्योंकि शाम को देर करके खाने से आहार अच्छी तरह नहीं पचता और अजीर्ण हो जाता है।

(१२) प्यास लगने पर पानी न पीने से कण्ठ और मुख सूख जाते हैं, कान बन्द हो जाते हैं और हृदय में पीड़ा होती है, अतः प्यास लगने पर 'जल' अवश्य पीना चाहिये।

(१३) बिलकुल जल न पीने से अन्न नहीं पचता और अधिक जल पीने से भी अन्न अच्छी तरह नहीं पचता; इसलिये ऐसा भी न करे कि भोजन करके लोटा भर भुका जाय और ऐसा भी न करे कि जल पीवे ही नहीं। अग्नि बढ़ाने के लिये बारम्बार थोड़ा थोड़ा पानी पीना हितकारी है।

(१४) भोजन हमेशा एकाग्रचित्त होकर किया करो। भोजन करते समय सब तरफ़ का ध्यान छोड़ दो। जब तक भोजन न पच जाय, तब तक चिन्ता, ईर्षा, द्वेष क्रोध और कलह आदि से बिलकुल बचो; क्योंकि भोजन के समय चिन्ता, द्वेष, कलह आदि करने से भोजन अच्छी तरह नहीं पचता। भोजन अच्छी तरह न पचने से अजीर्ण आदि रोग हो जाते हैं।

(१५) हमेशा एक ही प्रकार का रस खाना भी उचित नहीं है, बहुत 'मीठा' खाने से ज्वर, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, प्रमेह और मंदाग्नि आदि रोग हो जाते हैं। बहुत 'खट्टा' रस खाने से खुजली, पीलिया, सूजन, और कुष्ट आदि रोग उत्पन्न

हो जाते हैं। 'नमकीन' रस अधिक खाने से नेत्र-पाक, रक्त-पित्त आदि अनेक रोग उत्पन्न होते हैं, शरीर में सलवटें पड़ जाती हैं, बाल उड़ जाते और सफेद हो जाते हैं। अधिक 'चरपरी चीज़ें' खाने से मुख तालु कण्ठ और होठ सूखते हैं। मूर्छा और प्यास उत्पन्न होती है, एवं बल तथा कान्ति का नाश होता है। इसी तरह 'कड़वे' और 'कसैले' पदार्थ अधिक खाने से भी अनेक रोग हो जाते हैं। इसलिये किसी एक रस को ज्यादा नहीं खाना चाहिये।

(१६) भोजन करते समय पहले मीठे पदार्थ खाना, बीच में खट्टे और खारे पदार्थ खाना, अन्त में चरपरे कड़वे या कसैले पदार्थ खाना उचित है।

(१७) यदि अच्छे पके हुए फल खाना हो तो भोजन करने के बाद खाना चाहिये, लेकिन कच्चे या सड़े फल खाना हानि-कारक है।

(१८) दाल शाक आदि में मसाले खाना अच्छा है, लेकिन बहुत ही ज्यादा मसाले खाना पेट को नुकसान पहुँचाता है।

(१९) भोजन में बहुधा खारे खट्टे चरपरे गर्म और दाह करने वाले पदार्थ खाये जाते हैं — उन से पित्त की वृद्धि होती है; इसलिये पित्त की वृद्धि रोकने को भोजन के अन्त में दूध अवश्य पीना चाहिये।

(२०) यदि फल ही का भोजन हो तो पहले अनार अंगूर खाना ठीक है, किन्तु केला, ककड़ी नहीं। अगर भोजन में रोटी दाल, भात, शाक, और दूध आदि हों तो सब से पहले रोटी और शाक खाओ, इस के पीछे नर्म दाल भात खाओ, अन्त में दूध या छाछ आदि पतले पदार्थ खाओ, क्योंकि वैद्यक शास्त्र में पहले कड़े (सख़्त) पदार्थ, बीच में नर्म पदार्थ और अन्त में पतले पदार्थ खाना लिखा है।

(२१) मूंग चांवल आदि पदार्थ हलके होते हैं, किन्तु मात्रा से अधिक खाने से वे भारी हो जाते हैं। उड़द आदि पदार्थ स्वभाव से भारी होते हैं और पिसे हुए अन्न पिट्ठी आदि संस्कार से भारी हो जाते हैं। जिसको मंदाग्नि हो, अर्थात् जिसे भूख कम लगती हो, वह मनुष्य मात्रा से भारी, स्वभाव से भारी, और संस्कार से भारी पदार्थ न खावे।

(२२) मनुष्यको चाहिये कि विना पकाया कोरा अन्न न खावे; क्योंकि ऐसा अन्न अच्छी तरह नहीं पच सकता है। यदि दोपहर के भोजन के बाद सेंधानोन और जीरा आदि मिलाकर मट्ठा पिया जाय और शाम को दूध पिया जाय, तो भोजन अच्छी तरह पच जायगा और किसी तरह का रोग न होगा।

(२३) भोजन के पीछे चित्त को अप्रसन्न करनेवाली भ्रम और चिन्ता करने वाली बातें मत सुनो। बदबूदार और मन बिगाड़ने

वाली चीजों को न तो देखो, और न छूओ। दुर्गन्धित चीजों को मत सूंघो और अत्यन्त हँसो भी नहीं। भोजन के बाद बुरी चीज़ें देखने, सूंघने और ज़ोर से हँसने से उलटी हो जाती है।

(२४) अत्यन्त जल पीने, एक आसन पर बैठे रहने, दिशा- पेशाब और अधोवायु आदि के वेगों को रोकने और रात को जागने से, समय पर किया हुआ अनुकूल और हलका भोजन भी नहीं पचता, और रोग पैदा होता है।

(२५) भोजन करने के बाद गर्मी के मौसम के सिवा और मौसम में सोना अहितकारी है, सुश्रुत में लिखा है कि—" दिन में सोना विकाररूप है, दिन में सोने वालों के पाप कर्म का बंध होता है तथा वात पित्त कफ़ और रक्त का प्रकोप होता है, और उन के प्रकोप से खाँसी, श्वास ज़ुकाम, सिर का भारीपन, अंगका टूटना, अरुचि, ज्वर और मंदाग्नि हो जाती है,, ; इसलिए दिन में नहीं सोना चाहिये।

(२६) मनुष्य को भोजन करके परिश्रम करना और नींद भरकर सोना, दोनों बातें हानिकारक हैं। भोजन के पीछे सौ क़दम टहल कर लेट जावे। पहले सीधा सोकर आठ सांस ले, फिर दाहिनी तरफ़ करवट लेकर सोलह सांस ले और पीछे बाईं करवट लेकर बत्तीस सांस ले। इस तरह ८। १६। ३२ सांस लेने के बाद फिर चाहे सो काम करे। प्राणियों की नाभि के ऊपर बाईं तरफ़ अग्नि का स्थान है, इस कारण भोजन पचाने के लिये बाईं करवट ही सोना चाहिये। बाईं करवट सोने से बुद्धि बढ़ती है।

२७ भोजन करके बैठ जाने से आलस्य और ऊँघ आती है; लेट जाने से शरीर पुष्ट होता है, दौड़ने से मृत्यु पीछे दौड़ती है और धीरे धीरे चलने अर्थात् टहलने से शरीर निरोग रहता है।

२८ भोजन करके—स्त्री प्रसंग करना, आग तापना, धूप में फिरना, घोड़े वगैरह की सवारी करना, रास्ता चलना, युद्ध करना, गाना, अधिक बोलना, बहुत हँसना, बहुत सोना, बैठना, कसरत करना, और पानी आदि पतली चीजें अधिक पीना हानिकारक है। ये सब काम तन्दुरुस्ती चाहने वालों को कम से कम एक घंटे के लिये छोड़ देने चाहिये।

२९ चतुर मनुष्य को चाहिये कि भद्दे आसन से बैठकर भोजन न करे। खाते खाते उठ बैठना और फिर खाने पर आ बैठना, दोनों हाथ जूठे करना, भोजन बिखेरना, मुँह से चपचप की आवाज़ करना, बड़े बड़े ग्रास लेना, तथा साथ में भोजन करने वालों को ग्लानि करने वाला कोई काम करना—ये सब वाहियात काम नहीं करने चाहिये।

३० व्यायाम करना प्राणीमात्र को अत्यन्त आवश्यक है। व्यायाम करने से शरीर पुष्ट और नीरोग रहता है, तथा शरीर की कान्ति बढ़ती है, इसलिए स्त्री पुरुष दोनों को कोई न कोई व्यायाम अवश्य करना चाहिये। पुरुषों का व्यायाम—स्वच्छ वायु में घूमना, दण्ड पेलना, मुद्गर घुमाना, घोड़े की सवारी करना, कुश्ती करना इत्यादि और स्त्रियों का व्यायाम—स्वच्छ हवा में घूमना, चक्की चलाना, कूट

आदि से पानी भरना, दही विलौना, खांडना, कूटना आदि गृहस्थ के कार्य करना है।

३१ व्यायाम करने वाले मनुष्यों को कुछ भी चिकना या ताकतवर भोजन अवश्य करना चाहिये, सूखी रोटी खाने वालों को कसरत लाभदायक नहीं होती। ताकतवर और चिकने पदार्थ खाने वालों को कसरत करना हमेशा हितकारी है। विशेष कर जाड़े और वसन्त के समय में तो कसरत बहुत ही लाभदायक है।

३२ कसरत अपने आधे बल के अनुसार करना चाहिये; क्योंकि ज्यादा कसरत करने से हानि होती है, बहुत ज्यादा करने से क्षय, प्यास, अरुचि, रक्तपित्त, भ्रम, थकान, खाँसी, शरीर का सूखना, या खुश्की बुखार और श्वास (दमा) ये रोग हो जाते हैं। जब मुँह सूखने लगे, मुँह से जल्दी जल्दी हवा निकलने लगे, अर्थात् दम फूलने लगे या शरीर के जोड़ों और कोख में पसीना आने लगे, तब कसरत करना बन्द कर दे। यही आधे बल के लक्षण हैं।

३३ कसरत करते करते कुछ खाना या चबाना ठीक नहीं है। कसरत करके दूध-मिश्री, या घीदूध मिश्री मिलाकर पीना चाहिये, अथवा अपनी प्रकृति और पाचनशक्ति के अनुसार दूसरी और कोई तर चीज़ खानी चाहिये।

३४ व्यायाम करते समय लंगोट, रूमाली या जाँघिया वगैरह ऐसी चीज़ बांध ले, जिससे फोते ढीले न हों, क्योंकि लंगोट वगैरह न बांधने से फोते लटक आने और नामर्द हो जाने का भय है।

३५ जिन मनुष्यों को श्वास, खाँसी, रक्तपित्त आदि का रोग हो उन्हें, तथा भोजन के बाद, क्षीण और जिसे चक्कर आते हों, इन लोगों को— व्यायाम नहीं करना चाहिये।

३६ बुद्धिमानों को चाहिये कि अपनी अवस्था, अपना बला-बल, देश, काल और भोजन आदि को विचार कर कसरत करें, नहीं तो रोग होने का भय है। मस्तिष्क से काम करने वालों और छोटे बालकों को भारी कसरत नहीं करना चाहिये, उनको घूमना तथा सैंडो की कसरत करना अत्यन्त हितकारी है। कसरत प्रातःकाल में करना चाहिये यदि भोजन करके कसरत करना हो तो भोजन से दो घंटे बाद करना चाहिये।

३७ मोटे और दुहरे कपड़े के छने से बिना छाने जल काम में न लाना चाहिये, क्योंकि जल में छोटे छोटे जन्तु होते हैं, जल न छानने से वे जीव पानी के साथ पीने में आ जाते हैं; अतः नहारू आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं; इसलिए विना छना जल काम में न लाना चाहिये। जिस जगह का पानी गंदला और भारी हो, वहां के जल को फिटकरी निम्बोली आदि से साफ़ किये विना तथा गर्म किये विना नहीं पीना चाहिये।

३८ बुख़ार, अतिसार, नेत्ररोग, कान के रोग, वायुरोग, पेट का अफारा, पीनस और अजीर्ण रोग वाले स्नान न करें। कसरत

नोट— सैंडो नाम का एक यूरोप का प्रसिद्ध पहलवान हुआ है, वह उम्बलस आदि द्वारा कसरत करता था।

करके स्त्री प्रसंग करके या कहीं से आकर भी पसीने में तत्काल स्नान हानिकारक है।

३९ गर्मी से तपे हुए शरीर से एकाएक शीतल जल में घुस जाने, या गर्मी से तपे हुए सिर पर ठण्डा पानी डालने, दूर की चीजें बहुत ध्यान लगाकर देखने, दिन में सोने और रात को जागने, या नींद आने पर भी न सोने, अत्यन्त रोने या बहुत दिन तक रोने, रंज-- शोक करने, क्रोध करने, क्लेश सहने, चोट वगैरह लग जाने, अत्यन्त मैथुन करने, सिरका, आरनाल नाम काँजी, खटाई, कुलथी उड़द वगैरह के अधिक खाने, मल मूत्र और अधोवायु के वेगों को रोकने, अधिक पसीना लेने, आँखों में अधिक धूल गिरने, अधिक धूप में फिरने, आती हुई कै को रोकने, अत्यन्त वमन (कै) करने, किसी चीज़ की भाफ़ लेने या ज़हरीली चीजों की भाफ लेने, आसुओं को रोकने, बहुत ही बारीक़ चीज़ों के देखने, बहुत तेज़ सवारी पर चढ़ने, अधिक नशा करने, चमकीली चीजों को देखने, धुएँ में रहने, लेटे लेटे लिखने या पढ़ने, सिर में तेल न डालने, मिट्टी के तेल के चिराग से पढ़ने लिखने, वगैरह वगैरह कारणों से नेत्रों की बीमारियाँ हो जाती हैं, तथा नेत्रों की ज्योति मन्द हो जाती है।

४० हरी चीजों के देखने से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है, इसलिये बागों की सैर करना या दूसरी दूसरी हरी चीजें देखना आखों के लिये लाभदायक है।

४१ त्रिफला (हरड़ बहेड़ा आमला) के जल से आंखें धोने से आंखों की ज्योति मन्द नहीं होती, तथा गर्मी शान्त होती है। त्रिफला के काढ़े से आँखें धोने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं।

४२ नाक के बाल उखाड़ने से नेत्र-ज्योति कमजोर हो जाती है, तथा नाक के बालों से नाक के द्वारा जानेवाली रज रुकती है; इसलिए नाक के बाल कभी न उखाड़ने चाहिये।

४३ दूध—बालक वृद्ध और जवान सब के लिए हितकारी है प्राणियों की प्राण रक्षा के लिए फल-फूल शाकपात अनाज आदि जितने उत्तमोत्तम पदार्थ हैं उन सब में दूध सर्वश्रेष्ठ है। दूध सब जीव धारियों के जीवन और सब प्राणियों के अनुकूल है। बालकों को जिन्दा रखने, निबलों को बलवान बनाने, जवानों को पहलवान बनाने, बूढ़ों को बुढ़ापे से निर्भय करने, रोगियों को रोग से मुक्त करने, निर्बलों को बल देने, सन्तान इच्छुकों की अभिलाषा पूरी करने की ताक़त जैसी दूध में है, वैसी दूसरे पदार्थ में नहीं है। यह बात निर्विवाद सिद्ध हो चुकी है कि दूध के समान पौष्टिक और गुणकारक पदार्थ इस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है, सच पूछो तो दूध इस मृत्यु लोक का 'अमृत' है, जो मनुष्य बचपन से बुढ़ापे तक दूध का सेवन करते हैं, वे निःसन्देह शक्तिशाली; हृष्ट-पुष्ट, वीर्यवान् और दीर्घजीवी होते हैं।

४४ आज कल बाजारों में हलवाइयों की दूकान पर जो दूध मिलता है, वह महा निकम्मा और रोगों का खजाना होता है, दूध दु-

हने वाले चाहे जैसे मैले कुचैले गंदे बर्त्तनों में दूध दुह लेते हैं, ग्वाले या हलवाई जैसा पानी हाथ लगता है, वैसा ही उस में मिला देते हैं, मक्खी आदि जन्तुओं के गिर जाने की परवाह नहीं करते तथा वे रोगीले पशुओं का भी दूध बेचते रहते हैं, तब हमें पवित्र सुधा समान दूध कैसे मिल सकता है। बाज़ारू दूध लाभ के बदले अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करता है। ऐसे दूध के बदले किसी उत्तम कुएँ का जल पीना ही लाभदायक है। पहले ज़माने में हरएक गृहस्थ के यहां पशु रहते थे, इस से उन्हें शुद्ध दूध घी मठा आदि स्वास्थ्यप्रद चीज़ें आसानी से मिलती थीं, इसलिए वे हृष्ट- पुष्ट, दीर्घकाय, बलवान्,बुद्धिमान् और वीर्यवान् होते थे। आज कल लोगों का इधर ध्यान न होने से शक्ति और बुद्धि की हानि और रोगों की वृद्धि देखी जाती है।

४५ भावप्रकाश में दूध के गुण इस प्रकार वर्णन किये हैं कि दूध— मीठा, चिकना वादी और पित्त को नाश करने वाला, दस्तावर, वीर्य को जल्दी पैदा करने वाला, शीतल, सब प्राणियों के अनुकूल, जीवनरूप, पुष्टि करने वाला, बलवर्द्धक, बुद्धि बढ़ाने वाला, अत्यन्त वाजीकरण,(वीर्यवर्द्धक) अवस्था और आयु को स्थिर रखने वाला रसायन है, विरेचन वमन और वस्ति में सेवन करने योग्य है तथा तेज बढ़ाने वाला है। जीर्ण ज्वर, मानसिक रोग, उन्माद, शोष(खुश्की) मूर्छा, भ्रम, संग्रहणी पीलिया, दाह, प्यास, हृदय- रोग, शूल, उदावर्त्त, गोला,

वस्ति रोग, बवासीर, रक्तपित्त, अतिसार, योनिरोग, परिश्रम, ग्लानि, गर्भस्राव, इन में सर्वदा हितकारी कहा है। दूध— बालक, बूढ़े घाववाले, कमज़ोर, भूख या मैथुन से दुर्बल हुए मनुष्य के लिए सदा अत्यन्त लाभदायक है।

४६ दूध प्रायः सब रोगों में पथ्य है; किन्तु सन्निपात, नवीन ज्वर, वातरक्त और कुष्ट आदि कई एक रोगों में दूध अहितकर है, यद्यपि नवीन ज्वर में डाक्टर लोग कुनैन के साथ दूध पिला भी देते हैं, तो भी सन्निपात में तो दूध विष के समान है, यह निश्चित सिद्धान्त है, इसी तरह सुजाक रोग की तरुणावस्था में भी दूध हानि कारक है। दूध की लस्सी बना कर पीना गँठिया बीमारी का मूल कारण है।

४७ गाय के दूध में उक्त सब गुण हैं; किन्तु गाय के वर्ण भेद से गुणों में भी कुछ भेद हो जाता है। काली गाय का दूध— वायुनाशक और अधिक गुणकारी है। लाल गाय का दूध—वातहर और पित्तहर होता है। सफ़ेद गाय का दूध—कुछ कफ करनेवाला होता है। तत्काल व्याई हुई गाय का दूध— त्रिदोषकारी होता है। विना बछड़े की गाय का दूध— भी तीनों दोषों को उत्पन्न करता है। भैंस का दूध— गुण में कई दर्जे गाय के दूध से मिलता हुआ ही है, लेकिन गाय के दूध की अपेक्षा इसका दूध अधिक मीठा, अधिक गाढ़ा, भारी, अधिक वीर्य वर्द्धक,

कफकारी और नींद को बढ़ाने वाला है। बीमार के लिए गाय का दूध जितना हितकारी है, उतना भैंस का दूध नहीं होता। बकरी का दूध --- मीठा, ठंढा और हल्का है, रक्तपित्त, अतीसार, क्षय, खाँसी और जीर्ण ज्वर आदि रोगों में हितकारी है। विशेषतः बच्चों और गर्म मिजाज़ वालों को बहुत फ़ायदेमन्द है। भेड़ का दूध— खारा मीठा गर्म, पथरी को मिटाने वाला, वीर्य, पित्त, और कफ को पैदा करने वाला, स्वादिष्ट, चिकना, गरम, भारी, वादी की खाँसी और वादी के रोगों में हितकारी है। इस की मालिश सूजन आदि रोगों में लाभ दायक है।

४८ गाय को दुहते ही जो दूध थनों से निकलता है, वह गर्म होता है इसी से उस का नाम "धारोष्ण" दूध रक्खा गया है। तत्काल का थन-दुहा गर्म दूध, (शक्तिप्रद) हल्का ठंढा, मीठा, भूख बढ़ाने वाला, वीर्य- वर्द्धक, नींद लानेवाला, कान्ति कारक, हितकारी और त्रिदोष- नाशक होता है। अनेक शास्त्रों में इस की बहुत प्रशंसा लिखी है तथा बहुत से अनुभवी पुरुष इस की अत्यन्त प्रशंसा करते हैं; क्योंकि यह दूध बालक से लेकर वृद्ध तक के लिए हितकारी है तथा सब अवस्थाओं में पथ्य है। दुहने के बाद जब दूध ठंढा हो जावे तो उसे गर्म किये विना नहीं पीना चाहिये।

४९ धारोष्ण दूध सिर्फ गाय और भैंस का पी सकते हैं, अन्य पशुओं का कच्चा दूध मनुष्य के लिये हितकारी नहीं होता;

क्योंकि वह सर्दी और आम उत्पन्न करता है। भेड़ का दूध औटाकर गर्मागर्म पीना उचित है। बकरी का दूध औटाकर और फिर ठण्डा करके पीना योग्य है। गर्म किया हुआ दूध वायु और कफ़ की प्रकृति वाले को सुहाता हुआ गर्म पीने से फ़ायदा करता है। अधिक गर्म दूध का पीना पित्त प्रकृतिवाले को हानि पहुँचाता है। यदि कच्चा दूध आधा पानी मिलाकर औटाया जाय और जब पानी जल कर दूधमात्र रह जाय, तब वह दूध कच्चे धारोष्ण दूध से भी अधिक हल्का हो जाता है। यह दूध छोटे छोटे बच्चों, बीमारों और कमज़ोरों तथा मन्द पाचन शक्ति वालों को फ़ायदेमन्द होता है। औटाने से बहुत गाढ़ा हुआ दूध भारी तथा शक्तिप्रद हो जाता है, वह दूध बच्चों, बीमारों तथा मन्दपाचन शक्ति वालों को नहीं पीना चाहिये; लेकिन पूरी पाचन शक्ति वालों, और कसरती जवानों को बहुत फ़ायदेमन्द है।

५० जिस दूध का रंग और स्वाद बदल गया हो, खट्टा पड़ गया हो, दुर्गन्ध आने लग गई हो और उस के ऊपर फेनसा बँध गया हो तो उस दूध को खराब हुआ समझ लेना चाहिये। ऐसा दूध कभी नहीं पीना चाहिये; क्योंकि ऐसा दूध हानिकारक होता है। दुहने के बाद दो घड़ी अन्दर अन्दर दूध गर्म कर लेना चाहिये; यदि पांच घड़ी तक कच्चा ही पड़ा रहे, और पीछे खाया पिया जावे, तो वह अवश्य विकार करता है।

गर्म किया हुआ दूध भी दस घड़ी के बाद विगड़ जाता है। जैन भक्ष्याभक्ष्य के निर्णय करने वाले भी कहते हैं कि कच्चा दूध दो घड़ी के बाद और गर्म किया हुआ दूध भी सात घंटे के बाद अभक्ष्य हो जाता है। अनुभव करने से भी यह बात ठीक जँचती है कि सात घंटे के बाद दूध अवश्य खट्टा हो जाता है, इसलिए दुहने के पीछे या दूध गर्म करने के पीछे बहुत देर तक नहीं पड़ा रखना चाहिये।

५१ यदि भोजन के साथ दूध खाना हो तो भोजन के सब पदार्थ खाकर पीछे से दूध खाना चाहिये, हां यदि भोजन में दूध के विरोधी खटाई मिर्च तेल पापड़ और गुड़ आदि पदार्थ न हों तो भोजन के साथ ही में दूध को भी खा लेना चाहिये। क्योंकि दूध में छह रस हैं, इसलिए इन छहों रसों के समान स्वभाव वाले (दूध के छहों रसों के तुल्य स्वभाव वाले) पदार्थ दूध के अनुकूल अर्थात् मित्रवत् होते हैं। देखिये ! दूध में खट्टा रस होता है, उस खट्टे रस का मित्र आँवला है। दूध में मीठा रस होता है, उस मीठे रस का मित्र बूरा या मिश्री है। दूध में कड़वा रस होता है, उसका मित्र परवल है। दूध में तीखा रस होता है, उस का मित्र सोंठ तथा अदरख है। दूध में कसैला रस होता है, उसका मित्र हाड़ है। दूध में खारा रस है, उसका मित्र सैंधा नमक है। इन के सिवा गेहूं के पदार्थ पूरी रोटी आदि, चाँवल, घी, दाल, मीठे आम के फल, पीपल, काली मिर्च तथा पाकों में काम आने वाली सब चीजें, पुष्टि और दीपन के

सब पदार्थ भी दूध के मित्रवर्ग में हैं। दूध के अमित्र (शत्रु)—सेंधे नमक के सिवा बाकी के सब खार दूध के गुण को बिगाड़ने वाले हैं। इसी प्रकार आँवले के सिवा सब तरह की खटाई, मूंग मोंठ, मूली, शाक आदि के साथ मिलकर शत्रु का काम करते हैं; क्योंकि दूध के साथ नमक का खार, गुड़, मूंग और मोंठ आदि खाने से कोढ़ आदि चर्म रोग हो जाते हैं। दूध के साथ शाक मद्य और आसव खाने से पित्त रोग हो जाते हैं और अन्त में मृत्यु की शरण लेनी पड़ती है।

५२ दही— अग्नि-दीपक, भारी, चिकना और पचने पर खट्टा होता है। यह पित्त, श्वास, रक्तविकार, सूजन पैदा करने वाला, मेद तथा कफ को बढ़ाने वाला और मल को बांधने वाला, एवं दस्त को गाढ़ा करने वाला है। जो दही बहुत खट्टा हो या फीका हो, वह न खाना चाहिए। जो दही खूब जमा हुआ हो तथा मीठा और खटमीठा हो, एवं स्वादिष्ट हो, वही खाने योग्य होता है। जिस दही को कपड़े में बांधकर पानी टपका दिया जाता है, वह दही बहुत स्निग्ध, वात- नाशक, कफ- उत्पादक, भारी, शक्ति—दायक, पुष्टि- कारक और रुचि—कारक होता है। दूसरा दही खट्टा होने से पित्त- वर्द्धक होता है, किन्तु यह दही मीठा होने से पित्त का नाश करता है। इस दही को मिश्री या बूरा मिलाकर खाने से पित्त, रक्त- विकार तथा दाह मिटता है।

५३ हेमन्त (अगहन– पोस) शिशिर (माघ– फाल्गुण) और वर्षा (सावन– भादों) ऋतु में दही खाना लाभदायक है। शरद् (आश्विन– कार्तिक) वसन्त (चैत्र– वैशाख) और ग्रीष्म (जेठ– आषाढ़) ऋतु में दही कदापि न खाना चाहिए। रात में भी दही नहीं खाना चाहिए। यदि रात में दही खाना ही हो तो विना घी और बूरे के, या विना गर्म किये, या विना मूंग की दाल के और विना आँवलों के न खाना चाहिए। यदि रक्त--पित्त सम्बन्धी कोई रोग हो तो किसी तरह भी दही न खाना चाहिए जो मनुष्य नियम- विरुद्ध दही खाता है, उसको ज्वर, रुधिर विकार, पित्त, कोढ़, पीलिया, भ्रम और भयंकर कामला रोग हो जाता है।

५४ दही से अधिक पानी मिलाया जावे और बिलोकर उस का मक्खन निकाल लिया जावे, तब उसे छाछ कहते हैं। एक सेर दही में पाव भर पानी मिलाकर जो विलोया जावे, उसे तक्र कहते हैं। छाछ-- हलकी, पित्त, थकावट, और प्यास को मिटाती है, वातनाशक तथा कफ को करने वाली है। नमक डालकर इसे काम में लाने से यह अग्नि को बढ़ाती है तथा कफ को कम करती है। तक्र का यथायोग्य सेवन करने वाला मनुष्य सदा नीरोग रहता है, तथा तक्र से नष्ट हुए रोग फिर उत्पन्न नहीं होते हैं। वायु की प्रकृति वाले को तथा वायु के रोगी को खट्टा तक्र या छाछ सेंधा नमक डालकर पीने से लाभ होता है, पित्त की प्रकृति वाले को तथा पित्त के रोगी को *मिश्री डालकर मीठी छाछ या तक्र* पीने से लाभ होता है तथा

कफ की प्रकृतिवाले और कफ के रोगी को संचल नमक सोंठ मिर्च और पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से बहुत फायदा होता है। जिस के चोट लगी है उस को, घाववाले को, मल से उत्पन्न हुई सूजन के रोग वाले को, श्वास के रोगी को, जिस का शरीर सूख कर दुर्बल हो गया है उस को, मूर्छा भ्रम उन्माद और प्यास के रोगी को, रक्त पित्त वाले को, राजयक्ष्मा (क्षयरोग) तथा उरःक्षत के रोगी को तरुण ज्वर और सन्निपात ज्वर वाले को तथा वैशाख जेठ आश्विन और कातिक मास में छाछ नहीं पीनी चाहिए।

५५ चैते गुड़ वैशाखे तेल, जेठे पन्थ असाढ़े बेल। सावन दूध न भादों मही, क्वार करेला न कातिक दही॥ अगहन जीरो पूसे धना, माहे मिश्री फागुन चना। जो यह बारह देय बचाय, ता घर वैद्य कबहुँ नहिं जाय॥१॥

५६ घी-रसायन, नेत्रों के लिए हितकारी, अग्नि-दीपक, वीर्य को शीतल करने वाला विष-कुरूपता--वात और पित्त का नाशक, अभिष्यन्दि, कान्ति बल तेज और बुद्धि को बढ़ानेवाला, स्वर को सुन्दर करने वाला, मेधा को हितकारी, भारी, चिकना और कफ करनेवाला होता है। ज्वर, उन्माद, शूल, अफारा, फोड़ा, घाव, क्षय, विसर्प और रक्तविकार इन रोगों में घी लाभदायक है। राजयक्ष्मा कफ सम्बन्धी रोग, आम- ज्वर, हैज़ा, दस्तकब्ज़ नशे से उत्पन्न हुए रोग और मन्दाग्नि इन रोगों में घी भूलकर भी न खाना चाहिए।

५७ हवा मनुष्य का जीवन है, अन्न जल के विना केवल हवा से हम कई दिनों तक जीते रह सकते हैं, हवा के विना एक क्षण भी नहीं जी सकते, शुद्ध हवा से शरीर तन्दुरुस्त रहता है, और गन्दी हवा से वीमारियाँ आती हैं; इसलिए मकान के पास कूड़ा-करकट, सड़ी गली चीजें नहीं डालनी चाहिए; क्योंकि इन से हवा बिगड़ती है। जिस मकान में हवा के आने जाने के लिए खिड़कियाँ हों और पूरा प्रकाश रहता हो उसी में रहना चाहिए। जिस मकान के आगे हरे हरे पौधे लगे रहते हैं, उस मकान की हवा गन्दी नहीं होती और उस मकान में वीमारी भी नहीं रहती। शरीर को तन्दुरुस्त रखने के लिए घूमना अत्यन्त आवश्यक है; बाहर मैदानों और बाग बगीचों की वायु स्वच्छ होती है;इसलिए प्रातः काल और सायं-काल वायु-सेवन करना हितकारी है; अपनी शक्ति के अनुसार शीतल और मन्द हवा में घूमने से शरीर नीरोग रहता, भूख लगती, बल-बुद्धि और कान्ति बढ़ती है तथा इन्द्रियाँ सचेत तथा मस्तिष्क ताज़ा हो जाता है। तेज़ हवा में नहीं घूमना चाहिए; क्योंकि तेज़ हवा से शरीर रूखा हो जाता और चेहरे की रंगत बिगड़ जाती है।

५८ तन्दुरुस्ती का मूल कारण वीर्यरक्षा है, जो मनुष्य अपने वीर्य की रक्षा भली भांति करता है,वह प्रायः नीरोग बलवान् बुद्धिमान और तेजस्वी होता है। वीर्य शरीर का राजा है। हम जो भोजन करते हैं, उससे क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद (चर्बी) अस्थि (हड्डी)

मज्जा और वीर्य, ये सात धातुएँ बनती हैं। इन ही से हमारा शरीर ठहरा हुआ है। इन सातों धातुओं में वीर्य प्रधान है, वीर्य ही हमारी दिमागी ताक़त है, वीर्य के बल से स्मरण-शक्ति रहती है अर्थात् वीर्य की रक्षा करने से हमें असंख्य बातें याद रहती हैं, वीर्य-बल से हमारा शरीर सुदृढ़ बलवान् रहता है, और बुद्धि का विकास होता है, वीर्य ही सब सुखों का और आरोग्य का मूल कारण है; वीर्य ही इस शरीर रूपी नगर का राजा है, तथा इस नौ दर्वाजे वाले शरीर-किले में रोग-शत्रुओं से हमारी रक्षा करता है जब तक यह वीर्य-राजा बलवान् रहता है, तब तक कोई रोग शत्रु पास तक नहीं फटकने पाते। इस के बलसे ही, अनेक कलाएँ सीख सकते और गंभीर विषयों का अध्ययन कर सकने तथा आविष्कार करसकते हैं। इस पृथ्वी पर जितने विद्वान् बलवान् तेजस्वी, आविष्कारक और वीर हुए हैं, वे केवल वीर्य-रक्षा के प्रताप से ही हुए हैं। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, ईख में रस रहता है, वैसे ही सम्पूर्ण शरीर और चमड़े में वीर्य रहता है। जिस तरह गीले कपड़े से पानी गिरता है, उसी तरह संयोग, चेष्टा, संकल्प और पीड़न से वीर्य अपने स्थानों से गिरता है। जो वीर्य हमारी विद्या, बुद्धि, तन्दुरुस्ती का मूल-आधार है, उस की हर तरह रक्षा करना मनुष्य मात्र का मुख्य कर्त्तव्य है।

५६ सोना भी स्वास्थ्य-रक्षा का आवश्यक नियम है। सोने के लिए सब से अच्छा समय रात है। रात को दस बजे सोकर पौ-

फटने के पहले ही उठ जाना अच्छा है— रात को जल्दी सोना और सवेरे जल्दी उठना स्वास्थ्य- प्रद है। दिन में नहीं सोना चाहिए; क्योंकि दिन में सोने से वात पित्त कफ और रक्त कुपित हो जाते हैं और उन के कुपित होने से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं; इसलिए किसी विशेष कारण विना ग्रीष्म ऋतु को छोड़कर और किसी ऋतु में दिन में न सोना चाहिए। बहुत ही छोटे बच्चे को दिन रात का अधिक भाग सोने में विताना आवश्यक है, बारह वर्ष के आस पास के बालक बालिकाओं को करीब नौ घंटे और पूरे आदमी को सात घंटे के लग भग सोना हितकारी है। जैसे अधिक सोना अहितकर है, वैसे ही कम सोना भी हानिकारक है।

६० तुम्हें जिसका भरोसा न हो और उस की चीज खानी या पीनी पड़े तो विना परीक्षा किये उसे न खाओ पीओ। क्योंकि कई लोग धोखे से विष-मिश्रित चीज़ें खाकर प्राण खो चुके हैं; इसलिए हम खाने पीने की चीज़ों में "विष" पहचानने की सरल तरकीबें नीचे लिखते हैं।

६१ जलता हुआ अंगारा लो, जो कुछ खाने पीने की चीज़ें हों, उन में से ज़रा ज़रा सा उस अंगारे पर डालो। यदि उन चीज़ों में विष होगा तो आग चट चट करने लगेगी, या उस अंगारे में से मोरकी गर्दन के माफ़िक नीली नीली ज्योति निकलने लगेगी, वह ज्योति दुःसह और छिन्न- भिन्न होगी। इस में से धुआँ बड़े ज़ोर से उठेगा और जल्दी शान्त न होगा।

६२ जहर मिली हुई चीज़ को खाते ही चकोर की आँखें बदल जाती हैं, कोयल की आवाज़ बिगड़ जाती है, मोर घबरायासा होकर नाचने लगता है, तोता मैना पुकारने लगते हैं, हंस अत्यन्त शब्द करने लगता है, भौंरा गूंजने लगता है, सांभर आंसू गिराने लगता और बन्दर बार बार टट्टी करने लगता है।

६३ अगर दूध पानी आदि पतले पदार्थों में ज़हर मिला होगा तो उन में अनेक भांति की लकीरें सी हो जायेंगी, या झाग और बुल बुले पैदा हो जावेंगे, या उन चीज़ों में छाया नहीं दिखाई देगी, अगर दिखाई देगी तो पतली पतली अथवा बिगड़ी हुई सी दिखाई देगी।

६४ विषमिश्रित भोजन खाकर मक्खियाँ और कौवे तत्काल मर जाते हैं।

६५ यदि दाल भात शाक आदि में विष मिला होगा तो वे तत्काल ही बासी हुए या बुसे हुए से मालूम होने लगेंगे। सब पदार्थों की सुगन्ध और रस- रूप मारे जायँगे। पके फल ज़हर मिलाने से फूट जाते हैं, या नर्म पड़ जाते हैं और कच्चे फल पके से हो जाते हैं।

६६ विष मिला हुआ अन्न मुँह में जाते ही जीभ कड़ी पड़ जाती है, अन्न का स्वाद ठीक नहीं मालूम होता, जीभ में जलन या पीड़ा होने लगती है।

६७ रात को सोते समय एक कम्बल अपनी शय्या पर रक्खा करो, यदि रात को शीत पड़ा तो उसे ओढ़कर सर्दी से बच जाओगे। यदि घर में आग लग गई तो कम्बल ओढ़कर घर के बाहर अछूते निकल जाओगे; क्योंकि कम्बल पर आग असर नहीं करती। यदि खुली जगह में सोये हुए हो और अकस्मात् वर्षा होने लगे तो अपने बिछौने और शरीर को भीगने से बचा सकोगे।

६८ यदि तुम में कोई ख़राब आदत पड़ जाय और जिस के विना तुम से रहा न जा सके तो उसे धीरे धीरे छोड़ो। यदि उसे एकदम जल्दी छोड़ दोगे तो शायद लाभ के बदले हानि हो जाय।

६९ मानसिक परिश्रम करनेवालों, विद्वानों, वकीलों और ग्रन्थकर्त्ताओं को आराम की गहरी नींद लेना बहुत ज़रूरी है, अगर दिमाग़ी परिश्रम करने वाले इस नियम पर चलेंगे तो वे अच्छा काम कर सकेंगे और हमेशा तन्दुरुस्त भी रहेंगे।

७० सदा किसी एक ही बात का ध्यान मत रक्खो, और बारम्बार उसी की चिन्ता में मत रहो, ऐसा करने से आदमी पागल हो जाता है।

७१ जब बालक की मा के सिर पर क्रोध का भूत सवार हो, तब वह बालक को दूध न पिलावे। क्रोध के समय स्त्री का दूध ज़हर की तासीर रखता है। क्रोध के समय माता के दूध पिलाने से बच्चे भयानक रोगों से घिरकर मर गये हैं।

७२ एकदम बहुत सी लिखा पढ़ी मत किया करो। बड़े बड़े नामी पुस्तक लिखने वाले ६। ७ घंटे से अधिक नहीं लिखा करते हैं। जो शख्स दिल को प्रसन्न करके और खूब विश्राम करके शान्त चित्त से ५। ६। घंटे लिखता है, वह १५। १६ घंटे की लिखाई से अच्छा लिखता है।

७३ यदि सदा तन्दुरुस्त रहना हो, तो नीचे लिखे नियमों का पालन करो :—(१) दिन रात घर में रहकर काम करो, तो घंटे दो घंटे मैदान की साफ़ हवा अवश्य खाओ (२) पैर सदा गर्म रक्खो। (३) पूरी नींद सोओ। (४) हररोज कोई न कोई ऐसी चीज़ भोजन में अवश्य खाया करो, जिससे रोज़ टट्टी साफ़ होती रहे।

७४ यदि आप तन्दुरुस्त और शक्तिमान् बनना चाहते हो तो तेल, खटाई और गुड़ खाना बिल्कुल छोड़ दो और विशेष कर विद्यार्थियों को तो इन से अवश्य बचना चाहिये। लाल मिर्च के बीज बहुत हानिकारक होते हैं; यदि बीज निकालकर लाल मिर्च काम में लाई जाय तो हानि कम करती है, तब भी इस से बचना चाहिए।

७५ मरने के समय मनुष्य की नाड़ी एक मिनट में १४० बार चलने लगती है, और ज्यों ज्यों मरण काल नज़दीक आता जाता है, त्यों त्यों नाड़ी की चाल और भी बढ़ती जाती है। अन्त में

चाल एकदम बन्द हो जाती है और प्राणी अपना कलेवर छोड़कर परलोक की राह लेता है।

७६ जिस का मुख हमेशा खिला हुआ रहता है, जो हमेशा प्रसन्नचित्त रहता है। जिस के मुँहपर शोक--रंज की छाया नहीं पड़ती, वह सदा तन्दुरुस्त रहता है, उससे रोग कोसों दूर भागते हैं। ऐसा मनुष्य सब का प्यारा भी बना रहता है। वलायत में एक मैम साहिबा ऐसी हैं, जो बचपन से आज तक कभी रंजीदा नहीं हुई, वे सदा हँसती रहती हैं। उन के सदा प्रसन्नचित्त रहने का यह फल है कि सत्तर वर्ष पार कर जाने पर भी, आज दिन, वह पूर्णयौवना युवती के समान बनी हुई हैं।

७७ जो मनुष्य बहुत ही परिश्रम करता है, वह अनेक रोगों से घिरकर प्राणों से हाथ धो बैठता है। जो समझ- बूझकर अपनी शक्ति के अनुसार, मिहनत करता है, शरीर को सुख देता है और कुछ समय खेल- कूद में बिताता है— अपनी शक्ति के अनुसार कसरत करता है, वह बहुत दिनों तक जीता है और तन्दु- रुस्त रहता है।

७८ रात में साफ़ हवा की विशेष आवश्यकता होती है। बन्द कमरों में सोना हानिकारक है। सोने के कमरों में वर्तन- भांडे और खाने पीने का सामान रखने से वायु का आना जाना रुकता है। सोने के कमरे में कमसे कम दो खिड़कियां आमने सामने

अवश्य होनी चाहियें, एक खिड़की से काम नहीं चलता, क्योंकि सोने वाले हवा को दूषित करते हैं, दूषित हवा के निकलने और साफ़ हवा के अन्दर आने को आमने-सामने खिड़कियों का होना बहुत ज़रूरी है ।

७९ चित्त सोना भेजे को हानिकारक है; चित्त सोने से बुरे बुरे सुपने दिखाई देते हैं । यदि किसी को चित्त सोने की आदत हो, तो वह इसे छोड़ दे । सिर को तकिये पर इस तरह रक्खे कि मुँह और दोनों आँखें दाहिनी या बाईं तरफ़ झुकी रहें । इस तरह सोना गुणकारी है । इसे पट सोना कहते हैं । दाहिनी या बाईं करवट सोना हानिकारक नहीं है । निराहार सोना नजला पैदा करता है । भूख की हालत में सोने से शरीर क्षीण होता है । धूप में सोना अच्छा नहीं है; लेकिन चांदनी में सोना लाभदायक है । बहुत जागना गर्मी और खुश्की को पैदा करता है । सोने और जागने में समभाव रखना चाहिए, अर्थात् न बहुत सोना चाहिये और न बहुत जागना ही चाहिये ।

८० बालकों को जो चीज़ नापसन्द हो, वह उन्हें ज़िद करके मत दो, इसका परिणाम अच्छा नहीं होता । अगर बालक को धमकाना हो, तो कनपटी पर थप्पड़ मत मारो । ऐसा करने से बालक अक्सर बहरे हो जाते हैं ।

८१ तेल की मालिश करना अत्यन्त लाभदायक है; इसलिए बुद्धिमान लोग रोज़ नहीं तो सप्ताह में एक बार अवश्य करते हैं, यदि इतना भी न बन सके तो जाड़ों के दिनों में तो तेल की मालिश अवश्य करते हैं। तेल मर्दन करने से धातु पुष्ट होती है, तथा बल बुद्धि और रूप बढ़ता है, एवं शरीर का चमड़ा कोमल हो जाता है। नियमपूर्वक मालिश करने वाले के दाद खाज खुजली आदि चर्म रोग का भय स्वप्न में भी नहीं रहता। सिर में तेल डालने से बुद्धि बढ़ती है, बाल जल्दी नहीं पकते, भौंरे के समान काले और चिकने बने रहते हैं। नेत्र की ज्योति बढ़ती है, और मस्तक सम्बन्धी रोग दूर होते हैं। तथा कान में भी डालते रहना चाहिये, इससे कान सम्बन्धी कोई रोग नहीं होता और मस्तक तर रहता है।

८२ चिन्ता से हमेशा दूर रहो, चिन्ता के समान सर्वनाशक और कोई नहीं है। चिन्ता से बल-वीर्य बुद्धि और रूप का नाश हो जाता है! चिन्ता भी राजयक्ष्मा (क्षय रोग) का एक कारण है। राजयक्ष्मा ऐसा रोग है, जिसे ब्रह्मा भी आराम नहीं कर सकता। दूसरी सब बीमारीयां का इलाज है, किन्तु चिन्ता की बीमारी का इलाज नहीं है। चिता मरे हुए को जलाती है, लेकिन चिन्ता जीते हुए को जलाकर भस्म कर देती है। यदि सुख से बहुत दिन तक जीना चाहते हो तो चिन्ता को त्याग दो।

८३ शोक के वशीभूत मत होओ। शोक करने से कुछ लाभ

नहीं होता, बुद्धिमान लोग मरे हुए का, नष्ट हुई वस्तु का, बीती हुई बात का आगे होने वाले अनिष्ट का शोक नहीं करते, शोक करने से दुःख कम नहीं होता, बल्कि बढ़ जाता है; जीवन में शोक और भय के हजारों मौके आते हैं; परन्तु बुद्धिमान शोक नहीं करते। शोक आदि मूर्खों ही पर अपना अधिकार जमा सकते हैं।

८४ हर किसी का जल्दी विश्वास मत कर लो। जिस किसी में झूठा भ्रम भी मत करो। खूब देखो जाँचो यदि विश्वास के योग्य हो तो विश्वास करो, अन्यथा विश्वास मत करो। हमने देखा है कि जल्दी ही चाहे जिसका विश्वास करने वाले अपने प्राणों को मृत्यु के गोद में रख चुके हैं।

८५ वर्षा में जहां तक हो सकें, कम जल पीना शरद् ऋतु में ज़रूरत के माफ़िक़ नियमानुसार जल पीना, जाड़े मे निवाया जल पीना, वसन्त में मन चाहे जैसा जल पीना, तथा गर्मी में औटाया हुआ जल ठंडा करके पीना हितकारी है।

८६ पहला भोजन पच जाने पर भोजन करना, मल मूत्र आदि के वेगों को न रोकना, ब्रह्मचर्य रखना, हिंसा न करना और चिन्ता न करना, ये पांचों बातें स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

८७ बालकों के ज्वर आदि रोगों की रामबाण दवा—(१) काकड़ासिंगी, नागरमोथा, और अतीस, इन तीनों को बराबर लेकर

कूट पीसकर छान लो। यह चूर्ण बालकों के लिए अमृतसमान है। बालक की अवस्थानुसार इस की मात्रा बनाकर शहद (मिश्री की चासनी) में मिलाकर चटाने से, बालकों के ज्वर, खांसी, वमन-क्षय होना, ये निश्चय ही आराम हो जाते हैं। इससे हजारों बालकों को आराम हुआ है। इसे आप बालकों के लिए रामबाण दवा समझें आप धीरज रखकर इस दवा को देते जावें, आप के बालक को अवश्य आराम होगा।

८८ बिच्छू काटे की दवा--सत्यानाशी की जड़ की छाल पान में खिलाने से बिच्छू का ज़हर उतर जाता है। (२) अगर बिच्छू ने काटा हो, तो कपास के पत्ते ओर राई इन दोनों को एक जगह पीसकर लेप कर दो। (३) रविवार को कपास की जड़ उखाड़कर लाओ, यदि किसी को बिच्छू काटे, तो आप उसी जड़ को चबाने के लिए दो। (४) नौसादर, कली का चूना और सुहागा, इन तीनों को जल के साथ मिलाकर सूँघने से भी ज़हर उतरता है।

८९ पागल कुत्ते के काटे की दवा—सफेद जीरा, स्याहजीरा और कालीमिर्च, इन तीनों को पीसकर १ माशे भर पिलाने और प्याज़ को महीन कूटकर शहद में मिला, कुत्ते की काटी हुई जगह पर लेप करने से पागल कुत्ते के काटे हुए को आराम होता है।

९० सिर दर्द की दवा—(१) पिपरमेण्ट के फूल और कपूर, दोनों बराबर बराबर लेकर सिर पर मलने से सिरदर्द शीघ्र आराम हो

जाता है। (२) दालचीनी अथवा बादाम का तेल सिरपर मलने से सिरदर्द आराम हो जाता है। (३) प्याज़ को कूटकर सूँघने और चन्दन और कपूर पत्थर पर खूब महिन पीसकर सिर पर लगाने से सिर की गर्मी और गर्मी से पैदा हुआ सिरदर्द अवश्य आराम हो जाता है। (४) ज़रा सा जायफल दूध में पीसकर लगाने से सर्दी और ज़ुकाम का सिरदर्द निश्चय ही आराम हो जाताहै। (५) अगर गर्मी से सिर में दर्द हो, तो 'ताजा गाय का घी' सिर पर मलना चाहिए। (५) केशर को घी में पीस कर सूँघने से आधा शीशी का दर्द आराम हो जाता है। (६) बच और पीपर को महीन पीस छानकर सूँघनी की तरह सूँघने से आधाशीशी और सिरदर्द आराम हो जाते हैं। (७) लोंग दो दाने और अफ़ीम चार रत्ती, पानी में पिसकर और कुछ गर्म करके लगाने से नजले का सिरदर्द आराम होता है।

६१ कान के रोगों की दवा— (१) अगर कान में कीड़ा घुस जावे तो मकोय के पत्ते का रस कान में टपकाओ। (२) अगर कानमें कनखजूरा या कनसलाई घुस जावे तो मरोडफली की जड़ को रेंडी के तेल में घिसकर दस बीस दफ़ा कान में टपकाओ। इस दवा से कनखजूरा बाहर निकल जावेगा (३) यदि कान में कीड़े हों, तो 'एलुआ' पानी में पीसकर पतला २ कान में भर दो, उस पानी को थोड़ी देर कान में रहने दो। घड़ी भर बाद कान को

नीचे झुका दो, कीड़े निकल जावेंगे। (४) सुदर्शन के पत्तों का रस निचोड़कर और गर्म करके कान में टपकाने से कान का दर्द मिट जाता है। (५) नीम के पत्ते औटाकर उनका बफ़ारा कान में देने से कान का दर्द और कान का घाव अच्छा होता है। (६) अगर कान में जलन होती हो तो 'घीग्वार' का लुआब (रस) कपड़े में छानकर कान में डालो और उस का गूदा कान पर रख दो, निश्चय ही आराम हो जायगा। (७) आक के पके हुए पत्तों को घी से चुपड़कर आग पर सेको। पीछे उन का रस निचोड़कर कान में टपकाओ, इस नुस्खे से सब तरह के कान के दर्द निःसन्देह अच्छे हो जाते हैं।

६२ सांप काटे की दवाएँ— (१) जिसको सांप ने काटा हो उसको केले के वृक्ष का पानी जितना पी सके पिलाओ, जितनी बार प्यास लगे उतनी बार यही पानी पिलाओ; इससे उल्टी या दस्त होगा; यदि उल्टी या दस्त न भी हो तो भी सर्प का ज़हर अवश्य उतर जाता है। यह नुस्खा आज़माया हुआ है। (२) पांच तोले तेज़ तमाखू के पत्ते लेकर पाव भर पानी में भिगो दो, जब वह खूब भीग जावे, तब पत्तों को निचोड़ कर फेंक दो और उस पानी को छानकर जिसे सांपने काटा हो, उसे पिला दो, इससे पांच ही मिनट में उल्टी होगी, उसमें सर्प का विष निकल जायगा और एक घंटे में आराम हो जायगा। यदि मुँह बन्द हो और मुँह से पानी न पिला सको तो नाक से पिलाना चाहिए।

(३) अगर किसी मनुष्य को सर्प ने काटा हो, तो उसे कड़वे नीम के पत्ते नमक और काली मिर्च चबाने को दो। यदि उसे नीम के पत्ते कड़वे न मालूम हों तो समझो कि अवश्य सर्प ने काटा है। जब तक ज़हर न उतर जाय, बराबर नीम के पत्ते चबवाते रहो, अथवा नीम की छाल या नीम के पत्तों का रस निकाल निकालकर पिलाते रहो; जब नीम के पत्ते या रस कड़वे लगने लगे, तब समझना चाहिए कि ज़हर उतर गया। प्रायः सभी गाँव के लोग सांप के काटे हुए को नीम के पत्ते चबवाया करते हैं। (४) 'नीम गिलोय' को डेढ़ पाव जल में पीसकर पिलाने से उलटियाँ होने लगती हैं और अक्सर सर्प का विष उतर जाता है। (५) कालीमिर्च एक भाग, सेंधा नमक एक भाग, और कड़वे नीम के फल दो भाग, इन तीनों को पीसकर शहद के साथ देने से सभी तरह के विष उतर जाते हैं। (६) सफ़ेद कनेर के सूखे फूल, कड़वी तम्बाकू और छोटी इलायची के बीज, इन तीनों को महीन पीसकर कपड़े से छान लो, पीछे उसे सांप के काटे हुए को सुँघाओ, इससे सर्प का विष उतर जायगा।

९३ नेत्र रोग नाशक दवाएँ— (१) सेंधा नमक और मिश्री को बराबर २ लेकर खूब महीन पीस लो, पीछे सलाई से आँखों में आँजो, मोतिया बिन्दु और जाला अवश्य कट जायगा। (२) आँखें दुखती हों, तो चिरचिरे की जड़ और ज़रा सा सेंधा नोन मिलाकर पीस लो। पीछे उस चूर्ण को तांबे के बरतन में डालकर दही के पानी

से खरल करके आँखों में आँजो । (३) घीग्वार (ग्वारपाठा) का गूदा एक माशा और अफ़ीम एक रत्ती, इन दोनों को महीन पीस कर कपड़े की पोटली बनाकर पानी में डाल दो । पीछे पोटली को पानी में डुबो- डुबोकर आँखों पर फेरो, और एक दो बूंद दवा पोटली में से आँखों पर भी निचोड़ दिया करो । आँखों के दुखने पर यह नुस्खा बहुत ही उत्तम साबित हुआ है । (४) लोध्र एक माशे, भुनी फिटकरी एक माशे, अफ़ीम आध माशे, और इमली की पत्तियाँ चार माशे— इन चारों को पीसकर और एक पोटली बनाकर पानी में डाल दो फिर उस पोटली को आखों पर फेरते रहो । यह नुस्खा भी आँख दुखने पर बहुत उत्तम साबित हुआ है ।(५) नीम की कोपलों को पीसकर रस निकाल लो, इस रस को ज़रा गुनगुना गर्म करके, सुहाता- सुहाता, उस तरफ़ के कान में टपकाओ, जिस तरफ़ की आँख न दुखती हो । अगर दोनों आँखें दुखती हों, तो दोनों कानों में टपका दो । बच्चों की आँखें दुखने पर यह नुस्खा अच्छा है । (६) चिरचिरे की जड़ शहद में घिसकर आँजने से आँख की फूली कट जाती है (७) बड़ के दूध में कपूर मिलाकर आँजने से एक दो महीने तक की आँख की फूली कट जाती है । (८) कड़वी तूंबी का रस, शहद में मिलाकर आँजने से आँख की फूली और रतौंधी दूर हो जाती है ! (९) बड़ का दूध आँजने से आँख की पीड़ा फौरन मिट जाती है । (१०) चिरचिरे की जड़ एक तोला संध्या समय भोजन करने के बाद चबाकर सो जाने से ३ । ४ दिन में

रतौंधी बिल्कुल मिट जाती है। (११) यदि रतौंधी आती हो, तो करेले के पत्तों के रस में कालीमिर्च घिसकर आँखों में आँजने से तीन चार दिन में फ़ायदा नज़र आने लगता है। (१२) त्रिफले (हरड़ बहेड़ा, आँवला) के चूर्ण में घी और शहद मिलाकर, रात में चाटने से सब तरह के आँखों के रोग आराम हो जाते हैं। किन्तु स्त्रीप्रसंग से बचना चाहिए; क्योंकि स्त्रीप्रसंग करने से सब तरह के नेत्ररोग बढ़ जाते हैं। (१३) सोनामखी को शहद में घिसकर आँखों में आँजने से फूला अवश्य मिटता है।

९४ जिन की इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, जो जानवरों की भांति बे प्रमाण खाते हैं, गरिष्ठ पदार्थों को मात्रा से अधिक खालेते हैं, उनको, तथा अत्यन्त जल पीने वालों या बिल्कुल जल नहीं पीने वालों, मल मूत्रादि के बेगों के रोकने वालों, रात को जागने और दिन को सोने वालों को अजीर्ण पैदा हो जाता है। अजीर्ण अनेक रोग पैदा करता है। अजीर्ण के नष्ट हो जाने पर प्रायः अनेक रोग नष्ट हो जाते हैं। मूर्छा, प्रलाप, वमन, मुँह से लार टपकना, ग्लानि और भ्रम तथा मरण, ये सब अजीर्ण के उपद्रव हैं। इसलिए इस से बचना चाहिए और हो जाने पर इस के नाश का शीघ्र उपाय करना चाहिए।

९५ हैजे से बचने का उपाय— जिस नगर या गाँव में हैजा फैल रहा हो, वहां के लोग यदि, कड़वे नीम के पत्ते एक तोला, कपूर एक रत्ती, और हींग एक रत्ती, इन तीनों चीजों को पीसकर

एक गोली बना लें पीछे इस गोली में छह माशे गुड मिलाकर रात को सोने के पहले खालें। जब तक हैज़े का भय रहे, रोज़ इसी तरह गोली बनाकर रातको खाया करें। यह गोली दूसरों को भी बताइये। इस गोली को नित्य खाने वाले पर हैज़े का कुछ भी असर नहीं होता, यह बात आज़माई हुई है।

९६ हैज़े से बचने का दूसरा उपाय--भोजन करने के बाद रात(शाम)को थोड़ी सी प्याज़ कूटकर उस का रस निकाल लो—उस में एक चने बराबर हींग, डेढ़ माशे सौंफ और डेढ़ माशे धनिया मिलाकर खा जाओ। हैजे के समय रोज़, रात को, अच्छे शरीर में यह नुस्ख़ा काम में लाने से हैज़ा कदापि न होगा।

९७ हैज़े के दिनों में कपूर का चिराग़ जलाओ। हाथ, जेब या रूमाल में कपूर रक्खो और उसे बार बार सूँघो। (२) यदि बहुत ही ज़ोर से बीमारी फैल रही हो और मनुष्य पर मनुष्य मरते हों, तो अपने निवास- स्थान को छोड़कर कुछ दिन के लिए ऐसी जगह में चले जाओ, जहां कुछ बीमारी न हो और,जहां का जल- वायु अच्छा हो।

९८ हैज़े के लक्षण— हैज़े की पहिली अवस्था में रोगी का जी मचलाता है और फिर बारम्बार वमन और पतले दस्त होते हैं। दूसरी अवस्था में, जीभ में काँटे पड़ जाते हैं, प्यास का ज़ोर बढ़ जाता है, नाड़ी की चाल मन्दी पड़ने लगती है और कुछ कुछ

बेहोशी होने लगती है । तीसरी अवस्था में एक दम होश- हवास नहीं रहता, संज्ञा नष्ट हो जाती है, हाथ पैर ठंडे पड़ जाते हैं और उनमें कम्पन या वाँइंटे आने लगते हैं, आँखें अन्दर घुस जाती हैं, होठ और नाखुन कुछ काले या नीले पड़ जाते हैं और हिचकियाँ चलने लगती हैं तथा पेशाब नहीं उतरता है । इस की पहली अवस्था के मालूम होते ही तत्काल उपाय करना चाहिए, क्योंकि यह बीमारी बहुत जल्दी बढ़ जाती है!

९९ हैजे की गोलियाँ— अफ़ीम, जायफल, लोंग, केशर, और कपूर, इन पांचों चीज़ों को छह छह माशे, बराबर बराबर लेकर खरल में डालकर खूब घोटो । पीछे दो दो रत्ती की गोलियाँ बनालो। जब तक दस्त और वमन बन्द न हो जावें, तब तक एक घंटे में एक एक गोली गर्म जल के साथ रोगी को निगलवाओ। कम उम्र वालों को आधी गोली दो। ये गोलियाँ आज़माई हुई हैं। इन से हैज़े में अवश्य उपकार होगा। जब रोगी को प्यास लगे, तब थोड़ा थोड़ा जल दो । आराम हो जाने पर,जब खूब भूख लगे तब साबूदाना पकाकर खिलाओ । इस में अन्न नहीं देना चाहिए ।

१०० सितोपलादिचूर्ण—तज एक रु० भर, छोटी इलायची के बीज २रु० भर, छोटी पीपल ४रु०भर, वंशलोचन ८रु०भर, मिश्री १६रु० भर, इनको कूट छानकर चूर्ण बना लिया जावे, पीछे आठ आने भर की मात्रा बनाकर शहद या मक्खन या मिश्री की

चासनी में मिलाकर चाटने से, राजरोग, श्वास खाँसी, पित्तज्वर, पसली का शूल, मंदाग्नि, अरुचि, हाथ पैरों की दाह दूर होती है।

१०१ कालाजीरी की चाय-- कालाजीरी १ रु० भर और अकरकरा चार आने भर इन दोनों को १ सेर पानी में डालकर उबालना, जब पानी तीन पाव रह जावे तब उतारकर छान लेना, पीछे दूध मिश्री मिला देना, इस का स्वाद रंग रूप बिल्कुल चाय का सा होगा। इस में विशेषता यह है कि चाय पीने से उस का व्यसन हो जाता है और इस में यह दुर्गुण नहीं है।

१०२ हिचकी का इलाज (१) काले उड़द के चूर्ण को चिलम में रखकर पीने से हिचकी आराम होती है; लेकिन आग का अंगारा बिना धुएँ वाला होना चाहिए। (२) आम के सूखे पत्ते चिलम में रखकर पीने से हिचकी आराम होती है। (३) पोदीने में शक्कर मिलाकर पीने से हिचकी आराम होती है। (४) हाथ पाँव बांध देने, श्वास रोकने, प्राणायाम करने, अकस्मात् डराने, या गुस्सा दिलाने अथवा खुशी की बात कह देने से अक्सर हिचकी आराम हो जाती है।

१०३ अतिसार (दस्त की बीमारी)— नाशक औषधियाँ--
(१) जायफल, छुहारा, और शुद्ध अफीम, इन तीनों को तीन तीन माशे लेकर खरल में डालकर, नागर बेल के पान का रस डालकर घोटना चाहिए। जितना ही पानों का रस सुखाया जायगा, दवा उतनी

ही अच्छी बनेगी । जब दवाएँ खूब घुट जावें, तब चने समान गोलियाँ बना ली जायँ। जिन्हें पतले दस्त लगते हों, उन्हें एक एक गोली दिन में दो तीन बार सोंठ के साथ निगलवाओ। खाने को हलका भोजन दो। पानी बिल्कुल थोड़ा पिलाओ। मिहनत और स्त्री-प्रसंग से बचाओ इन गोलियों के सेवन करने से दस्त की बीमारी में बहुत ही चमत्कार नज़र आता है। (२) अगर पेट में जलन होती हो और पतले दस्त लगते हों तो आम के वृक्ष की अन्दर की छाल दही में मिलाकर रोगी को खिलाना चाहिए। (३) एक तोला जायफल को पीस गुड़ में मिला, तीन २ माशे की गोलियाँ बनाली जावें और जिसे अजीर्ण या बदहजमी के दस्त होते हैं, उसे आध २ घंटे में एक २ गोली खिलाकर, ऊपर से गर्म जल पिलाओ। बदहज़मी के दस्त इस दवा से बहुत जल्दी आराम होते हैं। (४) दो माशे जावित्री लेकर महीन पीसली जाय पीछे उस चूर्ण को दही में मिलाकर ११ दिन तक खिलाया जाय, तो भारी से भारी हर तरह के दस्त अवश्य आराम होते हैं। (५) कुछ आँवले लेकर घी में पीस लिये जायँ, पीछे उन आँवलों की लुगदी से नाभि के चारों तरफ दीवार सी बना दी जाय, उस दीवार के भीतर नाभि पर अदरख का रस भर कर थोड़ी देर तक वैसाही रहने दिया जाय, तो दस्त बन्द हो जाते हैं। यह दस्त बन्द करने में राजा है। पानी के समान दस्त भी

इस से बन्द हो जाते हैं । (६) जरासी आफीम मिट्टी के ठीकरे पर भूनकर खाने से दस्त अत्यन्त शीघ्र बन्द हो जाते हैं ।

१०४ खाँसी आदि की दवा--(१) लवंग ८ माशे, पीपल ८ माशे, जायफल ८ माशे, काली मिर्च ८ माशे, सोंठ ८ पैसे भर और इन सब के बराबर मिश्री-- इन सब का चूर्ण कर नित्य ८ माशे की मात्रा जल के साथ ली जावे तो खांसी, ज्वर, प्रमेह, अरुचि, श्वास, मन्दाग्नि, संग्रहणी ये सब रोग दूर हो जाते हैं । इसे लवंगादि चूर्ण कहते हैं । (२) कालीमिर्च १ तोला, छोटी पीपल १ तोला, जवाखार १ तोला, अनार दाना २ तोला, इन सब का चूर्ण करके आठ तोले साफ गुड़ में सान (मिला) कर चार चार माशे की गोलियाँ बना ली जावें । जब खाँसी चले, तब एक गोली मुँह में डालकर चूसनी चाहिए । इन के चूसने से सब तरह की खाँसी आराम होती है ।

१०५ नेरुआ (बाला) की दवा--- २ रु. भर कनगूगल में थोड़ा सा सिन्दूर और दो बताशे मिलाकर खूब कूटना चाहिए । पीछे उसे थोड़ा सा गर्म कर नेरुआ के जखम पर बांधना चाहिए, इस से बहुत जल्दी आराम हो जाता है । कड़वे नीम के पत्ते पीसकर या उबालकर बांधने से तथा कुचले के बीज पानी में पीसकर लगाने से नेरुआ रोग दूर हो जाता है ।

१०६ अजवायन का सत, पिपरमेन्ट और कपूर, इन तीनों को बराबर लेकर शीशी में भर लेना चाहिए अमृतधारा के समान बन जायगी। इस से ज्वर पेट दर्द, बदहजमी सिरका दर्द, कय, दस्त, आँव गिरना, शूल आदि अनेक रोगों पर 'अमृतधारा' के समान काम देता है। विच्छू आदि के जहर दूर करने के लिए काटी हुई जगह पर लगाना चाहिए थोड़ी देर में आराम हो जायगा। यह नुस्खा आजमाया हुआ है।

१०७ बुद्धि- वर्द्धक सरस्वती चूर्ण— गिलोय, चिरचिरा (आँधीझाड़ा) विडंग (वायविडंग) सँखाहोली, ब्राम्ही, वच, सोंठ, हरड़े, सतावरी, इन नौ चीजों को बराबर- बराबर लेकर चूर्ण बना लेना चाहिए। पीछे चार आने भर चूर्ण घी में मिलाकर चाटने से तीन ही दिन में बुद्धि का चमत्कार नजर आने लगता है। इस का कुछ दिन सेवन करने से बुद्धि की अपूर्व वृद्धि होती है।

१०८ शरीर का स्वास्थ्य मन के स्वास्थ्य पर निर्भर है। जिस का मन शुद्ध, क्रोध शोक आदि बुरे भावों से निर्लिप्त रहता है, क्षमा, दया, परोपकार आदि सद्भावों से भूषित रहता है, तथा जो ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, वे सदा तन्दुरुस्त रहते हैं; इसलिए मनुष्यमात्र को चाहिए कि वे प्रतिक्षण अपनी आत्मा के विचारों का निरीक्षण करते रहें, तथा अपनी आत्मा में बुरे भाव उत्पन्न होने न दें। जो मनुष्य इस नियम का पालन करते हैं, वे प्रायः तन्दुरुस्त रहते हैं।

## छात्रादि आचरण—शिक्षा-मणिमाला.

(२)

१ विद्यार्थियों को प्रातःकाल बहुत जल्दी उठना चाहिए,उठते ही पहले ईश्वर–प्रार्थना करके शौचादि क्रिया से निवृत्त होने के बाद पढ़ने में लग जाना चाहिए; क्योंकि प्रातःकाल पाठ याद करनेका अच्छा समय है; इस समय थोड़े ही परिश्रम से जल्दी याद हो जाता है और कठिन से कठिन विषय भी जल्दी समझ में आ जाता है; इसलिए प्रातःकाल के समय को व्यर्थ नहीं खोना चाहिए ।

२ माता पिता, गुरुजन और अपने से बड़ों का विनय—सन्मान करना, उनकी आज्ञा का पालन करना; और उनके सामने नीचे आसन पर बैठना चाहिए, जो छात्र विनयवान् होता है, उस पर सब प्रसन्न रहते हैं, गुरु आदि की कृपा रहती है, वे सदा उस को सुखी और उन्नत बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। विनीत, विद्या तथा कलाकौशल में शीघ्र पारंगत होता है और सदा सुखी रहता है; इसलिए हर एक विद्यार्थी का यह पवित्र कर्त्तव्य है कि अपने माता पिता शिक्षक तथा बड़े पुरुषों को प्रणाम, सेवा-शुश्रूषा आदि द्वारा विनय भक्ति करें ।

३ कोई काम हो, विना सोचे विचारे शुरू नहीं करना चाहिए, शुरू करने के बाद अच्छे काम को पूरा किये विना

अधूरा कभी नहीं छोड़ना चाहिए। अपने विचारों को स्थिर बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

४ जिस से असभ्यता प्रकट होती हो; ऐसा जल्दी नहीं चलना चाहिए!

५ बैठे या खड़े हुए विना कारण हाथ पैर न हिलाने चाहिए।

६ अनहोने, असभ्य, अप्रिय, और अविचारित (अंडबंड) वचन न बोलने चाहिए। किन्तु हित, मित और प्रिय बोलना चाहिए।

७ विद्यार्थियों को अपना हृदय, सरल बनाना चाहिए छल-कपट को लेशमात्र भी स्थान नहीं देना चाहिए। जो छात्र निष्कपट होते हैं, वे ही श्रेष्ठ गिने जाते हैं और उनका सब विश्वास करते हैं।

८ किसी का अपमान न करो; क्योंकि मानहानि का दुःख मृत्यु से भी अधिक होता है।

९ क्षमा को भूषण बनाओ, कितने ही क्षोभ उत्पन्न करने वाले कारण मिलें; लेकिन कभी क्रोध न करो, हमेशा शान्तचित्त रहो।

१० शिक्षक, माता-पिता तथा मित्र आदि के उपकार को कभी न भूलो; क्यों कि इन के उपकार से मनुष्य कभी उरिन

नहीं होसकता, जो उपकार नहीं मानता, वह कृतघ्नी एवं पातकी माना जाता है। इसलिए आप कृतघ्नी न बनो, कृतज्ञ बनो।

११ अनेक शास्त्र तथा कला-कौशल के ज्ञाता होकर भी अहंकार न करो, क्योंकि अहंकार मनुष्य को नीचे गिरा देता है।

१२ यदि शिक्षक आदि से कोई ग़लती हो जावे तो उनका तिरस्कार न करो,

१३ अपने सहपाठियों तथा मित्रों के साथ प्रेम रक्खो; उनके साथ कभी लड़ाई झगड़ा तथा वैमनस्य (मनमुटाव) न करो; बल्कि सहोदर भाई के समान बर्त्ताव करो, ऐसा करने से वे आप को हर काम में सहायता देंगे एवं तुम प्रेम-देवता के उपासक बनकर अपने समाज तथा देश और दूसरे देशों का भला कर सकोगे।

१४ किसी उपकारी से यदि मनमुटाव हो जाय तो उसकी पीठ पीछे निन्दा न करो, उस के उपकार को याद कर हमेशा कृतज्ञ बने रहो। क्योंकि साधारण जन की निन्दा करना पाप है, और उपकारी की निन्दा करना महापाप है।

१५ किसी को गाली गलोच न दो तथा किसी के साथ हाथापाई न करो। ये सब अशिष्ट और असभ्य पुरुषों के काम हैं, आपके नहीं।

१६ सेवा आदि कार्य का भार जो तुम्हें सौंपा गया हो, उसे प्राणप्रण से पूरा करो। उस में कितनी ही कठिनाइयाँ उप-

स्थित हों. परवाह न करो, कर्म- वीर बनो।

१७ विना कारण इधर उधर नहीं घूमना चाहिए, विशेष करके रात्रि में काम होने पर भी अकेले कहीं पर न घूमना चाहिए।

१८ संसार के सब जीवों से मित्रता, गुणवान् पुरुषों से प्रेम, दुःखी जीवों पर दया और शत्रुओं पर मध्यस्थभाव रक्खो।

१९ समस्त प्राणियों को अपने समान, परधन को पत्थर समान और परस्त्री को माता समान समझो।

२० विद्या से आत्मज्ञान, धन से दान, और शक्ति से दूसरों की रक्षा करनी चाहिए।

२१ क्षमा रूपी तलवार को हमेशा अपने हाथ में रक्खो, जिस से क्रोध- शत्रु तुम्हारी सद्ज्ञान--लक्ष्मी को न हर सके।

२२ सब के साथ प्रेम रक्खो, दूसरे की निन्दा मत करो किन्तु गुण प्रकट करो और मीठे वचन बोलो।

२३ सत्संगति परमलाभ, संतोष परम धन, सद्विचार परमज्ञान और समता परमसुख है।

२४ सत्पुरुषों की संगति करो, नीचों और कुव्यसनियों से सदा दूर रहो और अन्याय से बचो।

२५ आत्मा को सब प्रकार के व्यसनों से हमेशा दूर रक्खो।

२६ विद्यार्थियों को संस्था (जिस विद्यालय, कॉलेज, स्कूल या बोर्डिंग में रहता हो उस) के सब नियमों का भले प्रकार पालन करना चाहिए।

२७ हर रोज़ व्यायाम अवश्य करना चाहिए, व्यायाम से शरीर पुष्ट और निरोग रहता है। किन्तु व्यायाम शक्ति और प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। लिखने पढ़ने वालों को कुश्ती करना हानिकारक है, उन का सब से अच्छा व्यायाम शुद्ध वायु वाले मैदान में घूमना है, थोड़े दंड बैठक करना तथा मुद्गर घुमाना आदि भी अच्छा है। सैंडो की कसरत बहुत अच्छी है, इस से शरीर सुघड़ होता और ज्ञानतन्तुओं को हानि नहीं पहुँती। यदि आसनों का अभ्यास किया जाय तो सब से उत्तम है। श्रमजीवियों के लिए कुश्ती भी लाभदायक है।

२८ विद्वानों की दो शक्तियाँ मानी गई हैं। लेखन- शक्ति और वक्तृत्व- शक्ति। जिस में इन दो शक्तियों में से एक भी शक्ति नहीं है, वह कुछ भी काम नहीं कर सकता; इसलिए आप को लेख-शक्ति और वक्तृत्व-शक्ति का विकास करना चाहिए।

२९ कण्ठस्थ विद्या ही वक्त पर काम आती है। और पुस्तक की विद्या पुस्तक में ही रह जाती है; मौके पर काम नहीं देती- इसलिए जो ग्रन्थ या ग्रन्थ का भाग कण्ठस्थ करने योग्य हो, उसे अवश्य कण्ठस्थ करो,

३० स्कूल, विद्यालय, लाइब्रेरी आदि संस्थाओं में कोई छात्र दूसरे की बेअदबी, मजाक खोटीशिकायत और कलह न करें, तथा अशान्ति न फैलावें, एवं अश्लील शब्दों का उच्चारण न करें। यदि आप

से कोई गलती हो जावे तो उसे साफ शब्दों में स्वीकार कर लो; एक झूठ को सिद्ध करने के लिए अनेक झूठ बोलकर अपनी आत्मा को दूषित न करो। बिना जाँच पड़ताल किये दूसरों को दोष न लगाओ। बिना आज्ञा किसी की चीज मत उठाओ, चलाकी धोकाबाज़ी और ठगाई किसी के साथ मत करो।

३१ थाली में भोजन उतना ही लेना चाहिए जिसे जूठा न डालना पड़े। भोजन मात्रा से अधिक न खाना चाहिए, अधिक भोजन करने से आलस्य तथा निद्रा सताती है और अजीर्ण होने का भय रहता है।

३२ नाक का मल, कफ और थूक वगैरह घृणा उत्पन्न करनेवाली चीजें ऐसी जगह डालनी चाहियें जहाँ लोगों की नज़र न पड़े। गंदकी न फैले और सम्मूर्छिनआदि जीव पैदा न हों।

३३ पानी खड़े खड़े नहीं पीना चाहिये और पीते समय "उचक उचक" की आवाज कण्ठ से नहीं होने देना चाहिये। बिना आवाज़ के भी पानी सुगमतापूर्वक पिया जा सकता है।

३४ अपने से बड़े तथा मान्य पुरुषों के साथ, शान्ति, नम्रता और अत्यन्त बुद्धिमानी से बात-चीत करनी चाहिये। ऐसा न हो कि आप उनकी नज़र में उद्दण्ड, मूर्ख अथवा घमण्डी ठहरें।

३५ खाद्य पदार्थ के रहने पर यदि और खाने की इच्छा हो तो "लाओ लाओ" का हल्ला नहीं मचाना चाहिये। वरन्

विनम्र और धीमे स्वर से मँगा लेना चाहिये।

३६ भोजन के समय रंज पैदा करनेवाले और घृणा दिलाने वाले वाक्यों का प्रयोग भूल कर भी मत करो।

३७ कन्याओं को बहिन या बेटी, युवतियों को बाई या बहिन तथा वृद्धा स्त्रियों को माजी या माता कहकर सम्बोधन करो।

३८ जहाँ औरतें हों वहाँ गाना बजाना, ताली पीटना, चुटकियाँ बजाना और सीटी देना असभ्यता है।

३९ जहाँ प्राय: औरतें रहती हों उस जगह ठहरना, घूमना या बार बार जाना ठीक नहीं है।

४० अपने गाँव के बाजार में चलते समय गलियों में देखना और ऊपर की ओर छज्जे तथा अट्टालिकाओं को देखना उचित नहीं है।

४१ प्रणाम करने का ढंग लापरवाही लिये नहीं होना चाहिये। कम से कम प्रणाम करते समय श्रद्धा, भक्ति, और प्रेम उसके साथ अवश्य ही दिखाना चाहिये।

४२ किसी के साथ बातचीत करते समय, हाँ या ना के स्थान पर "जी हाँ" "जी नहीं" अथवा अन्य किसी प्रकार के ऐसे ही शिष्ट वाक्यों का प्रयोग करो।

४३ महाशय, जनाब, श्रीमान्, मित्र, मेहरबान, साहिब, बाबू, भाई आदि शिष्टाचार-सूचक शब्दों का लोगों के साथ बातचीत के समय यथायोग्य व्यवहार करो।

४४ अपने पूज्य पुरुषों के सामने पैर पर पैर रखकर मत बैठो, और न उनसे उच्च आसन पर ही बैठो।

४५ जब कोई पूज्य पुरुष अपने यहाँ आवे तो उसे उठकर मान दो और यदि आप स्वयम् किसी उच्च आसन पर बैठे हो तो उसे उस पर बिठाकर खुद किसी नीचे दर्जे के आसन पर बैठो।

४६ यदि किसी का अपने ऊपर थोड़ा सा भी अहसान हो तो "मैं आपका आभारी हूं, बड़ी कृपा की, मैं आपको धन्यवाद देता हूं साधुवाद" आदि शब्दों द्वारा कृतज्ञता प्रकट करो।

४७ अपने पूज्य अथवा मान्य पुरुष के खड़े हुए बातें करने पर खुद बैठे न रहो।

४८ किसी के प्रश्न का उत्तर कठोर बचनों से कदापि न दो

४९ चलते समय ध्यान रखो कि पैरों से धूल न उड़े। और यदि उड़ती हो तो हवा के रुख को देखकर चलो, जिससे वह उड़कर किसी अन्य महाशय पर न गिरे।

५० थूकते समय या कुल्ली करते समय हवा के चलने का रुख देखो; ऐसा न हो कि किसी मनुष्य पर जा गिरे।

५१ कपड़े हमेशा साफ सुथरे पहिनो। कम कीमत के मोटे भले ही हों, किन्तु साफ हों। बहुमूल्य रेशम या मखमल के फटे और मैले न हों।

५२ फटे हुए कपड़ों को सिलाकर पहिनना ठीक है। सिले-हुए पैबन्द लगे कपड़ों को पहिनने में कोई शर्म की बात नहीं है; हाँ, फटे, लटकते हुए और मैले कपड़ों को पहिनना ठीक नहीं है।

५३ किसी से कोई वस्तु लेकर मज़ाक में भी उसे लौटाते समय फेंकना नहीं चाहिये। इस तरह की बेपरवाही से लोग असभ्य समझे जाते हैं। जिस तरह नम्रता दिखाकर उसे लिया था उसे उसी भावना के साथ लौटाओ। कई लोग पुस्तक को लेकर लौटाते समय फेंक देते हैं, यह ठीक नहीं है; क्योंकि इस तरह पुस्तक फट जाती है— जिल्द टूट जाती है।

५४ सवारी में बैठे हुए के लिये, वृद्ध, रोगी, स्त्री, स्नातक, अंधा, लँगड़ा, दूल्हा, राजा, गुरु आदि बड़े जन और बोझवाले के लिये रास्ता छोड़ दो।

५५ पराये घर जाकर अपने घर के से काम मत करो बल्कि उस की सुविधाओं का और उसके बनाये हुए नियमों का अच्छी तरह ध्यान रखो।

५६ लिखते समय कलम और हाथ को स्याही से लतपत मत होने दो। बल्कि ऐसी सावधानी से लिखो कि हाथ को जरा भी स्याही का दाग तक लगने न पावे।

५७ दावात में स्याही भरने के लिये कलम को उसमें ज़ोर ज़ोर से मत पटको।

५८ कलम में स्याही अधिक भर आने पर उसे इधर उधर मत छींटो।

५६ अपने कपड़ों पर स्याही की एक बूँद भी मत गिरने दो।

६० बहुत से लोगों की आदत होती है कि कलम को साफ़ करने के लिये अपने सिर के बालों में पोंछ लेते हैं, यह ठीक नहीं है।

६१ जिन शब्दों का आपको शुद्ध उच्चारण न आता हो उन्हें न बोलने का ध्यान रखो। शुद्ध रूप मालूम हो जाने पर ही उन शब्दों का प्रयोग करो। बहुत से लोग संस्कृत, अरबी, फारसी और अँग्रेज़ी आदि भाषाओं को न जानते हुए भी उन भाषाओं के शब्दों का प्रयोग करते हैं—यह अनधिकार चेष्टा करना ठीक नहीं है।

६२ अपने मुँह से शुद्ध, उत्तम, मधुर और शिष्टतायुक्त वाक्यों को ही निकालो।

६३ किसी दूसरे की वस्तु यदि अपने द्वारा बिगड़ जाय अथवा खो जावे तो उस वस्तु के मालिक की जैसे हो सके वैसे तुष्टि करो।

६४ कुर्सी, स्टूल, तिपाई, मेज़, चारपाई आदि वस्तुओं को ज़ोर ज़ोर से पटका पटकी और खींचातानी मत करो।

६५ सोते हुए मनुष्य के पास इतने जोर से पैर पटककर न चलो फिरो जिससे उसकी नींद खुल जावे, बल्कि बहुत ही आहिस्ता आहिस्ता चलो।

६६ अगर कोई तुम्हें गाली दे रहा हो तो तुम भी उसे गाली न देने लगो। क्योंकि गालियाँ देनेवाला आदमी सभ्य समाज में नीच व्यक्ति गिना जाता है।

६७ ऐसे शब्द अथवा वाक्यों का प्रयोग न करो जिनसे सुन-नेवालों को लज्जा उत्पन्न हो।

६८ बिना आज्ञा प्राप्त किये किसी की सवारी, पलङ्ग और आसन पर मत बैठो।

६९ पाठशाला में कई घिनौने बालक अपनी स्लेट (पट्टी) को थूक से साफ करते हैं, यह आदत बहुत ही भद्दी है।

७० चलते समय कंकर मिट्टी लकड़ी या अन्य किसी प्रकार की वस्तुओं को पैर से ठुकराते हुए चलने का स्वभाव मत डालो। यह आदत प्रायः फुटबाल के खिलाड़ियों में होती है, अतएव फुटबालप्रेमी विशेष ध्यान रखें।

७१ यदि कोई सत्कार के लिये पान, सुपारी, लौंग, इलायची, इत्र वगैरः दे तो उसे धन्यवादपूर्वक स्वीकार करो। ले चुकने पर या लेने के पूर्व दाता को हाथ जोड़कर प्रणाम करो।

७२ व्याख्यान देते समय अपने हाथ पैरों और मुख आदि अंगों को अकारण ही अधिक मत हिलाओ। जल्दी जल्दी सपाटे से भाषण मत करो। अपने हाथों को बारम्बार टेबल पर मत पटको और खूब फैली टाँगे करके मत खड़े हो। अपने खड़े रहने का ढङ्ग स्वाभाविक ही हो, इस बात का ध्यान रखो।

७३ तालाबों, नदियों, कुओं, बावडियों और ऐसे ही अन्यान्य जलाशयों में पत्थर मत फेंको ।

७४ पराई स्त्री को अपनी माता के समान समझो । पराये धन को धूल के बराबर समझो और प्राणी मात्र में अपनी सी जान देखो अर्थात् किसी को कष्ट न पहुँचाओ ।

७५ यदि आप ठाले (निकम्मे) हों तो किसी अपने मित्र के यहाँ जाकर उसके काम में विघ्न मत डालो । यदि आपका मित्र लिहाज के कारण आपसे कुछ न कहता हो तो आप उसके समय का ध्यान रखो । अपनी व्यर्थ की बातों में उसका अमूल्य समय बरबाद मत करो ।

७६ किसी पाठशाला में जाकर पढ़ानेवाले से अकारण ही बहुत देर तक बातचीत न करो। जहाँ तक बन सके किसी साधारण काम के लिये भी स्कूल में न जाओ । आप अपनी बात को पत्र द्वारा भी अध्यापक महाशय को सूचित कर सकते हैं ।

७७ जिस किसीने अपने साथ कभी भी उपकार किया हो उसके उपकार का बदला, समय पाते ही, अवश्य चुका दो ।

७८ टेबल (मेज) वगैर: बैठने की वस्तु नहीं है, इसलिये बैठने की जगह पर ही बैठो । बहुत से महाशय लिखते हुये व्यक्ति की टेबल पर ही लद जाते हैं ।

७९ अपनी खुद की पुस्तक पर अथवा किसी दूसरे की पुस्तक पर जो मन में आवे सो न लिखो । क्योंकि पुस्तकें लिखने के

लिये नहीं, बल्कि पढ़ने के लिये हैं।

८० जो वस्तु जिससे लो वह उसे ही लौटाओ अर्थात् बिना वस्तु के सच्चे अधिकारी की आज्ञा प्राप्त किये किसी दूसरे को मत दो।

८१ जिसका अपराध हो, उसे ही उसके विषय में जो कुछ भला बुरा कहना हो कहो। व्यर्थ ही किसीका दोष किसी और के माथे मढना ठीक नहीं।

८२ धार्मिक तथा अन्य इसी प्रकार की बातचीत करते समय ज़रा ज़रा सी बात पर क्रोध न करो और न ज़ोर ज़ोर से बोलने ही लगो। व्याख्यान के समय व्याख्यान सुनो न कोई पुस्तक पढ़ो और न दूसरा कोई काम करो।

८३ पुस्तकों पर मत बैठो, उन्हें पैर न छुआओ और उनके पृष्ठों को न मुड़ने दो।

८४ पुस्तकों की गोलमोल वड़ी करके या तोड़ मरोड़कर जेब में रखकर ले जाने अथवा हाथ में ले जाने का ढंग बहुत ही बुरा है। ऐसा करने से पुस्तक बदशक्ल बन जाती है।

८५ बिना आज्ञा प्राप्त किये किसी की वस्तु को मत उठाओ, इस बात का ध्यान खूब अच्छी तरह रखना चाहिये।

८६ हँसी मजाक में भी किसी की वस्तु को उसके मालिक की गैरहाजिरी में मत उठाओ, न छुपाओ। यह कभी कभी चोरी की मियाद तक पहुँच जाता है।

८८ यदि दो व्यक्ति आपस में बातचीत कर रहे हों तो आप विना आज्ञा प्राप्त किये उनके पास मत जाओ। इतनी दूर खड़े रहो कि उनका भाषण आप न सुन सकें।

८९ किसी की वस्तु को लालचवश अपने लिये मत उठाओ। कभी कभी कई लोग किसी मनुष्य की आदत देखने के लिये भी कुछ वस्तु रख देते हैं और इसी पर से उसकी ईमानदार और बेईमान तबियत का पता लगा लेते हैं।

९० पेशाब या पाखाने के वक्त ऐसी जगह बैठो जहाँ एकाएक किसी की दृष्टि न पड़ सके।

९१ पागल, बेहोश तथा कोढ़ी मनुष्य को मत छेड़ो।

९२ किसी काम के करने में शीघ्रता मत करो, बल्कि खूब सोच विचारकर उसके अंतिम परिणाम का ध्यान रखते हुए करो।

९३ गुरु के चरण स्पर्श करते समय दाहिने हाथ से दाहिना और बाएँ हाथ से बायाँ पैर छुओ।

९४ परदेश जाते समय, दूसरे ग्राम को जाते समय, विदेश अथवा अन्य गाँव से लौटकर आने के समय और किसी संस्कार विशेष के समय अपने पूज्यों के पैरों को छूकर आशीर्वाद प्राप्त करो।

९५ जो उम्र में, पद में, प्रतिष्ठा में, बुद्धि में अथवा कार्य में अपने समान हो, और आपस में प्रणाम का व्यवहार चालू हो तो सदा उसी के द्वारा पहिले प्रणाम की आशा न करो। बल्कि उसके

पहिले आप उससे प्रणाम करने का ध्यान रखो।

९६ नदी के किनारे, ताल के किनारे, कुएँ के पास, मार्ग में या मार्ग के किनारे, फलवाले वृक्ष के नीचे, सूने घर में, पवित्र स्थान में और श्मशान में पाखाने मत जाओ।

९७ अपने मुँह अपनी तारीफ नहीं करनी चाहिये बल्कि काम ऐसे करने चाहियें जिनसे लोग खुद बखुद आपकी तारीफ करने लगें।

९८ दुःख में पड़े हुए अपने शत्रु को भी मत सताओ बल्कि जहाँ तक हो उसको सच्चे मन से कष्ट के समय में सहायता दो।

९९ रंडी वगैरः स्त्रियों के नाच में मत जाओ! यदि कहीं मार्ग में वेश्या समाज इकट्ठा हो रहा हो तो वहाँ खड़े मत रह जाओ। बल्कि ऐसे जलसों और उत्सवों में भी मत जाओ जहाँ रंडी का नाचगान होनेवाला हो।

१०० किसी उत्सव, समाज या सभा में पहुँचकर वहाँ के उपस्थित महाशयों को प्रणाम अवश्य करो।

१०१ किसी वाचनालय (लायब्रेरी) में जाकर बातचीत न करो और न जोर जोर से बोलकर ही पढ़ो।

१०२ लायब्रेरी में जाकर जिस अखबार या पुस्तक को आप देखना चाहते थे और यदि उसे उस समय कोई देख रहा हो— पढ़ रहा हो, तो उसके हाथ में से न छीनो।

१०३ इधर की उधर कहने की आदत मत डालो। ऐसे आदमी कुछ दिनों बाद दोनों ओर के नहीं रहने पाते।

१०४ अपने अध्यापक को अत्यन्त पूज्य दृष्टि से मानो, क्योंकि ज्ञानदाता आपके लिये वही हुआ है, अतएव उसकी इज्जत करो।

१०५ चोरी, व्यभिचार और जुआ आदि निंद्य कार्य भी देश की सभ्यता को कलंकित करनेवाले हैं, अतएव इन्हें रोकने का प्रयत्न करो।

१०६ छड़ी, बेंत, लकड़ी आदि को हाथ में लेकर व्यर्थ ही हिलाते हुए या घुमाते हुए मत चलो। इससे चित्त का चांचल्य-भाव प्रकट होता है। उस छड़ी से मार्ग में के कुत्तों पशुओं पर प्रहार मत करो।

१०७ किसी वस्तु को देखकर उसे अकारण ही माँगने मत लग जाओ। क्योंकि शायद वह उसके न देने की हुई तो आपके माँगने के कारण उसे कष्ट होगा और यदि उसने नहीं दी तो आपके चित्त को दुःख होगा।

१०८ वी० पी० मँगाकर लौटा देना अनुचित है। यदि लौटाना ही है तो मत मँगाओ। पहिले विचार लो, बादमें वी० पी० मँगाने का ऑर्डर दो। इस तरह से विश्वास जाता है। साथ ही आपका तो खेल हो जाता है और दूकानदार का डाक खर्च पेकिंग मेहनत वगैरः बर्बाद हो जाता है।

# गृहस्थोपयोगी—मणिमाला.

मुसाफिरी करने वाले नीचे लिखे अनुसार शुभाशुभ मुहूर्त्त देखें—

## १ चन्द्रज्ञान-

सन्मुख चन्द्रमा समस्त दोषों का नाश कर के शुभफल देने वाला होता है। मेष सिंह और धन राशि का चन्द्रमा पूर्व में, वृष कन्या और मकर राशि का चन्द्रमा दक्षिण में, मिथुन तुला और कुंभ राशि का चन्द्रमा पश्चिम में, तथा कर्क वृश्चिक और मीन राशि का चन्द्रमा उत्तरदिशा में रहता है। इसका फल— सन्मुख चन्द्रमा अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति, दाहिना चन्द्रमा सुख संपत्ति की प्राप्ति, बायाँ चन्द्रमा धन का नाश, और पीठ का चन्द्रमा मृत्यु की प्राप्ति करता है।

## २ दिशाशूल-

सोम और शनि वार को पूर्व में, मंगल और बुधवार को उत्तर में, रवि और शुक्र वार को पश्चिम में और गुरुवार को दक्षिण दिशा में दिशाशूल रहता है। इसलिये दिशाशूल को दाहिना और विशेष कर सन्मुख लेकर नहीं जाना चाहिये। अगर जरूरी हो तो इस का परिहार (पालण) तो अवश्य करना चाहिये—रविवार को ताम्बूल या घी खाकर, सोमवार को काच देखकर या दूध पीकर, मंगल वार को धाना या गुड़, बुधवार को गुड़ या तिल, गुरु

वारे को दही, शुक्रवार को राई या जव, शनिवार को वायविडंग या उड़द की वस्तु खाकर गमनादि कार्य करे।

### ३ कालचक्र—

शनिवार को पूर्व में, शुक्रवार को अग्नि कोण में, गुरुवार को दक्षिण में, बुधवार को नैऋत्य कोण में, मंगलवार को पश्चिम में, सोमवार को वायु कोण में और रविवार को उत्तर दिशा में कालचक्र का वास होता है इसलिए जिस दिशा व कोण में कालचक्र का वास हो उस दिशा में नहीं जाना चाहिये।

### ४ योगिनी.—

प्रतिपदा और नवमी को पूर्व में, तृतीया और एकादशी को अग्नि कोण में, पंचमी और त्रयोदशी को दक्षिण में, चतुर्थी और द्वादशी को नैऋत कोण में, षष्टी और चतुर्दशी को पश्चिम में, सप्तमी और पूर्णिमा को वायु कोण में, द्वितीया और दशमी को उत्तर में, अष्टमी और अमावास्या को ईशान कोण में योगिनी का वास होता है। इसलिए जिस दिशा में योगिनी का वास हो उस दिशा में नहीं जाना चाहिये। फल—बांई योगिनी सुख की देनेवाली, पीठ की वांछित वस्तु की प्राप्ति करने वाली, दाहिनी धन का नाश करने वाली और सन्मुख की योगिनी मरण की देने वाली होती है।

---

१ किसी आचार्य के मत में यह भी शुभ मानी गई है।

## ५ छायालग्न—

शुभ मुहूर्त के न मिलने पर आवश्यकीय कार्य में छाया-लग्न से कार्य करना चाहिये. वह छाया अपने शरीर की अपने ही पैर से मापी जाती है । रविवार को ११, सोमवार को ८॥, मंगलवार को ९, बुधवार को ८, गुरुवार को ७, शुक्रवार को ८॥ और शनिवार को भी ८॥ पैर छाया रहे तब शुभ समय माना गया है, यह छाया लग्न १ दिन में दो दफा (सुबह और शाम) देखा जाता है । या बारह अंगुल का शंकु (खूंटा) की छाया रविवार को २०, सोमवार को १६, मंगल वार को १५, बुधवार को १४, गुरुवार को १३, शुक्रवार को १२ और शनिवार को भी १२ अंगुल हो तो भी गमनादि शुभ कार्य करना चाहिये । ऐसा आचार्यों का मत है ।

६ विजय मुहूर्त जो दिन के दुपहर में मध्याह्न से एक घड़ी पहले से लेकर एक घड़ी पीछे तक अर्थात् मध्याह्न की दो घड़ी रहता है, इस में भी गमनादि कार्य शुभ माना गया है ।

७ अपनी जिस (बाँई या दाहिनी) नासिका में से वायु निकलता हो उसी तरफ के पैर को प्रथम उठाकर गमन करे तो विजय प्राप्त करता है ।

---

२-चौवीस मिनिट की एक घड़ी होती है ।

८ नेपोलियन बोनापार्ट ने अपनी रमल शकुनावली नीचे लिखे महीनों की तारीखें अशुभ मानी हैं— जनवरी ता. १,२,४, ६,१०,२०,२२ । फरवरी ता. ६, १७, २८। मार्च ता. २४, २६ । अप्रैल ता. १०,२७,२८। मई ता. ७, ८ । जून ता. २७। जुलाई १७, २१ । अगस्त ता. २०, २२ । सप्टेम्बर ता. ५, ३० । अक्टूम्बर ता. ६ । नवेम्बर ता. ३, २६ । डिसेम्बर ता. ६, १०, १५ ।

## ९ ॥ दिन के चौघड़िये ॥

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल |
| चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ |
| लाभ | शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग |
| अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल | उद्वेग |
| काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल |
| शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ |
| रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत |
| उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल |

## १० ॥ रात के चौघड़िये ॥

| रवि | सोम | मंगल | बुध | गुरु | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|
| शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ |
| अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल | उद्वेग |
| चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ |
| रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत |
| काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल |
| लाभ | शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग |
| उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ | शुभ | चंचल | काल |
| शुभ | चंचल | काल | उद्वेग | अमृत | रोग | लाभ |

११ जिस देश या प्रान्त में कारबार करना हो पहिले वहां की भाषा, रहन सहन, आवश्यकताएं और कानून कायदे जान कर उस का भली भांति से अनुभवी (जानकार) हो जाना चाहिये।

१२ जिस जगह जिस माल की खपत हो वही माल खपत के माफिक दूकान में रखना चाहिये।

१३ जो चीज़ खरीददार मांगे यदि वह दूकान में न हो तो उसका नोट करते रहना चाहिये और देखना चाहिये कि किस चीज़ की कितनी मांग है, मांग के अनुसार उस चीज़ को दूकान में रखना चाहिये कि जिससे ग्राहक खाली न जाय; ऐसा करने से दूकान जम जाती और विक्री बढ़ जाती है।

१४ दूकानदार को चाहिये कि ग्राहक से मिठास, और आदर सत्कार के साथ बोले। उसकी रुचि और अभिप्राय की तरफ खयाल रखकर जो चीज़ मांगे, वही या उससे मिलती जुलती अन्य चीजें दिखावे, इस प्रकार ग्राहक को प्रसन्न रखना चाहिए, जिससे कि वह दुबारा भी उसी की दूकान पर आवे।

१५ कौन चीज़ किस समय अधिक या कम बिकती है, किस समय कौन चीज़ अधिक या कम पैदा होती है, कौन चीज़ जल्दी और कौन देर में खराब होती है, दूकानदार को यह ज्ञान होना बहुत आवश्यक है।

१६ नक़द दाम देकर जो चीज़ खरीदी जाती है, उसमें

किफ़ायत पड़ती है। क्योंकि नक़द से खरीदने वाला दबैल नहीं रहता।

१७ माल थोड़े नफ़े से बेचने से बिक्री बढ़ जाती है और बिक्री के बढ़ने से थोड़ा नफ़ा लेने पर भी ज्यादा लाभ हो जाता है।

१८ जो आदमी सब जगह माल तलाश करके जहां सस्ता मिलता है वहां जाकर स्वयं खरीदता है, उसे अधिक लाभ होता और होशियारी बढ़ती है। परन्तु बाहर इस बात का खयाल रखना चाहिए कि ठगों के धोखे और कुसंगति में न फँस जाय।

१९ माल मँगाते समय पहले सब जगह से भाव मँगालेना चाहिए। फिर जहां सस्ता पड़ता और चीज़ अच्छी हो, वहां से ही मंगाना चाहिए।

२० तेज़ भाव का, कम बिकने वाला, और जल्दी खराब होने वाला माल ज्यादा नहीं खरीदना चाहिए।

२१ जिस व्यापार में ज्यादा और जल्दी घट-बढ़ होती हो, इसमें सोच समझकर हाथ डालना चाहिए। और सट्टे फाटके से दूर रहना चाहिये।

२२ जब माल बाजार में कम होता और आमदनी भी कम होती है तब उसका तेज़ भाव हो जाता है। जब माल तेज़ हो गया हो, तो थोड़ा २ बेचना चाहिए, एक साथ नहीं। ज्यों २ भाव तेज़ होता जाय त्यों त्यों बेचता जाय। एकदम बेचना बन्द भी न कर देना

चाहिए। जब माल ज्यादा आने वाला हो और जहां से माल आवे, वहां का पड़ता सस्ता हो तो अपने पास का माल ढीले हाथ से तुरत निकाल देना चाहिए- रोकना नहीं चाहिए।

२३ जब माल का भाव हद से ज्यादा नीचा हो जाय, तब माल खरीदना अच्छा होता है।

२४ जहां से माल आता हो, वहां से भाव सदा मंगाते रहना चाहिए। जिससे तेज़ी मन्दी का हाल मालूम होता रहे।

२५ मज़दूरी जहां सस्ती होती है वहां की तैयार हुई चीज़ सस्ती पड़ती है और जहां खर्च कम है वहां मजूरी भी सस्ती होती है।

२६ आढ़त का काम करने वाले और बाकी छोड़ने वाले को बाहर घूमकर सब आढ़तियों का काम देखना चाहिए। ऐसा करने से आसामी का हाल मालूम हो जाता, वहां का कायदा कानून मालूम हो जाता, और किस किस्म का माल कहाँ २ चलता है, यह भी मालूम हो जाता है। आढ़तियों के साथ हिसाब का मिलान हो जाता और होशियारी आती है।

२७ ऋण (कर्ज़ा- उधार) देते समय इतनी बातों का विचार ज़रूर करना चाहिये- हैसियत, सम्पत्ति, पूंजी, व्यापार, नफ़ा, नुक़सान क्षेत्र, राजा का क़ानून, चालचलन, संगति, साख, शोभा, संप, मेल, परिवार, प्रकृति, काम करने वाला, नीयत; इत्यादि इनकी देखभाल कर के ही ऋण देना चाहिये।

२८ मुनीम (गुमास्ता) रखते समय देखना चाहिए कि वह सदाचारी हो, जुआरी न हो, सत्यवादी हो, अच्छा लिखा पढ़ा, अनुभवी, हाथ का सच्चा, ईमानदार प्रतिष्ठित, संतोषी, सरलस्वभावी, विनयी, धर्मात्मा और पागड़े जीत हो। ऐसे आदमी को यद्यपि ज्यादा वेतन देना पड़ता है, लेकिन काम अच्छा चलता और मालिक सुख पाता है।

२९ दुकान में यदि साझा करना हो, तो साझीदार में ऊपर के सब गुण देख लेना चाहिए।

३० रोकड़ ऐसे आदमी के हाथ में देना चाहिये कि जो बिश्वासपात्र, बहीखाते में होशियार, ईमानदार, हाथ का सच्चा, कुलीन, सदाचारी, विनयवान, और इज्जतदार हो।

३१ बहीखाता जमाखर्च साफ और तैयार रखना चाहिये। नामा ठामा चढ़ाना न चाहिये।

३२ रोकड़िये को चाहिये कि पहिले लिखे और पीछे देवे। "जो पहिले लिख पीछे देय, भूल परे कागज से लेय"

३३ व्यापारी को अपनी हैसियत से अधिक व्यापार नहीं करना चाहिये। जितना सँभल सके और जिसकी अच्छी तरह देख रेख कर सके उतना ही करे। शक्ति से बाहर के व्यापार में लाभ नहीं होता।

३४ नफे नुकसान का हमेशा खयाल रखना चाहिये अर्थात्

दूकान में कितनी पुंजी लगी है, उसमें से कितना माल मौजूद है, और कितनी उगाई आने योग्य है।

३५ व्यापारी को ज़मीन, मकान, गहने आदि में ज्यादा रकम नहीं रोकना चाहिये क्योंकि रकम रुक जाने से हाथ तंग हो जाता और व्यापार मन्द पड़ जाता है, इसलिये पूंजी को ऐसे कामों में कम रोकना चाहिये। खर्च आमदानी से कम रखना चाहिए और व्यर्थ व्यय भी न करना चाहिए।

३६ सस्ती और नई फैसन की चीज के चलन से पुराने फैसन की चीज का चलन मन्द पड़ जाता है। इसलिये व्यापारी को सावधान रहना चाहिये।

३७ चोरी का माल यद्यपि सस्ता मिलता है, फिर भी कभी खरीदना नहीं चाहिए। क्योंकि उसे खरीद लेने से राजदण्ड मिलता हैं, इज्जत में बट्टा लगता और अनेक कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं।

३८ दुकान पर अनेक प्रकार के ठग आते हैं। इसलिए अनजान आदमी का विश्वास नहीं करना चाहिए। जो लोभ लालच दिखाता है, समझो वहां कुछ दाल में काला अवश्य है। जो लोभ में आ जाता है, वह ठगा जाता और धोखा खाता है।

३९ प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि अपनी आय में से चौथाई या ज्यादा कम हिस्सा, स्कूल, विद्यालय, अनाथालय, पिंजरापोल

औषधालय, श्राविकाश्रम, ब्रह्मचर्याश्रम (गुरुकुल) ज्ञानभण्डार-पुस्तकालय, हुनरशाला, देशसेवासमिति, समाजसुधारक मण्डल आदि किसी उपकारी संस्था को अवश्य दे। जो महानुभाव कोई नई संस्था खोलना चाहें, उन्हें पहले ध्रुवफण्ड स्थापित करना चाहिये तथा उसका बख्शीश नामा या डीड आफ् सेटिलमेन्ट, अर्थात् लिखा पढ़ी, क़ायदे के अनुसार किसी वकील या बैरिस्टर की राय से रजिस्ट्री ऑफिस में करवा देनी चाहिये; जिससे संस्था चिरकाल तक चलती रहे। संस्था के निर्विघ्न और भले प्रकार चलते रहने के लिये ट्रस्टी, सभापति, मन्त्री और कमेटी नियत कर देनी चाहिए। ध्रुवफण्ड की रक़म से उन्नति वाले व्यापारिक शहर में अच्छे मौके की जगह का मकान ख़रीद लेना चाहिए, जिससे भाड़ा ज्यादा उपज सके और कभी ख़ाली न रहे। अथवा उसका व्याज उपजाने के लिए गवर्नमेन्ट के कागज खरीद लेना चाहिए। जिससे संस्था की प्रगति में कोई बाधा उपस्थित न हो।

४० समाज के नेता, पंच सभापति ट्रस्टी आदि मुख्य कार्यकर्त्ता योग्य चुने जाँय, वे वक्ता, सभा के नियमों के जानकार, परोपकारी, निःस्वार्थी, आत्मभोगी, निष्पक्ष, विचारशील, दृढ़प्रतिज्ञ, कर्मवीर, चारित्रशील, धीर, गंभीर, मौतविर, गुणग्राही, शुभचिन्तक, बुद्धिमान, धर्मात्मा, सौम्यप्रकृति, निर्भीक, नीतिज्ञ, दयालु, उदारचित्त, साहसी, अनुभवी, सत्यवादी विनीत, यशस्वी, एवं कुलीन होने चाहिये।

४१ घोड़े का सामान्य लक्षण— जिस घोड़े की उँचाई आगे के पैर से पीठ तक ६० से ६५ अंगुल तक हो, उसे उत्तम जाति का जानना चाहिए। जिस की उँचाई उस से अधिक हो, उसे लक्ष्मी का नाश करने वाला जानना चाहिए। जिस घोड़े की उँचाई ८५ से ६० अंगुल हो, उसे मध्यम जाति का तथा जिसकी उँचाई उससे भी कम हो, उसे जघन्य जाति का जानना चाहिए। जिस घोड़े की लम्बाई पूँछ सहित १०२ अंगुल की हो उसे उत्तम जाति का तथा ६५ से लेकर १०१ अंगुल तक हो, उसे मध्यम जाति का समझना चाहिए। जिसकी लंबाई उस से भी कम या ज्यादा हो, उसे लक्ष्मी का नाश करने वाला जानना चाहिए। जिस घोड़े के मध्यम भाग की मुटाई ८० से ८५ अंगुल तक हो, उसे धन की वृद्धि करने वाला उत्तम घोड़ा समझना चाहिए, तथा जिस घोड़े के मध्य भाग की मुटाई उस से कम या ज्यादा हो, उसे उसके स्वामी की मृत्यु करने वाला समझना चाहिए। जिस घोड़े का अगला दाहिना पाँव अगले बायें पाँव से छोटा हो, उसे अग्नि आदि का भय करने वाला समझना चाहिए। जो घोड़ा अगले दोनों पाँव, खड़े रहते समय ज़मीन से ज़रा ऊँचे रखता हो, उसे धन का क्षय करने वाला जानना चाहिए। जिस घोड़े के अगले दोनों पाँवों में से एक पैर भी खड़े रहते समय ज़मीन से ऊँचा रहता हो, उसे शत्रु द्वारा भय करने वाला समझना चाहिए। जिस घोड़े के पिछले दोनों पाँवों में से कोई भी पैर खड़े

रहते समय ज़मीन से ऊँचा रहता हो, उसे उत्तम जाति का घोड़ा समझना चाहिए, वह घोड़ा अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाने वाला होता है।

४२ घोड़े के कानों का लक्षण— जिस घोड़े के कान अखंडित तथा अनीवाले होते हैं, वह अति उत्तम जाति का घोड़ा धन और कीर्ति बढ़ाने वाला होता है। जिस घोड़े का दाहिना कान बाएँ कान से ज़रा बड़ा या छोटा हो या कान अकड़कर नहीं रहते हों— नव जाते हों, वह अपने स्वामी का नाश करने वाला होता है। जिस घोड़े के दाहिने कान में भौंर का चिह्न हो, वह अपने स्वामी के कुल का नाश करने वाला होता है। यदि उसके दाहिने कान में दक्षिणावर्त्त चक्रका चिह्न हो तो वह अपने स्वामी के राज्य आदि लक्ष्मी की प्राप्ति कराने वाला होता है। जिस घोड़े के दाहिने कान के अन्दर बाज़ू में सफ़ेद दाग़ हो, वह उत्तम जाति का होता है। यदि उस सफ़ेद दाग़ के बीच में लाल या काला दाग़ हो, वह अपने स्वामी के कुल तथा द्रव्य का नाशक होता है। जिस घोड़े का बायाँ कान दाहिने कान से ज़रा छोटा या बड़ा होता है, वह अशुभ होता है। जिस घोड़े का बायाँ कान थोड़ा फटा हो और भीतर बाज़ू में सफ़ेद दाग़ वाला हो, वह धन धान्यादि का नाश करता है। जिस घोड़े के बायें कान के ऊपर बाज़ू में शंख का चिह्न हो, उस घोड़े का स्वामी विभवशाली होता है। जिस घोड़े के कान के अन्दर बाज़ू बहुत मसे हों, वह राज्य की हानि करता है

तथा शत्रु से भय पैदा करता है। जिस घोड़े का बायाँ कान नोकदार न हो तथा वह कहीं पर भी फटी हो, वह घोड़ा धन की हानि करता है; इसलिए ऐसे घोड़े पर सवारी भूलकर भी न करनी चाहिए।

४३ घोड़े की आंखों का लक्षण— जिस घोड़े की भौं पर बिल्कुल बाल न हों, वह जघन्य होता है। जिस घोड़े की भौं पर बहुत केश हों, और वे बढ़कर आंखों को ढक दें तो वह धन का नाशक होता है। जिस घोड़े की आंखें गोल हों और उनकी पुतली ऊंची उठकर बाहर निकली हुई हो, उसे कुटुम्ब और लक्ष्मी आदि का नाश करने वाला जानो। जिस घोड़े की आंखें नुकीली चमकीली तथा सोम्य हों, वह लक्ष्मी बढ़ानेवाला होता है। जिस घोड़े की आंखों का रंग पीले पन पर हो, वह रोगी होता है। जिस घोड़े की आंखें अत्यन्त छोटी तथा मांजरी होती हैं, वह मरी आदि का उपद्रव करने वाला होता है। जिस घोड़े की एक आंख दूसरी से बड़ी और भयानक हो, उसे राजा आदि को अपने काम में नहीं लाना चाहिए। क्योंकि ऐसा घोड़ा शत्रु का भय पैदा करता है। जिस घोड़े की आंखों का रंग ज़रा लाल और तेजवाला हो, वह उत्तम जाति का होता है। उस पर सवारी करने से शत्रु पर विजय होती है और धन की वृद्धि होती है। जिस घोड़े की दाहिनी आँख में चक्र का चिह्न हो, वह अपने स्वामी की कीर्ति बढ़ाता है। जिस घोड़े की दाहिनी

आँख के पलक पर शंख का चिह्न हो, वह घोड़ा राज्य आदि की सम्पत्ति प्राप्त कराता है । जिस घोड़े की दाहिनी आँख फूटी हो अथवा हमेशा अत्यन्त मैली रहती हो, वह घोड़ा बहुत हानिकारक होता है । जिस घोड़े की दोनों आखों के पलकों पर दूज के चन्द्र के आकार का चिह्न होता है, वह घोड़ा सिर्फ चक्रवर्त्ती के ही काम में आता है, अर्थात् उस पर दूसरा कोई सवारी नहीं कर सकता। जिस घोड़े की बाईं आँख के पलक पर सफेद दाग हो, वह घोड़ा धन का नाशक होता है । जिस घोड़े की दोनों आँखें हमेशा मैली रहती है उस घोड़े पर सवारी करने से प्राणों की जोखिम रहती है। जिस घोड़े की आँखें सुनहरी चमकीली और नुकीली होती हैं; उस पर किसी तरह का सन्देह नही रहता । जिस घोड़े की आँखें भयंकर होती हैं, वह घोड़ा हानिकारक होता है । जिस घोड़े की दाहिनीं आँख पर एक ही मसा हो तो उसके स्वामी के कुटुम्ब की कीर्त्ति बढ़ती है, लेकिन एक से ज्यादा मसे होने पर वह धन धान्य का नाश करता है । जिस घोड़े की दोनों आँखों के पलकों पर बहुत मसे होते हैं, वह अग्नि आदि का भय पैदा करता है ।

४४ घोड़े की नासिका का लक्षण — जिस घोड़े की नाक के दोनों नथनों (द्वार) के बाहर का चमड़ा लाल रंग का हो, वह उत्तम जाति का अश्व होता है, काले रंग का हो तो मध्यम जाति का होता है जिसके वह चमड़ा हरी झाई वाला तथा कोमल हो, वह

हर जगह विजय दिलाता है; इसलिए ऐसा घोड़ा किसी महापुरुष को ही मिलता है। जिस घोड़े का दाहिना नथना बाएँ से थोड़ा बड़ा होता है, वह घोड़ा लक्ष्मी की हानि करता है। जिस घोड़े की नासिका के दाहिने नथने पर सफ़ेद दाग हो, वह उत्तम जाति का घोड़ा कुटुम्ब की वृद्धि करता है। जिस घोड़े की नासिका की दाहिनी ओर कमल के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी को राज्य आदि का लाभ कराता है। जिस घोड़े की दाहिनी नासिका पर मत्स्य (मछली) के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा पानी में भी अच्छी तरह तैर सकता है, तथा अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है। जिस घोड़े की दाहिनी नासिका पर चक्र का चिह्न हो, वह घोड़ा पुत्रादि परिवार को बढ़ाता है। जिस घोड़े के बाईं नासिका पर त्रिशूल का चिह्न हो, वह घोड़ा युद्ध में अर्जुन की भांति शत्रु को भयातुर करता है। जिस घोड़े की बाईं नासिका पर भौंरे का चिह्न हो, वह अपने स्वामी की बारह महीने के भीतर निस्सन्देह मृत्यु करता है। जिस घोड़े की बाईं नासिका पर बादाम के आकार का लम्बा गोल सफ़ेद दाग हो, वह घोड़ा कीर्त्ति नष्ट करता है। जिस घोड़े की बाईं नासिका पर बहुत बाल हों और दाहिनी नासिका पर बिल्कुल बाल न हों, उस घोड़े को राक्षस के समान समझकर बहुत शीघ्र छोड़ देना चाहिए, क्योंकि वह घोड़ा धन और कुटुम्ब का नाश करता है। जिस घोड़े की

नासिका के दोनों द्वार अच्छी तरह खुले न रहते हों– चिपटे रहते हों, वह घोड़ा रोगादि का उपद्रव करता है। जिस घोड़े की नासिकाएँ भीतर से भी दोनों कठोर और चिकनाई रहित हों, उस घोड़े का त्याग करने से ही कुटुम्ब आदि की वृद्धि होती है। जिस घोड़े की दोनों नासिकाओं पर गुच्छेदार तथा अत्यन्त लम्बे बाल हों, वह घोड़ा शत्रु आदि का भय उत्पन्न करता है।

४५ घोड़े के मुँह का लक्षण—जिस घोड़े के मुँह से मुर्दे की सी दुर्गन्ध निकलती है, वह रोगादि उपद्रव बढ़ाने वाला होता है। जिस घोड़े के मुँह से कमलसी सुगन्ध निकलती हो, ऐसा घोड़ा रखने वाले पर राजा आदि की कृपा होती है तथा लक्ष्मी कीर्ति आदि बढ़ती है। जिस घोड़े के मुँह से कड़ुवा श्वास निकलता है, वह कुटुम्ब तथा लक्ष्मी की हानि करता है। जिस घोड़े का श्वास बिलकुल शीतल होता है, वह लड़ाई में शत्रुपक्ष का पराभव करता है। जिस घोड़े का श्वास थोड़ा गर्म हो, वह तेज़ी तथा चिंतित काम करने वाला होता है। जिस घोड़े का श्वास अत्यन्त उष्ण हो, वह किसी न किसी समय अपने सवार की मृत्यु करने वाला होता है।

४६ घोड़े के दांतों का लक्षण—जिस घोड़े के दांत दाड़िम की बड़ी कलियों के समान थोड़े लाल और सफ़ेद होते हैं, वह घोड़ा अपने स्वामी को सार्वभौम (चक्रवर्त्ती) राजा बनाता है। जिस घोड़े के दांतों का रंग पीला होता है, वह देश में दुष्काल आदि

का संकट पैदा करता है। जिस घोड़े के दांत एक दूसरे से मिले हुए होते हैं, वह घोड़ा अपने स्वामी के धन आदि का लाभ करता है, लेकिन जिस घोड़े के दांत जुदे २ तथा खोखले हों, वह घोड़ा अपने स्वामी की मृत्यु उत्पन्न करता है। जिस घोड़े के दांतों का हल्का आसमानी रंग हो तथा तेजस्वी हो वह घोड़ा अपने स्वामी की कीर्ति का अतिविस्तार करता है।

४७ घोड़े के मस्तक का लक्षण— जिस घोड़े के कपाल में त्रिशूल के आकार का सफ़ेद चिह्न हो, उसे लड़ाई आदि में विजय करने वाला समझो। जिस घोड़े के कपाल में सफ़ेद चक्र का चिह्न हो, उसे भी विजय करने वाला समझो। जिस घोड़े के कपाल में अर्धचन्द्र के आकार सफ़ेद चिह्न हो, उसे अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाने वाला समझो। जिस घोड़े के कपाल में गोल आकार का सफ़ेद चिह्न हो, उसे अपने स्वामी का कल्याण करने वाला समझो। जिस घोड़े के कपाल में कमल के आकार का सफ़ेद चिह्न हो उसे शुभ समझना चाहिए। जिस घोड़े के कपाल में सर्प के आकार का सफ़ेद चिह्न हो, उसे कुटुम्ब तथा धन का क्षय करने वाला समझो। जिस घोड़े के कपाल में मत्स्ययुगल जैसा चिह्न हो, उसे महामांगलिक जानो, उसकी चोर आदि से अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिए। जिस घोड़े के कपाल में श्याम रंग का अंकुश के आकार चिह्न हो, उसे अपने स्वामी का प्राणघातक समझ-

ना चाहिए । जिस घोड़े के कपाल में श्याम रंग का तथा बीच में सफेद दाग वाला किसी पक्षी के आकार का चिह्न हो उसे लड़ाई में शत्रु का नाश करने वाला जानकर राजा को उसकी खज़ाने के समान सावधानी से रक्षा करनी चाहिए ।

४८ कण्ठ का लक्षण—जिस घोड़े की अयाल (गर्दन के बाल) सुनहरी रंग की झांई मारती गुच्छेदार तथा कोमल हो, उसे उत्तम जाति का अश्व समझो । जिस घोड़े की अयाल कठोर और तेजहीन हो, उसे हलकी जाति का घोड़ा समझो । जिस घोड़े के बिलकुल अयाल न हो, उसे धन का नाश करने वाला जान कर दूर से त्याग देना चाहिए । जिस घोड़े की अयाल जुदी जुदी उगी हो, उसे अपने स्वामी के मृत्यु का सूचक समझो । जिस घोड़े की अयाल हरी सुनहरी रंग की झांई मारने वाली हो, उसे दैवी घोड़ा समझो, वह घोड़ा लक्ष्मी कीर्ति और कुटुम्ब की वृद्धि करता है ।

४९ घोड़े के लांछन का स्वरूप— जिस घोड़े के अगले दाहिने पाँव के जोड़ में सफेद रंग का दक्षिणावर्त्त चक्र होता है, वह अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है, यदि वह चक्र वामावर्त्त हो तो उल्टा फल देने वाला होता है । जिस घोड़े के अगले दाहिने पैर के घुटने पर बालों का गुच्छा होता है, वह कुटुम्ब का नाशक होता है । जिसके अगले दाहिने पैर के जोड़ में मत्स्य के आकार

का चिह्न हो, वह घोड़ा धन की वृद्धि और विजय करने वाला होता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पाँव के जोड़ में सफ़ेद रंग का त्रिशूल का चिह्न हो, उस पर कभी सवार न होना चाहिए, क्योंकि ऐसा घोड़ा इष्ट स्थान पर न जाकर उल्टे स्थान पर जाता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पाँव के घुटने पर बिच्छू के आकार का श्याम रंग का चिह्न होता है, वह रोगादि का उपद्रव करता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पाँव के घुटने के नीचे के भाग में सफ़ेद रंग का मूसल के आकार का चिह्न हो, वह धन तथा कुटुम्ब का क्षय करता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पैर के खुर पर बहुत खड्डे हों, तथा खुर फटा हो, वह घोड़ा राज्य आदि का नाश करता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पैर का खुर आसमानी रंग का हो, वह धन आदि की वृद्धि करता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पैर का खुर पीले रंग का हो, वह रोगादि का उपद्रव करता है। जिस घोड़े के दाहिने पैर का खुर काले रंग का हो, वह मध्यम जाति का घोड़ा होता है। जिस घोड़े के अगले दाहिने पैर का खुर नीचे से टूटा हुआ हो तथा ज़मीन पर बराबर नहीं रह सकता हो, वह घोड़ा कुटुम्ब का नाश करता है। जिस घोड़े के अगले बायें पैर के घुटने पर भौंरे का चिह्न हो, वह शत्रु का भय उत्पन्न करता है। जिस घोड़े के अगले बायें पैर के जोड़ में बहुत मसे हों, वह अपने स्वामी को रोगी बनाता है। जिस घोड़े के अगले

बायें पैर के जोड़ में सफेद चक्र का चिह्न हो, वह अपने स्वामी का अत्यन्त प्यारा होता है, तथा उससे कीर्ति आदि की वृद्धि होती है। जिस घोड़े के अगले बायें पैर के घुटने के नीचे काले रंग का त्रिशूल के आकार का चिह्न हो, वह अपने स्वामी को विद्या आदि का लाभ देता है। जिस घोड़े के अगले बायें पैर के घुटने के नीचे काले रंग का मूसल के आकार का चिह्न हो, वह लड़ाई आदि में उपयोगी नहीं होता है। जिस घोड़े के अगले बायें पैर का खुर लाल रंग का होता है, वह घोड़ा अपने स्वामी को स्त्री आदि का सुख प्राप्त कराता है। जिस घोड़े के अगले बायें पैर का खुर सुनहरे रंग का तथा चमकीला हो, वह घोड़ा निर्धन स्वामी को भी राज्य दिलाता है।

५० घोड़े के पेट आदि के लांछन का स्वरूप-- जिस घोड़े के अगले दोनों पैरों के बीच में चक्र का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी को राजसन्मान दिलाता है। जिस घोड़े के पेट पर शंख के आकार का चिह्न हो, वह कल्याणकारी तथा धन की वृद्धि करने वाला होता है। जिस घोड़े के पेट पर सर्प के आकार का चिह्न हो, वह अपने स्वामी की छह महीने के अन्दर मृत्यु करता है। जिस घोड़े के पेट पर बहुत मसे हों, उसे राक्षस के समान समझकर त्याग देना चाहिए। जिस घोड़े के पेट पर बिलकुल बाल न हों, वह घोड़ा स्त्री तथा सन्तान की हानि करता है। जिस घोड़े

के पेट पर पद्म के आकार का लांछन हो, वह घोड़ा धन धान्य की वृद्धि करता है। जिस घोड़े के पेट पर बिच्छू के आकार का चिह्न हो, वह अपने स्वामी के परिवार का नाश करता है। जिस घोड़े के पेट पर चीरे पड़े हों, वह घोड़ा अपने स्वामी के व्याधि आदि का उपद्रव करता है। जिस घोड़े के पेट पर अंकुश का चिह्न हो, वह उत्तम जाति का घोड़ा कीर्त्ति तथा परिवार की वृद्धि करता है। जिस घोड़े के पेट पर कौवे के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा भोजन आदि का त्याग करवाता है, अर्थात् रोग पैदा करता है। जिस घोड़े के पेट पर वृक्ष के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी के धन धान्य आदि की वृद्धि करता है। जिस घोड़े का पिछला दाहिना पाँव लँगड़ाता हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की सन्तान का नाश करता है। जिस घोड़े का पिछला दाहिना पाँव टेढ़ा हो, वह घोड़ा लक्ष्मी का नाश करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के जोड़ के बाहर के भाग में शंख का चिह्न होता है, वह घोड़ा अपने स्वामी की ऋद्धि बढ़ाता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के जोड़ में नेवले के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की तुरंत मृत्यु करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के घुटने पर कमल के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की धर्म में प्रवृत्ति कराता है, तथा धन आदि की वृद्धि करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के घुटने के नीचे सर्प के

आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की लक्ष्मी का नाश करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के घुटने के नीचे सफेद रंग का मूसल के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की लड़ाई में प्रवृत्ति कराता है, और उसमें उसका नाश करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के खुर का रंग काला हो, वह घोड़ा मध्यम जाति का होता है, ऐसा घोड़ा लाभ अथवा हानि कुछ नहीं करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के खुर पर शंख के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की लक्ष्मी और कीर्ति बढ़ाता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के खुर पर सफेद रंग का कमल के आकार का चिह्न हो, वह धन धान्य की वृद्धि करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव का खुर फटा हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की संतति का नाश करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के खुर में मसा हो, वह अपने स्वामी के धन और परिवार का नाश करता है। जिस घोड़े के पिछले दाहिने पाँव के खुर पर बाल हों, वह राक्षस की भांति धन और कुटुम्ब का भक्षण करने वाला होता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पाँव के जोड़ पर धनुष के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा युद्ध में अपने स्वामी को जिताता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर की जंघा पर गिलहरी के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी को विदेश में घुमाता है, और वहां पर अत्यन्त कष्ट

उत्पन्न करता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पाँव के जोड़पर नाल सहित कमल के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा संग्राम में विजय दिलाता है जिस घोड़े के पिछले बायें पैर की जांघ पर तोते के आकार का चिह्न हो, वह आकाश में भी गमन करता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर के घुटने पर सफेद रंग का भौंरे के आकार का चिह्न हो, वह अपने स्वामी की मृत्यु का सूचक होता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर का खुर काले रंग का हो, वह मध्यमजाति का अश्व होता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर का खुर सफेद रंग का हो, वह उत्तम जाति का अश्व अपने स्वामी को पुत्रादि का सुख उत्पन्न करता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर के खुर पर मसा हो वह अपने स्वामी की लक्ष्मी का नाश करता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर के खुर पर पुष्प के आकार का सफेद चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की लक्ष्मी का नाश और शत्रु आदि का त्रास पैदा करता है। जिस घोड़े के पिछले बायें पैर का खुर नीचे से अनेक जगह फटा हो, वह अपने सवार का नाश करता है।

५०[२] घोड़े की पीठ का स्वरूप— जिस घोड़े की पीठ चौड़ी तथा बीच में चपटी हो, वह उत्तम जाति का होता है। जिस घोड़े की पीठ खड्डे वाली और विषम हो, वह अपने सवार को रोगी बनाता है। जिस घोड़े की पीठ पर छत्र का चिह्न हो, ऐसा घोड़ा

वासुदेव को ही मिलता है। जिस घोड़े की पीठ पर शंख का चिह्न हो, वह अपने स्वामी की रक्षा करता है, और उसे सम्पत्तिशाली बनाता है। जिस घोड़े की पीठ पर मत्स्य (मछली) के आकार का चिह्न हो, वह घोड़ा पानी में सुख से तैर सकता है। जिस घोड़े की पीठ पर सिंह के पंजे के आकार का चिह्न हो, वह संग्राम में उत्तम विजय पाता है। जिस घोड़े की पीठ पर त्रिशूल के आकार का चिह्न हो वह स्वामी का सपरिवार नाश करता है। जिस घोड़े की पीठ पर कमल के आकार का सफेद लांछन हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है। जिस घोड़े की पीठ पर बिल्कुल बाल न हों, वह घोड़ा अपने स्वामी की एक महीने के अन्दर मृत्यु करता है। जिस घोड़े की पीठ से सवारी करने के कारण रुधिर बारंबार निकलता हो, उस घोड़े पर सवारी करने वाले के भगंदर आदि रोग उत्पन्न होते हैं। जिस घोड़े की पीठ पर कलश के आकार का चिह्न हो, वह, महामांगलिक होता है, इसलिये उसके स्वामी को लक्ष्मी आदि का बहुत लाभ होता है। जिस घोड़े की पीठ पर चँवर का चिह्न हो, वह चक्रवर्ती के यहां ही उत्पन्न होता है, साधारण जगह नहीं। जिस घोड़े की पीठ पर दीपक की शिखा के आकार का सफेद चिह्न हो, वह अग्नि का भय करता है। जिस घोड़े की पीठ की हड्डी बाहर उठी हुई दिखाई दे वह शत्रु से त्रास उत्पन्न कराता है। जिस घोड़े की पीठ का पिछला भाग पुष्ट हो, वह उत्तम जाति का

घोड़ा वेग से दौड़ने वाला होता है। जिस घोड़े के पीठ के पिछले दोनों भागों (पुठ्ठों) पर चक्र का चिह्न हो, वह घोड़ा अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है। जिस घोड़े के पिछले दोनों भागों पर शंख का चिह्न हो वह अपने स्वामी का महत्व बढ़ाता है।

५१ घोड़े की पूंछ का स्वरूप—जिस घोड़े की पूंछ ज़मीन को छूती हो, वह अपने स्वामी की लक्ष्मी का विनाश करता है। जिस घोड़े की पूंछ पिछले पैरों के घुटनों के ऊपर रहती हो, अर्थात् उतनी लम्बी हो, वह अपने स्वामी के परिवार का नाश करता है। जिस घोड़े की पूंछ चमकीली कोमल गुच्छेदार और घुटने के नीचे रहती हो वह अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है। जिस घोड़े की पूंछ कर्कश हो, वह अपने स्वामी के परिवार का क्षय करता है। जिस घोड़े की पूंछ थोड़े बाल वाली हो, वह अपने स्वामी की लक्ष्मी का नाश करता है। जिस घोड़े की पूंछ टेढ़ी रहती हो, वह अपने स्वामी के कुटुम्ब का नाश करता है। जिस घोड़े की पूंछ अत्यन्त स्थूल (मोटी) हो, वह अपने स्वामी का विदेशगमन करवाकर वहां उसे कष्ट पहुँचाता है। जिस घोड़े की पूंछ स्निग्ध (चिकनी) हो, वह अपने स्वामी को राज्यादि का लाभ दिलाता है। जिस घोड़े की पूंछ केसरिया रंग की तथा कोमल और मनोहर हो, वह अपने स्वामी की लक्ष्मी और कीर्ति बढ़ाता है।

५२ घोड़े की गति का स्वरूप— जो घोड़ा सवारी करने पर स्थिर न रह कर चपल रहे, वह उत्तम जाति का तेज घोड़ा होता है। जो घोड़ा तिरछी चाल से चलता हो, वह भी उत्तम जाति का होता है, और अपने स्वामी की संपत्ति बढ़ाता है। जिस घोड़े की चाल धीमी और सवार को कष्ट पहुँचाने वाली हो, वह कनिष्ट (हलकी) जाति का होता है। जिस घोड़े की चाल सुख पहुँचाने वाली हो, वह उत्तम जाति का अश्व होता है। जिस घोड़े के दौड़ने से थक जाने के कारण फेन (झाग) आते हों, वह भी उत्तम जाति का है और अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है। जिस घोड़े के सब पैर तेज चाल के समय ज़मीन को स्पर्श न करते हों, वह उत्तम जाति का अश्व होता है।

५३ घोड़े के शब्द (हिनहिनाने) का स्वरूप— जिस घोड़े का शब्द गंभीर हो, वह उत्तम जाति का होता है, तथा अपने स्वामी की लक्ष्मी बढ़ाता है। जिस घोड़े का शब्द तीव्र और भयानक होता है, वह अपने स्वामी के परिवार का तुरत नाश करता है। जिस घोड़े का नाद (शब्द) सूक्ष्म होता है, वह हलकी जाति का होता है, तथा हानि पहुँचाता है। जो घोड़ा बार बार हिनहिनाता हो, वह अपने स्वामी के महत्व का नाश करता है। जो घोड़ा कभी २ तथा प्रयाण के समय हिनहिनाता हो, वह कल्याण तथा लाभ की सूचना करता है और विजय दिलाता है।

५४ जो मनुष्य अपने शरीर की रक्षा के लिए व्यापार नौकरी खेती आदि व्यवसाय, सत्य नीति और न्याय से करता है, वह ज्ञानी है; और जो असत्य अनीति और अन्याय से करता है, वह मूर्ख है।

५५ जो मनुष्य अपनी आत्मा का अहित कर बैठता है, उससे किसी प्रकार की आशा रखना व्यर्थ है। अपनी आत्मा का अहित करने वाले से उन्नति की आशा रखना आकाशपुष्प के समान तथा खरगोश के सींग समान है।

५६ शरीर की अपेक्षा आत्मा की क़ीमत ज्यादा है। शरीर और आत्मा दोनों उपयोगी हैं, लेकिन इन में से किसी एक के त्याग का मौका आने पर शरीर का त्याग कर आत्मा की रक्षा करनी चाहिए। आत्महित तथा निःस्वार्थ परहित के लिए तन मन और धन का उपयोग करना ही धर्म है।

५७ सच्चा सुखी—जो अपने पास हो, तथा प्रामाणिकता से जो कुछ मिले, उसी में सन्तोष कर अपना गुज़ारा करे, शारीरिक परिश्रम करके ही खावे पीवे दूसरे के सहारे पर न रहे। दूसरे का उपकार करे, लेकिन दूसरे से अपना उपकार न चाहे।

५८ सच्चा धर्मात्मा—अपने धर्म पर प्रीति करे; लेकिन धर्मान्ध न बने। दूसरे धर्मों के सिद्धान्त और रहस्य जानने का उद्यम करे। उनके तत्व जानकर उन से शिक्षा लेना सीखे। आत्महित

का साधन करे। मत और सम्प्रदाय के लिए क्लेश न करे। मानवधर्म को समझे और मनुष्यमात्र से प्रेम करे। दीन दुःखी जीवों को देखकर दुःखी होवे। विनयवान् बने, लेकिन अभिमानी को न नमे।

५६ सच्चा देशसेवक— दूसरी जगह जितना वेतन मिल सके, उससे कम, सिर्फ़ गुज़ारे के लिए लेकर तन मन से सेवा करे। यदि अपनी स्थिति अच्छी हो या पेन्शन मिलती हो, तो कुछ न लेकर निःस्वार्थ सेवा करे। किसी को भाररूप न हो, और दूसरे की स्थिति देखकर उससे काम ले।

६० सच्चा जातिसेवक— जाति की आपत्तियों और खराबियों के जानने का प्रयत्न करे, खराब रूढ़ियों से स्वयं बचे और जाति को बचाने का भरसक उद्योग करे। कीर्त्ति की इच्छा न कर जातिसेवा करे। मानपत्रों और पदवियों को तुच्छ समझे। छिपकर काम न करे, किन्तु आत्मा पर विश्वास कर पवित्र भावों से काम करे।

६१ सच्चा अधिकारी— अपने कार्य का उत्तरदायित्व समझे। नियमित समय में से समय न चुराए। अपने वेतन के सिवा एक पैसे की भी इच्छा न रक्खे। जैसे बने वैसे साधारण मनुष्यों से कम परिचय रक्खे। परमात्मा को साक्षी कर अपना कर्त्तव्य पालन करे। स्वामी आदि के विरुद्ध कोई काम न करे, नीति और धर्म विरुद्ध आज्ञा मिलने पर उस का पालन न करे किन्तु

विनयपूर्वक अपने अधिकारी को समझावे। यदि वह न माने तो उससे सम्बन्ध तोड़ दे।

६२ सच्चा वकील— सच्ची सलाह दे, वकालत की फीस मिले या न मिले, सच्ची सलाह देकर काम करे। प्रामाणिकता से जो फीस मिले उसी पर जीवन निर्वाह करे। ठगाई न करे। मुक़द्दमा जीताने का लालच देकर मुवक्किल से झूठे गवाह खड़े न करे झूठे मुकद्दमे में हाथ न डाले। निडर और निर्लोभी बने। मुवक्किल की कमज़ोरी और अज्ञानता से अनुचित लाभ न उठावे। मुक़द्दमे के अनुसार योग्य फीस ले। फीस लेने के बाद किसी प्रकार की इच्छा न रक्खे और मुवक्किल के साथ नम्रता का बर्ताव करे। मुक़द्दमे में अपनी जितनी पहुँच और शक्ति हो, उसमें कमी न रक्खे और ज्यादा फीस न मांगे।

६३ सच्चा डाक्टर या वैद्य— रोगी को तसल्ली देने वाले मधुर वचन बोले और पवित्र भावों से चिकित्सा करे। नौकरी के समय फीस के लिये रोगियों के घर न फिरे। दवाखाने के रोगियों से इनाम स्वरूप भी कुछ न ले। सौभाग्य से दुःखियों की सेवा का अमूल्य अवसर मिला है, इसलिए विवेकबुद्धि से नम्रतापूर्वक काम करे। यदि घरू दवाखाना हो तो भी अनुचित लोभ न कर रोगी को शीघ्र आराम पहुँचाने का पूर्ण उद्योग करे। रोग दूर करने के लिए दवा गौण है और उत्तम जल वायु और पथ्य का

सेवन मुख्य है; इसलिए रोगी को पथ्यापथ्य अच्छी तरह समझादे। कहा भी है कि—

धर्म नियम पाले विना, प्रभु भजन है व्यर्थ।
औषधसेवन क्या करे, जो नहिं पाले पथ्य ॥१॥

६४ सच्चा नौकर-- अपने काम और समय का निर्णय कर नौकरी करे। टाइम का पाबन्द रहे, और सौंपे हुए काम को भले प्रकार करे। ईमान्दारी और स्वामीभक्ति से काम करे।

६५ सच्चा व्यापारी-- सत्य नीति और न्यायपूर्वक व्यापार करे। ग्राहक की अजानकारी और कमज़ोरी देखकर लाभ लेने की इच्छा तक न करे। सट्टा तथा शर्त लगाकर कोई व्यापार न करे, ऐसे व्यापार को देश की दरिद्रता बढ़ाने वाला समझे। सट्टा करने वालों को देशद्रोही समझ कर उसमें स्वयं न फँसे। अपनी आय व्यय की स्थिति की जाँच नियमित समय पर बराबर करता रहे। यदि किसी व्यापार में नुक़सान दिखाई दे तो उसे शीघ्र बदल दे। दूकान के हरएक काम की जानकारी रक्खे, और आवश्यकता पड़ने पर उसे कर सकने की योग्यता हासिल करे। सचेत रहे। ठगावे नहीं, कदाचित ठगा जाय तो, उस माल से दूसरे को न ठगे।

६६ सच्चा किसान-- उद्योगी बने। अपना जीवन हमेशा सीधा सादा रक्खे। नाज घास पात आदि पैदा हो, उसमें से एक

साल के घर खर्च के लिए अवश्य रख ले। कर्ज़ न करे। आवश्यकता पड़ने पर मज़दूरी कर के गुज़ारा कर ले।

६७ सच्चा साधु— दिखाई देने वाले सब पदार्थ नश्वर और पर हैं, एक आत्मा ही नित्य और अपना है; ऐसे सच्चे ज्ञान के होने पर वैराग्य (फ़क़ीरी) ले।

क्योंकि— फ़िकर सब को खा गई, फ़िकर सब का पीर।
फ़िकर की फाकी करे सो ही आप फ़क़ीर ॥१॥

जिसे अपने पंथ की, अपनी जीविका की, पुस्तक की और चेले की, फ़िक्र नाम मात्र भी नहीं है। जो आत्महित की शिक्षा खुद को मिली है, वही दुनिया को दे। अपने को जो कुछ मिले उसी से गुज़ारा चलावे, जो कुछ भली या बुरी, आपत्ति या सम्पत्ति उपस्थित हो, उसे दैवाधीन समझे। मनुष्य जाति का सेवक बने। सट्टा जुआ शराब व्यभिचार हिंसा असत्य अनीति आदि दूर करने के लिए यथाशक्ति उपदेश दे। जैसे कोई बादशाह निडर होकर फिरता है, वैसे ही अपनी आत्मा पर राज्य करता हुआ निडर होकर विचरे। किसी दूसरे की तथा अपनी इन्द्रियों और मन की गुलामी न करे।

६८ अपनी मिहनत से पैदा की हुई सम्पत्ति से या अपने को मिलने वाली पेन्शन से अपना निर्वाह करे। किसी प्रलोभन में न फँसे। साथ काम करने वाले से आँख न चुरावे अपने ऊपर के

अधिकारियों की खुशामद करने के लिए उनके घर जूते न चटकाता फिरे। दुराग्रही न बने। अपना स्वार्थ न चाहे। परोपकार पर दृष्टि रक्खे। काम करने की सामर्थ्य न होने पर प्रकट कर दे, लेकिन दंभी बन-कर पड़ा न रहे। सेवाभाव हृदय में सदा जागृत रक्खे।

६९ अस्थिर चित्तवाले प्राणी की आत्मा ही अपना शत्रु और जितेन्द्रिय की आत्मा ही अपनी रक्षक होती है; इसलिए इन्द्रियों को वश करने का अभ्यास करे।

७० धार्मिक कार्य के समान उत्तम शुभकृत्य, जीवहिंसा के समान भारी अशुभकृत्य, राग के समान उत्कृष्ट बन्धन, और बोधि (सम्यक्त्व प्राप्ति) के समान उत्तम लाभ न समझे।

७१ परस्त्री, मूर्ख, अभिमानी, और चुगलखोर की सोहबत न करे; क्योंकि ये चारों भारी आपत्ति के कारण हैं।

७२ सच्चे धर्मात्माओं की संगति अवश्य करे। तत्व के ज्ञाता विद्वज्जनों से मन का सन्देह दूर करे। त्यागियों साधु महात्माओंका आदर-सत्कार करे। निर्लोभ, ममत्वहीन निःस्वार्थी सत्पुरुषों को अवश्य दान दे।

७३ निर्धन अवस्था में दान देना, उच्च पदाधिकारी का क्षमा धारण करना, सुख की समस्त सामग्री के होते हुए इच्छा का निरोध करना, और तरुण वय में इन्द्रियों पर विजय पाना अति कठिन है, तथापि अवश्य कर्तव्य होने से मौका आने पर नहीं चूके।

७४ किसी की निन्दा न करो, यदि निन्दा करना ही चाहो तो अपने आत्मा की करो।

७५ विना सोचे विचारे कोई काम न करो। किसी के साथ छल, कपट न करो। किसी को मर्मवेधक कटुवचन न बोलो और अपराधी पर भी क्षमा सीखो।

७६ यदि तुम अपना भला चाहो तो दूसरे का भला करो, और अपनी इज्जत चाहो तो दूसरे की इज्जत करो।

७७ गाड़ी घोड़ा मोटर आदि सवारी को शर्त लगा कर या विशेष कारण विना नहीं दौड़ाना चाहिए और बस्ती में तो इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए; गाड़ी तांगा आदि को अंधाधुन्ध चलाने से कई बार घोड़ों की जान और मार्ग में चलने वाले मनुष्य आदि के प्राण जाते हुए देखे गये हैं।

७८ जहां तक हो सके दूसरे से काम के लिए कोई चीज़ न माँगो। और शौक़ के लिए बनाई हुई रक्खी हुई चीज़ तो कदापि न माँगो। यदि बिना माँगे काम न चल सके तो ऐसी चीज़ ऐसी जगह से माँगो, जिसे उसको न देने के लिए कोई बहाना न बनाना पड़े और अपना अनादर न हो। मांगकर लाई हुई चीज़ को निज की वस्तु से भी ज्यादा हिफ़ाज़त से रक्खो और उसका अनुचित उपयोग न करो। जितने समय के लिए लाये हो उसके अन्दर ही वापिस लौटा दो।

७९ महापुरुषों की सेवा किसी भी दिन निष्फल नहीं जाती.

८० धर्म प्रेमियोंको चाहिये कि सबसे प्रथम अपना जीवन नीतिवान् बनावें.

८१ हर वख्त अपने गुण--अवगुणों पर ध्यान रखना परमावश्यक है.

८२ विनय, विवेक, क्षमा, दया, दान, और शील आदि शुभ गुणोंका हमेशा आचरण करना चाहिये.

८३ ज्ञानकी व ज्ञानीकी सेवा--भक्ति करनेसे सम्यग् बोधकी प्राप्ति होती है.

८४ परमात्मा ने पापका मूल 'लोभ' बताया है--व्याधिका बीज 'रसास्वादन' (जिह्वाकी लोलुपता) फरमाया है और सकल दु:खोंका मूल 'स्नेह' दर्शाया है.

८५ अपने पासमें हो, वही पैसा आवश्यक समय पर उपयोगमें आसकता है.

८६ सावद्यकार्य करके आनन्द न मानना, किन्तु पश्चात्ताप करना चाहिये; यह योग्य जनोंकी योग्यता है.

८७ स्त्रीहत्या, बालहत्या, गौहत्या, और ऋषिहत्या, ये चार बड़ी हत्याएं कही जाती हैं; इनका सदा त्याग करना चाहिये.

८८ जिस वख्त क्रोध उत्पन्न हो, उस समय तमाम कामोंको छोड़कर प्रभुका नाम जपना शान्ति करता है ।

८९ आत्महितेच्छुओंको गुरु और माता पिताके वचनका अनादर करके, उत्सवको छोड़कर, रुदनको सुनकर, लड़के को रोता हुवा रख कर, हत्या करके, मैथुन सेवन करके, क्लेश करके, दूधको पीकर और चोरी करके परदेश गमन करना उचित नहीं है.

९० अनाचारी, अन्यायी, अभिमानी, मूर्ख, कायर, दयाहीन और दुष्ट; इनको कदापि स्वामी न बनाना चाहिये.

९१ मनुष्यों को पर धन हरण करने में पगलके समान, अन्यकी कान्ता को कुदृष्टिसे देखने में अंधेके सदृश, पर निन्दा करने में मूकके माफिक और परके अवगुणोंको सुनने में बहरेके तुल्य होना चाहिये.

९२ विवाहित स्त्रियों को चाहिये कि पिताके घर पर अधिक न ठहरे, पुरुषोंको ससुराल में विशेष निवास करना बेजा है, और योगिओंको एक जगह पर अधिक स्थिरता करना योग्य नही है.

९३ रोगी, वृद्ध, बालक, मूर्ख, दरिद्री, क्रोधी दुर्गुणी दुराचारी अकुलीन, और वैरागी; इतने को कन्यादान न देना चाहिये.

९४ नीचा देखकर चलने से धनप्राप्ति, जीवदया, देहरक्षा प्रमुख गुणों की प्राप्ति होती है.

९५ जिसके साथ सगाई कर दी हो, यदि वह लापता (गुम) रहे या कालकवलित हो जाय, दीक्षित हो जाय, दीक्षा का अभिलाषी हो, नपुंसक हो, या खतर नाक रोग हो जाय, अथवा जाति

से पतित हो जाय तो सगाई छोड़ सकते हैं, अन्यथा नहीं।

९६ अपरिचित जनोंकी प्रशंसा करना, उन्हें रहने को स्थान देना, उनके साथ सम्बन्ध करना और उनको नौकर रखना हानिकारक,है.

९७ जिस कार्यमें हम न समझते हों हाथ डालना मूर्खता है।

९८ प्राण जाने पर भी धर्मद्रोही, देशद्रोही, राजद्रोही, जाति-द्रोही और स्वजनद्रोही न होना चाहिये, और न ऐसे कामों में सहायक ही होना चाहिये.

९९ नारियल के समान बाहरसे कठिन और अन्दर से कोमल रहना सज्जनों का लक्षण है, तथा बेर के माफिक बाहर से कोमल और अन्दर से कठिन रहना दुर्जनों का स्वभाव है.

१०० खा—पीकर केवल हृष्ट पुष्ट बने हुवे मदमस्त प्राणी अपनी नासमझी से अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा कहते हैं, तथा भेदज्ञान के अभाव से अधर्म को धर्म और धर्म को अधर्म कहते हैं.

१०१ हरएक सुविज्ञ (चतुर) मनुष्यों को देशकाल के अनुसार चलना चाहिये, जिस २ समय जमाना बदले उस २ समय में अपनी प्रवृत्तियों में फेरफार करना अनिवार्य है, उस वख्त तीर्थङ्कर गणधरादि महान् पुरुषों की नजीर स्मृतिपथमें उपस्थित कर लेनी चाहिये.

१०२ गऊ खरीदते वक्त यह देख लेना चाहिए कि जो गऊ खरीदी जाय, वह अच्छी नस्ल की हो, और उसका स्वाथ्य अच्छा हो। अच्छा स्वास्थ्य होने का एक लक्षण गऊ की नाक और नथनों

का बड़ा होना है। नथने (नाक के छिद्र) बड़े होने से गउएँ साँस द्वारा अधिक हवा ले सकती है। जिनका चेहरा भरा हुआ, किंतु मांस-युक्त न हो, जिनकी आँखें चमकीली पीछे का हिस्सा चौड़ा, थन बड़े-बड़े और दूर दूर हों, ऐसी गउएँ अच्छी समझी जाती हैं। धीमी आँख, पतला मुँह, छोटा स्तन, पतले पीछे के हिस्सेवाली गउएँ अच्छी नहीं होतीं। जो गऊ अपने अगले और पिछले पैरों को सटा-सटाकर खड़ होती हो उसे कभी नहीं खरीदना चाहिए। पैर फैलाकर खड़ी होनेवाली गउएँ अधिक दूध देती और अच्छी नस्ल की समझी जाती हैं।

अच्छी गउओं का चमड़ा नरम, मुलायम और गठा हुआ होता है। उनकी पसली की हड्डियाँ तीन-तीन अंगुल की दूरी पर होती हैं। ऐसी गउओं की रीढ़ उठी हुई और उसके जोड़ सटे-सटे होते हैं। गऊ खरीदते समय इस बात का भी खयाल रखना चाहिए कि उसकी पीठ टेढ़ी न हो। कंधे से पूंछ की जड़ तक जिन गउओं की पीठ सीधी हो, वे ही अच्छी होती हैं। जिन गउओं के थन लम्बे, चिकने और नीचे की ओर झुके हुए, किंतु जमीन को छूते हुए न हों, वे ही अच्छी समझी जाती हैं। थन बड़ा होने से उसमें अधिक परिमाण में दूध रहता है। अलग-अलग होने से दुहने में सुगमता होती है।

१०२ सज्जन मनुष्य अपनी वासनाओं को जीतते हैं और मूर्ख मनुष्य उनसे विजित होते हैं।

१०४ वही मनुष्य, जिसने खुद को जीत लिया है, दूसरों पर विजय प्राप्त कर सकता है और वह उन्हें विकारों से नहीं प्रत्युत प्रेम से जीतता है। मूर्ख मनुष्य दूसरों को बुरा कहता है और अपने आप को सच्चा साबित करता है, लेकिन वह जो स्वतः बुद्धिमान् होता है, दूसरों को भला कहता है और खुदको बुरा।

१०५ वासना जीवन की नींव है, और शान्ति उसका मुकुट व शिखर। अगर किसी की इच्छा संसार को सुधारने की है तो उसे इसका प्रारंभ खुद से करने दो।

१०६ वह मनुष्य मूर्ख है जो अपने अज्ञान की सीमा नहीं जानता, जो स्वार्थी विचारों का आप गुलाम है और जो वासनाओं की लहर का आज्ञाकारी है।

१०७ वह मनुष्य बुद्धिमान् है जो अपनी अज्ञानता से परिचित है। जो स्वार्थी विचारों की असारता को समझता है और जो वासना की लहर पर अपना अधिकार रखता है।

१०८ मूर्ख मनुष्य अज्ञान के गढ़े में गहरा गिरता जाता है और बुद्धिमान् मनुष्य ज्ञान की सीढ़ी पर ऊंचा २ चढ़ता जाता है। मूर्ख मनुष्य इच्छा करता है, भोगता है और मर जाता है। बुद्धिमान् आकांक्षा करता है, आनन्दित होता है और जीवित रहता है।

## उपयोगी कुछ वस्तुओं के गुण.

१ अंगूर— शीतल, रुचिकारक, शुक्रवर्धक, मलमूत्र कारक,

अतिसार वाले को देने का निषेध, यकृत की पुरानी पीड़ा में हित कारक.

२ पक्का आम— गुरुपाक, मलभेदक, पुष्टिकारक । रेसा रहित आम पुराने यकृत की पीड़ा में यदि ज्वर न हो, तो दिया जाता है ।

३ अनार वा वेदाना— मधुर, लघु, स्निग्ध, बलकारक, मुँह को साफ़ करता और त्रिदोष नाशक है । अतिसार रोग में हित-कारक है । खट्टा अनार गुण युक्त कफ़ दोष वाले रोगी को निषेध है, किन्तु वह भी रुचिकारक और तृष्णादोष नाशक है।

४ सेव— वात पित्त- नाशक, पुष्टिकारक, कफ़कारक, भारी, पाक में और रस में मधुर, शीतल, रुचिकारक और बलवर्धक।

५ हर्र— गरम हल्की और रसीली है । श्वास कास (खांसी) प्रमेह, बवासीर और पेट के सब रोगों को दूर करने वाली, खाज, संग्रहणी, कब्जियत, विषम ज्वर, गोला, अफारा, फोड़ा, हिचकी में लाभ कारक है ।

६ नारंगी— मीठी, खट्टी, अग्निदीपक, वातनाशक । दूसरे प्रकार की नारंगी खट्टी, बहुत गर्म, मुश्किल से पचने वाली, वातनाशक और दस्तावर है ।

७ कागज़ी नींबू— खट्टा, वातनाशक, दीपन, पाचन और हलका है । कीड़ों को नाश करने वाला, पेट का दर्द आराम करने

वाला, अत्यन्त रुचिकारक, वात पित्त कफ तथा शूल वालों को अत्यन्त हितकारी है।

८ मूंग— हरे रंग का रूखा ग्राही, कफ तथा पित्त नाशक, शीतल, स्वादु, थोड़ा वादी करने वाला आंखों को हितकारी, बुखार का नाश करने वाला है।

९ अरहर— बिना छिलके की कसैली, रूखी, मधुर, शीतल, हलकी, ग्राही, वादी करने वाली, रंग को उत्तम करने वाली, पित्त और खूनविकार को नाश करने वाली है।

१० चना— तेल में आग पर भुना हुआ चना शीतल, रूखा, हलका, कसैला, विष्टम्भी, बादी करने वाला, खून कफ और बुखार को नाश करने वाला है। गीले भुने हुए चने बल दायक, रुचिकारक, और सूखे चने— अत्यन्त रूखे, वात और कोढ़ को कुपित करने वाले होते हैं।

११ गेहूं— मीठे, शीतल, वात पित्त नाशक, वीर्यवर्द्धक, बलदायक, चिकने, दस्तावर, जीवनरूप, पुष्टिकारक, और रुचिकारक, नये गेहूं कफकारक होते हैं, पुराने नहीं।

१२ चाँवल— शाली चांवल मीठे, चिकने, बलदायक, रुके हुए मल को निकालने वाले, स्वर को उत्तम करने वाले, बलवर्द्धक, पुष्टिकारक, कुछ वादी, कफपित्तकारक, शीतल, पेशाब बढ़ाने वाले हैं।

१३ चौलाई— हलकी, शीतल, रूखी, मलमूत्र निकालने

वाली, रुचिकारक, अग्निदीपक, विषनाशक, और पित्त कफ तथा खून विकार- नाशक है।

१४ करेला— शीतल, मलभेदक, दस्तावर, हलका, कड़वा है। बादी नहीं करता, बुखार, पित्त, खूनविकार, पीलिया, प्रमेह, और कीड़ों को नाश करने वाला है।

१५ परवल-- लघुपाक, अग्निवर्द्धक, रेचक, रुचिकर, ज्वर वगैरह में हितकर है।

१६ तोरई— शीतल, मीठी, कफ और बादी करनेवाली, पित्तनाशक, और अग्निदीपक है। श्वास खाँसी ज्वर और कीड़ों को नाश करती है।

१७ लोंग— हलकी, नेत्र हित कारक, भूखवर्द्धक, रुचिकारी, रक्तविकारनाशक, श्वास, खांसी, कफ, पित्त, हिचकी, प्यास, शूल, कै को हितकारी तथा अफारा और तपैदिक को भगाती है।

१८ सोंठ— आमवात नाशक, रुचिकारक, हलकी, पाचक, कफ वात नाशक, स्वर को सुन्दर करने वाली, बलवर्द्धक, बवासीर, श्वास, खांसी, शूल को दूर करने वाली, कै, हृदय रोग और पेट के रोगों को दूर करने वाली है।

१९ कालीमिर्च— क्षुधावर्द्धक, कफ वात नाशक, तीक्ष्ण, गरम, पित्त बढ़ाने वाली, कृमि रोग को नष्ट करने वाली, श्वास खांसी और शूल को हितकारी है।

## नीति मणि-माला

१ नीतिशास्त्र. धर्म अर्थ काम का कारण और मुक्ति का दाता है, इससे ही जनता का उपकार और मर्यादा का पालन होता है।

२ इस संसार में सुख दुःख का कारण केवल कर्म है। कर्म जीव के साथ छाया की भांति रहता है-- अर्थात् कर्म क्षण भर भी जीव का संग नहीं छोड़ता है ।

३ जो मनुष्य आत्मधर्म छोड़ देता है, औरों को सताता है, जीवों की हिंसा करता है तथा जो निर्दयी और अविचारी होता है, वही "म्लेच्छ" कहलाता है ।

४ मनुष्य के पहले जन्म के जैसे कर्म होते हैं, उसकी बुद्धि भी उन कर्मों के फल भोगने के लिये वैसी ही हो जाती है । मनुष्य अपनी बुद्धि के अनुसार ही कर्म करता है यानी बुद्धि के विपरीत कर्म नहीं करता ।

५ पहले जन्म के बुरे या भले जैसे कर्मों का उदय होता है, वैसीही बुद्धि हो जाती है और जैसी होनहार होती है, वैसे ही मददगार मिल जाते हैं ।

६ संसार का स्वाभाविक नियम है कि, कमजोर को जबरदस्त दबा लेता है। पुरुषार्थ कमजोर है और कर्म जबरदस्त है, यह बात विना फल मिले मालूम नहीं हो सकती । यदि किसी कार्य के सिद्ध करने के लिये प्रयत्न किया जाय और वह काम सिद्ध हो जाय, तो कहा जायगा कि 'पुरुषार्थ' प्रबल है । अगर किसी कार्य में सफलता

प्राप्त करने के लिये भरपूर कोशिशों पर कोशिशें की जायँ, मगर सफलता न हो तो कहाजायगा कि 'प्रारब्ध' बलवान् है।

७ फल की प्राप्ति का कारण प्रत्यक्ष में तो कुछ नजर नहीं आता; परन्तु इस बात का निश्चय है कि पूर्व-जन्म के कर्म के अनुसार ही फल मिलता है।

८ अक्सर देखते हैं कि मनुष्य को थोड़ा सा यत्न करने से भी बड़ा फल मिल जाता है। उसे पूर्व के कर्म का फल समझना चाहिये।

९ अच्छे कर्म करने से अच्छा फल मिलता है और बुरे कर्म करने से बुरा फल मिलता है। इसलिये शास्त्र द्वारा अच्छे और बुरे कामों का निर्णय कर बुरे कामों को छोड़ देना और अच्छों को ग्रहण करना चाहिये।

१० अगर राजा उत्तम नीति में निपुण नहीं होता, तो प्रजा इस भांति नाश हो जाती है, जैसे विना मल्लाह की नाव समुद्र में डूब जाती है।

११ हरएक मनुष्य को उचित है कि विषय-रूपी वनमें फिरते हुए, इन्द्रिय-रूपी हाथी को, ज्ञान-रूपी अंकुश से अपने अधीन करे।

१२ मन विषय-रूपी मांस का लोभी होता है। मन ही इन्द्रियों को विषय-भोगों की ओर चलायमान करता है; अतः मन को वश में करना चाहिये। एक मन के वश करने से दशों इन्द्रियाँ वश में

हो जाती हैं। जो मनुष्य मन को वश में कर लेता है, वह जितेन्द्रिय कहलाता है।

१३ सांसारिक विषय-भोग नाशवान् और परिणाम में नीरस हैं। जिस का मन विषयों में लिप्त रहता है, वह हाथी के समान बन्धन में पड़ता है।

१४ जङ्गल में रहने वाला, घासपर ज़िन्दगी बसर करने वाला, शुद्ध हिरन शिकारी के सुरीले राग पर मोहित होकर जान दे देता है। मतलब यह है कि, एक कर्णेन्द्रिय-कान के आधीन होकर हिरन अपने प्राण खो देता है।

१५ पर्वत की चोटी के समान आकार वाला, खेल में बड़े बड़े वृक्षों को उखाड़ डालने वाला, महा बलवान् हाथी, हथनी से भोग करने के लिये बन्धन में फँस जाता है। मतलब यह है कि, हाथी अपनी स्पर्शन इन्द्रिय के वश में होकर पकड़ा जाता है।

१६ पतङ्ग को दीपक की शिखा बहुत प्यारी मालूम होती है। वह उस की खूबसूरती पर आशिक होकर, उस पर झपटता और जल-बल कर ख़ाक हो जाता है। तात्पर्य यह है, कि पतङ्ग अपनी नेत्र इन्द्रिय-आंख-के वश में होकर प्राण गँवा देता है।

१७ अथाह जल में डूबी हुई मछली मांस रस के लालच में आकर, मांससहित काँटे को पकड़ लेती है और मारी जाती है। यानी वह एक जिह्वा-इन्द्रिय-जीभ के वश होकर अपने प्राण खो बैठती है।

१८ भौंरा कमल को काटकर उड़ जा सकता है; किन्तु वह उस की खुशबू के लालच में आकर उसी के अन्दर बन्द रहकर जीवन खो देता है, अर्थात् भौंरा अपनी घ्राणइन्द्रिय– नाक के अधीन होकर मारा जाता है।

१९ विषय विष के समान है। एक एक विषय अकेला ही जीवन का नाश कर देता है। अगर पाँचों विषय एक साथ मिल जायँ, तो प्राणों का नाश कर देने में क्या शक है?।

२० पर-स्त्रियों पर मन न डिगाना चाहिये, पर-स्त्रियों की इच्छा करने वाले राजा इन्द्र नहुष और रावण आदि बड़ों २ का भी अन्त में नाश ही हुआ है।

२१ जो मनुष्य स्त्री के वश में नहीं होता, उसी को स्त्री से सुख मिलता है। घर का काम-काज स्त्री विना नहीं चल सकता।

२२ यदि किसी आदमी से अपराध हो जावे और वह माफी माँगे तो उसे अवश्य क्षमा कर देना चाहिए; क्योंकि क्षमा बड़े पुरुषों का लक्षण है।

२३ जो मनुष्य अधिकार पाकर उपकार नहीं करता है, उस के 'अधिकार' शब्द में के 'अ' का लोप हो कर 'क' का द्वित्व हो जाता है। अर्थात् अधिकार के बदले में धिक्कार होजाता है।

२३ विद्या पढ़ा हुआ मनुष्य यदि उस के अनुसार काम न

करे तो वह उस किसान के समान है, जिसने मिहनत करके खेत तो सुधार लिया है, लेकिन उस में कोई बीज नहीं बोया हो।

२५ विद्वानों को मूर्खों की सभा में चुप रहना चाहिए; क्योंकि इनके गप्पाष्टक के आगे उन की कुछ नहीं चलेगी। जैसे कौवों की काँव काँव में मैना का शब्द दब जाता है।

२६ बिना आमदनी, इच्छानुसार खर्च करने से कुबेर का भी ख़ज़ाना खाली हो जाता है; तब दूसरे लोगों का धन कितने दिन ठहर सकता है?।

२७ सत्पुरुषों की संगति गंधी की दूकान के समान है, केवल गंधी की दूकान के पास जाने से सुवास मिलती है। दुष्टों की संगति कोयलों के समान है, जो सुलगते हों तो हाथ पाँव जला देते हैं और बुझे हों तो हाथ पाँव काले कर देते हैं।

२८ जिस बात से दूसरे का दिल दुखे, वह बात बुद्धिमान् को दुःखी होकर भी न कहनी चाहिये।

२९ जो शख़्स सज्जनों और दुर्जनों से मीठे वचन बोलता है, वह मीठी वाणी बोलने वाले मोर की भाँति सब का प्यारा हो जाता है।

३० सब जीवों पर दया, मैत्री, दान और मीठी वाणी, इन के समान और वशी करण मन्त्र त्रिलोकी में नहीं है।

३१ मित्र को प्रेम से, रिश्तेदारों को अच्छे वर्त्ताव से, स्त्री

को मुहब्बत से, नौकर को मान से और दूसरे लोगों को चतुराई से वश में करना चाहिये।

३२ नौकर को उचित है कि अपनी तनख्वाह देखकर खर्च करे। अगर मालिक कोई बुरा काम करे, तो उसे एकान्त में समझावे। दूसरे नौकर के अधिकार पर मन न डिगावे, जितना मिले उसी पर संतोष रक्खे।

३३ जो नौकर दगाबाज, डरपोक और लोभी होता है, जो सामने बहुत सी चिकनी-चुपड़ी बातें बनाता है, जो शराबी व्यभिचारी और व्यसनी होता है, जो जूआ खेलता है और रिशवत लेता है, वह नौकर अच्छा नहीं होता।

३४ काम क्रोध मद लोभ मत्सरादि मोह के ही परिवार हैं; इसलिए मोह के क्षयार्थी को इन सब से सावधान रहना चाहिए।

३५ मनुष्य को अपनी चाल किसी हालत में नहीं बदलना चाहिए, जो लोग थोड़े में छलक कर चलने लगते हैं उनकी चाल कभी पार नहीं पड़ती; इसलिए वे अन्त में दुःख भोगते हैं।

३६ हरएक मनुष्य को चाहिए कि जब दो सुन ले तब एक कहे; क्योंकि प्रकृति ने कान दो दिये हैं और जबान एक ही दी है।

३७ कष्टों से कभी घबराना न चाहिए; बड़े मनुष्यों पर सदा संकट पड़ा करते हैं; क्योंकि उनकी इच्छा हमेशा उत्तम काम करने की

रहती है और उत्तम कामों में अनेक विघ्न और कष्ट अवश्य आते ही हैं। जो मूर्ख होते हैं वे ही सदैव सुख चैन से रहते हैं।

३८ अनुभवी ज्ञानियों ने कहा है कि ज्ञान—वैराग्य ही परम मित्र है, काम भोग ही परम शत्रु है, अहिंसा ही परम धर्म है और नारी ही परम जरा है।

३९ सब भाइयों में अपने ही को बड़ा न माने। हिस्सा पाने के हक़दार युधिष्ठिर, भीम आदि भाइयों के अपमान करने से दुर्योधन का नाश होगया।

४० पुत्र को वही काम करना उचित है, जिस से पिता राज़ी हो और वह काम हरगिज न करना चाहिये, जिस से पिता ज़रा भी नाराज़ हो।

४१ राग से माया और लोभ तथा द्वेष से क्रोध और मान उत्पन्न होते हैं; इसलिए इन क्रोधादि कषायों का क्षय करनेवाले को राग और द्वेष घटाना चाहिए।

४२ मनुष्य के लिये धर्म बिना सुख नहीं मिलता। अतः उसे हमेशा धर्म करना चाहिये। जिस काम में धर्म अर्थ और काम का लवलेश न हो, उस काम को कदापि न करना चाहिये।

४३ जो लोग कङ्गाल हैं, जो किसी रोग से पीड़ित हैं और जो किसी मुसीबत की वजह से रंजीदा हैं, उन सब की खबर लो और अपनी सामर्थ्य के अनुसार उनके दुःख दूर करने का उद्योग करो।

४४ चींटी समान छोटे २ जीवों को भी अपनी ही बराबर समझो। जिस दुश्मन को तुम बुराई के लायक समझते हो, उस के साथ भी भलाई ही करो।

४५ सम्पत्ति और विपत्ति दोनों के समय, एक समान रहो। अर्थात् सुख-सम्पदा में फूल मत जाओ और दुःख पड़ने के समय एक दम घबरा मत जाओ।

४६ किसी से ऐसी बात मत कहो कि, अमुक मनुष्य मेरा शत्रु है अथवा मैं अमुक मनुष्य का दुश्मन हूँ। अगर तुम्हारा मालिक कभी तुम्हारा अपमान- अनादर करे या तुम से प्रेम न रक्खे; तो दूसरों से यह मत कहते फिरो कि हमारा मालिक हमको नहीं चाहता और इस तरह हमारी बेइज्ज़ती करता है।

४७ अगर तुम किसी की नौकरी करो या किसी की मातहती-आधीनता में काम करो, तो अपने स्वामी या अफ़सर का दिल जिस तरह खुश रहे, वैसा ही उद्योग किया करो। मालिक या अफ़सर का दिल हाथ में रखने में ही भलाई है।

४८ भुजाओं से नदी को तैरकर पार न करे। ख़राब सवारी, टूटे फूटे रथ, गाड़ी या नाव पर न चढ़े। बिना भारी ज़रूरत के दरख्त पर न चढ़े। अपनी नाक न खुजावे और बिना मतलब धरती न खोदे।

४९ सूर्य को टकटकी लगाकर न देखे। सिर पर बोझ लेकर

न चले । बारीक चीजों को बहुत देर तक न देखे । चमकती हुई, अपवित्र और दिल बिगाड़ने वाली चीजों को भी बारम्बार न देखे।

५० जिस काम में कुछ भी सफलता की आशा हो, उसके लिए ही उद्यम करना चाहिए, क्योंकि प्यास उसी तालाब से बुझेगी, जिसमें जल हो ।

५१ आदमी के गुण और औगुण की पहिचान उसकी बोल चाल से होती है । जैसे काग और मैना का भलापन और बुरापन बोली से ही पहचाना जाता है ।

५२ बुद्धिमान् को स्त्री, बालक, रोग, नौकर, जानवर, धन, विद्याभ्यास और सज्जन सेवा की एक क्षण भी उपेक्षा न करनी चाहिये । अर्थात् इन की तरफ लापरवाही न दिखानी चाहिये ।

५३ 'मैं और मेरा' इस गुप्त मन्त्र से मोह ने सारे संसार को अन्धा बना दिया है, अर्थात् ममता से मोह बढ़ता है, इस का त्याग करने से ही मोह मारा जाता है; इसलिए मोह घटाने के लिए ममता घटानी चाहिए ।

५४ अपने कुटुम्बियों के साथ विरोध और स्त्री, बालक बूढ़े और मूर्ख के साथ झगड़ा या विवाद न करना चाहिये ।

५५ किसी चीज़ के बेचने या खरीदने में अपनी कंगाली न दिखावे और बिना मतलब किसी के घर न जावें ।

५६ किसी के बिना पूछे अपने घर की बात किसी से न

कहे और मुँह से ऐसी बात निकाले जिस में अक्षर थोड़े हों किन्तु मतलब बहुत निकले।

५७ अपने मन की बात अनजान मनुष्य को न बतावे दूसरे की बात खूब सुन समझ कर जबाब दे।

५८ अगर स्त्री पुरुष में तकरार हो या गुरु शिष्य तथा बाप बेटे में झगड़ा हो तो बुद्धिमान् उनकी गवाही न दे। अगर किसी विषय की सलाह करनी हो तो गुप्त स्थान में करे और शरणागत को न छोड़े।

५९ अपने करने योग्य जरूरी काम को सामर्थ्यानुसार करे, आफत पड़ने पर न घबरावे और किसी की झूठी बदनामी न करे।

६० अपनी युक्तियों से किसी की बात न काटनी चाहिये; हरएक बात का जबाब विचार कर देना चाहिये; ऐसे मौके पर जल्दी करना ठीक नहीं है।

६१ मनुष्य पूर्व कृत कर्मों से धनवान् और निर्धन होता है, अतः किसी से ईर्षा द्वेष न करना चाहिये। सब से मित्र भाव रखना ही भला है।

७४ दुर्गुणी मनुष्यों की संगति कभी न करनी चाहिए, क्योंकि उनके दोष छूत के रोग के समान आत्मा में चिपट जाते हैं।

७५ अच्छी जगह बैठने से सुख और बुरी जगह बैठने से दुःख होता है। माली और लोहार की दुकान पर बैठकर देख

लो, एक जगह तो सुगंध आवेगी मन प्रसन्न होगा और दूसरी जगह कपड़े काले होंगे या चिनगारियाँ उड़ उड़ कर कपड़े और शरीर को जलावेंगी।

७६ जो अवसर और समय देखकर काम करता है, वह सफल होता है। जैसे समय पर बीज बोने वाला किसान सफल होता है।

७७ आंख और कान में चार अंगुल का ही अन्तर है, लेकिन सुनी और देखी हुई बात में बड़ा भारी अन्तर हो जाता है; इसलिए किसी से सुनी हुई बात पर विना जांच किये एक दम विश्वास न कर लेना चाहिए।

७८ हर एक बात उतनी ही करनी चाहिए, जितनी देखी या सुनी हो, घट बढ़ से काम बिगड़ जाता है। जैसे न्यूनाधिक वर्षा होने से खेती नष्ट हो जाती है।

७९ कठोर वचन पत्थर के समान है, जिससे लोगों का दिल टूट जाता है और उसकी चोट से उमर भर के पाले हुए सेवक भी अपने स्वामी को छोड़ जाते हैं और मीठे वचन एक मीठे जल के झरने के समान है, जिसकी ओर मनुष्य तो क्या पशु भी दौड़े चले आते हैं।

८० किसी मनुष्य को ऊपर से अच्छा देख कर यह न समझ लेना चाहिए कि वह भीतर से भी अच्छा होगा। जैसे

कपास बाहर से कैसी कोमल जान पड़ती है, लेकिन उस के भीतर का बिनौला कितना कड़ा होता है।

६२ मनुष्य को चाहिये कि सदा दूरदर्शी रहे और समय समय पर हाजिर-जवाबी भी किया करे किसी काम में जल्दी या देर न करे तथा आलस्य को त्यागे।

६३ बाज वक्त जल्दबाजी से किये हुए काम का भी फल अधिक मिल जाता है और कभी कभी अच्छी भाँति किये हुए काम का फल मिलता ही नहीं; तथापि बुद्धिमान को किसी काम में जल्दी न करनी चाहिये, क्योंकि जल्दबाजी का काम प्रायः दुःख दायी होता है।

६४ जिस काम को नौकर, स्त्री और भाई नहीं कर सकते उसको मित्र निस्संदेह कर सकता है। इस वास्ते मित्र-प्राप्ति के लिये उद्योग करना चाहिये।

६५ दुश्मन की नम्रता और चापलोसी से धोखे में नहीं आजाना चाहिए; क्योंकि चीता और धनुष की कमान हिरन को झुक झुक कर ही मारती है।

६६ जो लोग नीच प्रकृति के हैं, उन्हें चाहे जितनी शिक्षा दी जाय, परन्तु वे अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ते। जैसे नीम चाहे जितनी खांड गुड से सींचा जाय तो भी उसका कड़ुवापन कभी न जायगा।

६७ जब तक मनुष्य अपनी समझ का दूसरे की समझ से मिलान नहीं करता है, तब तक उसे अपनी समझ का दोष नहीं जान पड़ता। जैसे हाथी जब तक पहाड़ के नीचे नहीं जाता, तब तक पहाड़ को अपने से बड़ा नहीं समझता।

६८ जिन के हृदय विशाल होते हैं वे छोटे होकर भी बड़े २ काम कर निकलते हैं। जैसे आँख की पुतली का तिल बहुत छोटा होने पर भी पर्वत को अपने अन्दर दिखा देता है।

६९ बड़े लोगों की संगति करने से छोटा आदमी भी बड़ी जगह पहुँच जाता है। जैसे पान के साथ ढाक का पत्ता राजाओं के हाथ तक जा पहुँचता है।

७० सीधी चाल चलने से मनुष्य ऊँचे पद पर पहुँचता है। जैसे शतरंज का पियादा सीधी चाल चलते चलते वज़ीर हो जाता है।

७१ अच्छी बुरी प्रकृतियाँ कभी अपना स्वभाव नहीं बदलतीं। जैसे गाय घास खाती है और दूध देती है सांप दूध पीता है और ज़हर उगलता है।

७२ किसी को छोटा समझकर घृणा न करना चाहिए कौन जाने, उसमें कोई बड़ा काम करने का गुण हो? । जैसे बड़ का बीज बहुत छोटा होकर भी बहुत बड़ा वृक्ष उत्पन्न करता है।

७३ संसार की वस्तुएँ जीवों को पूर्वकृत कर्म के अनुसार

ही मिलती हैं; अत एव उन की प्राप्ति के लिए सतत लगे न रहना चाहिए; किन्तु शान्ति क्षमा विनय ज्ञान चारित्र आदि आत्मीय गुणों को बढ़ाने के लिए सतत उद्योग करना चाहिए; क्यों कि यह आत्मीय गुण अभ्यास और उद्योग से बढ़ सकते हैं।

८१ जैसे इंधन से अग्नि शान्त नहीं होती, बल्कि बढ़ती ही जाती है, वैसे ही विषय भोग से इन्द्रियाँ तृप्त नहीं होतीं, लेकिन तृष्णा बढ़ती जाती है और ज्यों ज्यों आत्मा विषय भोग में लिप्त होता है, त्यों त्यों कामाग्नि की वृद्धि करता है।

८२ मुमुक्षुओं को हमेशा उन्नत महात्माओं की ओर दृष्टि रखना चाहिए, गिरते हुए कायर पुरुषों की ओर नहीं। क्योंकि महात्माओं की ओर लक्ष्य रखने से वीरता आती है और कायर पुरुषों की ओर लक्ष्य रखने से कायरता आती है।

८३ संसार के सब प्राणी मेरे मित्र हैं, कोई भी मेरा शत्रु नहीं है, वे सब सुख पावें दुःख कोई भी न पावे। सब सुख के मार्ग पर चलें, दुःख के मार्ग से बचें, ऐसी मति का नाम मैत्रीभावना है।

८४ एक बड़े आदमी के भाग में बहुत से छोटे २ आदमियों का साझा होता है; इसलिए उसे समझलेना चाहिए कि वह जितना अधिक उन लोगों को लाभ पहुँचायगा, उतना ही अधिक उसका भाग बढ़ेगा।

८५ मनुष्य अपना मनोरथ सिद्ध करने के लिए संतोष और धीरज धारण करे; क्योंकि काम समय आने से ही होता है। जैसे वृक्ष को सदा चाहे कितना ही खाद और पानी क्यों न दिया जाय, लेकिन ऋतु आने पर फल देता है, पहले नहीं।

८६ ममता विना मोह नहीं होता, ज्ञान और वैराग्य से ममता छूटती है, विवेकज्ञान तथा अनुभव से आत्मज्ञान होता है और जड़ चेतन का भेद ज्ञान होने से शोक आदि का हृदय में प्रवेश नहीं होता है।

८७ तृष्णावान को सुखी समझना क्या है, मानो अग्नि को शीतल समझना है। विषयों में सुख मानना क्या है, मानो कालकूट—जहर को अमृत मानना है। सांसारिक धनसम्पत्ति को सच समझना क्या है, मानो स्वप्न के राज्य को सच समझना है।

८८ सिपाही की लड़ाई में, साहूकार की लेनदेन में, कुटुम्बियों की आपत्काल में और मित्रों की दरिद्रता में परीक्षा करनी चाहिए।

८९ अन्यायियों का भयसे, लुच्चों का बदनामी से, बहुत खाने वालों का रोग से, बुरी सलाह मानने वालों का नुकसान से कभी छुटकारा न होगा।

९० जागने से चोर, क्षमा से कलह, उद्योग से दारिद्र्य और भगवद्वाणी से पाप नष्ट होता है।

९१ बुरे कामों से दूर रहना, अच्छे कामों को अपना कर्त्तव्य

समझना, अपकीर्त्ति से अपने को बचाना, भलमंसी से चलना और अच्छी बातों में सदा रत रहना, इन पांच बातों का जो ध्यान रक्खेगा वह चाहे जहां जावे, उसका मनोरथ सिद्ध हो जायगा और प्राय: सभी लोग उस के पक्ष में हो जायँगे।

९२ अहंकारी, क्रोधी, रोगी,प्रमादी और कुव्यसनी मनुष्य, धर्म और ज्ञान नहीं पाता है।

९३ आलस, स्त्रियों से अधिक प्रेम, सदा रोगी रहना, अतितृष्णा, उन्माद और भय, इन छह बातों से आदमी अपने कारबार में उन्नति नहीं कर सकता।

९४ ऐ आत्मन् ! करुणासमान दूसरा कोई अमृतरस तथा परद्रोह समान दूसरा कोई हालाहल—ज़हर नहीं है। संतोष समान दूसरा कल्पवृक्ष और लोभ समान दूसरा दावानल नहीं है। सदाचरण समान कोई प्रियमित्र और क्रोध समान कोई शत्रु नहीं है इसलिए अपने हिताहित का विचार कर जो तुम्हें रुचे उस को ग्रहण करो।

९५ कदाचित् मंत्रतंत्रादि से पर्वत की शिला बहुत काल तक आकाश में निराधार लटक भी जाय, दैवानुकूल होने पर कदाचित् भुजाओं से समुद्र पार भी करलिया जाय, और दिन दहाड़े भी कदाचित् तारे दिखाई पड़ जायँ, लेकिन हिंसा से कभी किसी का कल्याण न हुआ ही है और न होना ही संभव है।

९६ शान्ति से क्रोध को और विनय से मान को टालना चाहिए तथा सरलस्वभाव से माया को और संतोष से लोभ को हटाना चाहिए। कषायों को दूर करने का एक मात्र यही उपाय ज्ञानियों ने बताया है।

९७ बड़े लोगों ने कहा है कि सब से बुरा वह धनमाल है, जिससे किसी का भला न हो। बहुत ही बेसुध वह कारबारी है, जो अपने कारबार की संभाल जैसी करनी चाहिए न करे। सब से अधम वह मित्र है जो विपत्ति में अपने मित्रों को सहायता न दे। पहले दर्जे की वह बदचलन स्त्री है, जो अपने पति पर हृदय से प्रेम न करे। परले सिरे का वह कपूत लड़का है, जो मा बाप की सेवा न करे। सब शहरों से उजाड़ वह शहर है जिस में सस्ता नाज और सुखचैन न हो और सब सभाओं में निषिद्ध वह सभा है जिस में शुद्ध मन के मेम्बर न हों।

९८ पंचों और न्यायाधीशों को चाहिए कि दया और क्षमा का बर्ताव रक्खें। नौकर चाकरों और प्रजा को थोड़े थोड़े अपराध पर भारी दंड न दें जहां तक बन सके छोटे २ अपराधों को क्षमा कर दें।

९९ क्रोध को अपने ऊपर प्रबल न होने दे, क्योंकि क्रोध करना लाचार और कमजोर लोगों का काम है। झूठ को हृदय में स्थान न दे; क्योंकि झूठ डर और लोभ से होता है। निडर

और निर्लोभी मनुष्य के हृदय में इसे स्थान नहीं मिलता।

१०० जो पालने वाला का उपकार भूल जाय और नमक-हरामी करने से न डरे। जो विना कारण क्रोध करे और वह क्रोध भी ऐसा कि जिसे वह दबा न सके। जो परमात्मा और मृत्यु को भूलकर संसार के मदसे मतवाला हो जावे, जो छल-कपट से अपना काम निकालता हो और उस को अच्छा जानता हो, जिसे झूठ बोलने और बेइज्जत होने की आदत हो और सचाई और ईमानदारी से जो कोसों दूर हो, जो आशा और तृष्णा के वशीभूत हो, जो निर्लज्ज और असभ्य हो, जो विना सबब ही लोगों को बुरा समझे और उन को सतावे, इन आठ आदमियों से हमेशा बचे रहना चाहिए।

१०१ जो पर की निन्दा और विकथा करने में गूंगा है, परस्त्री का मुख देखने में अन्धा है, पर का धन हरण करने में पंगु है, ऐसा महापुरुष संसार में प्रशंसनीय है; क्योंकि परनिंदा परस्त्रीप्रेम, और पर द्रव्यहरण महानिंद्य है।

१०२ आलस्य, निद्रा, क्लेश, शोक, रोग, अविनय और कुटुम्ब से मोह, इन ७ बातों से ज्ञान घटता है।

१०३ स्त्री का मान पति से होता है, संतान की पालना मा बाप से होतीहै। शिष्य की शिक्षा गुरु से होती है। राजा की शक्ति, सेना और सुयोग्य मन्त्री हैं। सिद्धों की सिद्धाई इन्द्रियों के विजय से

होती है । प्रजा को सुख सावधान राजा से मिलता है । राज्य की दृढ़ता न्याय से होती है । न्याय की शोभा बुद्धि से होती है ।

१०४ थोड़ा बोलनेसे, आवश्यकता होने पर विचार कर बोलनेसे, मीठा बोलनेसे, चतुराई से बोलनेसे, मर्मभेदी वचन न बोलनेसे, विनय से बोलनेसे, शास्त्रानुसार बोलनेसे, सबजीवों को सुख देने वाले वचन बोलनेसे मनुष्य बड़ा कहलाता है ।

१०५ जैसे चन्द्र को देखकर चकोर प्रसन्न होता है अथवा मेघ की गर्जना सुनकर मोर ख़ुशी के मारे नाचने लगता है, वैसे ही गुणी पुरुषों को देखकर अन्तःकरण आनन्द से उमंग उठे, उसे मुदित भावना कहते हैं ।

१०६ किसी दुःखी को देखकर दयार्द्र हृदय से शक्ति अनुसार सहायता कर उस के दुःख दूर करना करुणा भावना है ।

१०७ जिस पर किसी प्रकार हितोपदेश असर नहीं कर सकता, ऐसे अतिकठोर चित्तवाले प्राणी पर द्वेष न कर उस से दूर रहने को माध्यस्थ भावना कहते हैं ।

१०८ हे आत्मन् । निर्मल दयारूपी जल से स्नान करो संतोष रूपी शुभ वस्त्र पहनो, विवेक रूपी तिलक करो, भक्ति रूपी केशर घोलकर उसमें श्रद्धारूपी चन्दन मिला आत्मध्यान रूपी कस्तूरी का संयोग करो, तथा ब्रह्मचर्य रूपी नवांग शुद्ध होकर आत्मरूप देवाधिदेव की भाव से पूजा करो ।

# कुछ घरेलू दवाएँ

## नमक सुलेमानी

भूखको बढ़ाना, खट्टे डकार को रोकना, इसका कार्य है। सतलेमो (Acid citricPulv) २ औंस, अजवायनसूखा (thymol) ३० ग्रेन, पिपरमेन्ट (menthol) ६० ग्रेन, पौडर जिंजर (ext-Ginger Pulv) २ ड्राम, दालचीनी (cinemon) २ ड्राम, अनीसी anisi) २ ड्राम, हींग (asafiotoda) ½ ड्राम.

बड़ी इलायची का दाना २ माशा, पीपल ६ माशा, काला नमक १० तोला, सुहागा भुना हुआ एक तोला, नमक लाहोरी ५ तोला, जवाखार ४ तोला, मूलीखार २ तोला, कालीमिर्च ६ माशा, नौसादर कलमी २० तोला। सब औषधियों को भलीभांति पीस कर एक शीशीमें रख छोड़े, समय पर दो रत्ती से एक माशा तक व्यवहार करे।

## चूर्ण हाजमा

पीपर छोटी भरी १ अकरकरा भरी १ कालीमिर्च भरी १ सोंठ भरी १ जीरासफेद भरी १ जीरास्याह भरी १ सुहागा भरी १ तवेपर सेक कर, हींग माशा ५ घीमें भूनकर, सेंधानमक माशा ५ संचरनमक माशा ५ कचनमक माशा ५ विड नमक माशा ५ सांभर नमक मासा ५।

इन सब का चूर्ण बनाकर भोजन करने के बाद १ माशा या ०॥ माशा खाना चाहिये।

## लवण भास्कर चूर्ण

सांभर नमक पैसा ४ भर संचर नमक पैसा २॥ भर वायविडंग टांक[1] ५ सैंधा नमक टांक ५ धनिया टांक ५ पीपल टांक ५ पीपलामूल टांक ५ पत्रज टांक ५ मासेरा टांक १ कालाजीरा टांक ५ नागकेशर टांक ५ चव्य टांक ५ अमलबेत टांक ५ कालीमिर्च टांक २॥ जीरा टांक २॥, सोंठ टांक २॥ अनारदाना टांक १० तज टांक १। इलायची टांक १॥ इन सब को बारीक पीस कपड़ छांनकर के माशा ४ गायकी छाछ में हमेशा लेने से उदररोग बवासीर संग्रहणी बंदकुष्ट शूल सोजा खांसी साँस आंव का विकार पांडु रोग मंदाग्नि और अजीर्ण को दूर करता है।

## अग्नि-मान्द्य, अजीर्ण, ग्रहणी।

साधारण व्यवस्था—अजीर्ण होने अर्थात् भोजन भली भाँति न पचने पर एक आध दिन उपवास करना अच्छा है। पुराने अजीर्ण रोग में नियमित रूप से पथ्यपूर्वक औषध का सेवन करना बहुत आवश्यक है। पुराने अजीर्ण रोगी कभी २ जीभ की लोलुपता से कुपथ्य कर बैठते हैं, जो चीज उनके खाने के योग्य नहीं वह भी खा बैठते हैं। ऐसी अवस्था में उनके खाने पीने पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। पर इतना अधिक ध्यान रखना भी ठीक नहीं, जिससे वे कुछ खा ही न सकें। भूखे रहने से दुर्बलता बढ़ती है; इसलिये सबेरे पुराने चावल का भात मूंग की

---

१– ४ माशे का एक टांक होता है

दाल और शीघ्र पचने वाली थोड़ी तरकारी खाने को देना चाहिये। शाम को, यदि नुकसान न करे तो, पतली रोटी या भात खाया जा सकता है। दूध या मट्ठा, इन दोनों में कोई एक चीज साम- र्थ्य के अनुसार नित्य खानी चाहिये। बहुत कडुवा ( मिर्च आदि) और खट्टा न खाना ही अच्छा है।

(१) चिकित्सा—नित्य सबेरे एक पाव या डेढ़ पाव गर्म पानी चाय की तरह दस मिनट तक थोड़ा थोड़ा पीवे। १०— १५ दिन इस प्रकार गरम पानी पीने से पुराने अजीर्ण रोग में विशेष लाभ होता है। लाभ मालूम होने पर दो तीन महिनों तक इस व्यवस्था का पालन करना उचित है।

(२) सैन्धवादि चूर्ण—सेंधा नमक, हर्रें, छोटी पीपल, चित्रक की जड़की छाल, इन सब दवाओं का बराबर हिस्सा ले, कूटपीस कर चूर्ण करे। खूब पतले कपड़े में छान कर चीनी मिट्टी के बर्तन या शीशी में रख दे। दो आना भर यह चूर्ण नित्य भोजन करने के बाद गरम पानी से खावे, तो सहज ही भोजन पच जाता है, भूख बढ़ती है और दस्त भी खुलासा होती है।

(३) पुदीना, सोंफ या सोआका अर्क आधा छटांक दोनों वक्त भोजन के अनन्तर पीने से अजीर्ण और पेट फूलना निवृत्त होता है।

सर्दी अधिक रहने पर लवङ्ग, तालकीमिश्री, मुलेठी और

दालचीनी, हर एक चीज चार चार आना भर ले गर्म पानी में दस मिनट तक भिगोकर छान लेना । फिर चाय की तरह गुनगुना २ पीना ।

## सञ्जीवन धारा

कपूर असली १ औंस, पोदिने का सत १ औंस, अजवाइन का सत १ औंस, लौंग का तेल १ ड्राम, सोंठ का तेल १ ड्राम, नौसादर का सत १ ड्राम । इन सब औषधियों को एक साथ एक शीशी में मिलाकर थोड़ी देर के लिये सूर्य की कड़ी किरणों में रख छोड़ो, सब एक साथ मिलकर तेल बन जायगा । जरूरत होने पर दश से पांच बूंद तक मिश्री अथवा बताशे पर टपका कर खा जावे । यह दवा पेट दर्द, जीमचलाने, उल्टी होने, तथा हैजे में एक दो खुराक से ही अपना चमत्कार दिखाती है । तथा दांत दर्द होने से रुई के फोहे के साथ दर्दस्थान पर लगाने से शीघ्र आराम हो जाता है । सांप, विच्छू आदि विषैले जंतुओं के काटे हुए स्थान पर लगाने से विष शीघ्र उतर जाता है ।

## मन्दाग्नि अर्क.

लिक्वीड टाका डायस्टेज [Liq Taka Diastase] पांच तोला,
लिक्सर पेपैन [Elixer Papain] ढाई तोला,

---

१ ढाई तोले का एक औंस होता है, एक औंस में आठ ड्राम होते हैं ।

अलका थाइमल [Alka Thymol] ढाई तोला,
टिंचर नक्स भोमिका [Tr. Nux Vom] आधा तोला,
सिरपरोज़ [Syrup Rose] ढाई तोला,

इन सब दवाओं को मिलाकर जीमने के बाद थोड़े पानी के साथ या विना पानी से दो ड्राम दिन में दो दफा लेवे, इस से सब प्रकार के अपाक, अजीर्ण (बदहज़मी) मन्दाग्नि, अम्लपित्त, कमजोरी, गुल्म (गोला) शूल, कृमिरोग, आफरा वात, खट्टी डकार, छाती की जलन, वमन और कोष्ठबद्ध इत्यादि सब प्रकार के रोग आराम होजाते हैं।

## खाँसी की दवा

सोडी सल्फ [Sodii Sulph 2dr] दो ड्राम, सोडी बेन्जोइटिस [Sodii Benzoitis 1-dr] डेढ़ ड्राम, सिरप प्रूनि विरगिन [Syrup Pruni virgin5dr] पांच ड्राम, सिरप ग्लाइकोफोस कम पाउन्ड [Syrup gloy cophos co4dr] चार ड्राम, काढोकालमेघ [inf kalmeghh ad 8oz] आठ औंस, इन सब को मिला कर आठ खोराक बनाली जावें, भोजन के बाद तीन खोराक हमेशा लेवे, इस से बदहज़मी खाँसी मन्दाग्नि सर्दगर्म और गले पड़ने से उत्पन्न हुई खाँसी को भी फायदा पहुंचाती है इत्यादि रोग शीघ्र आराम होजाते हैं।

---

१- तीन ड्राम का एक तोला होता है।

नोट- बच्चों को उपरोक्त परिमाण से आधी मात्रा (खुराक देनी चाहिये।

## प्लेग की दवा

१ नीम की कोमल पत्तियाँ एक पाव, बनफ़शाँ एक छटाँक, कलौंजी दो माशे, इन सब का चूर्ण बनाकर छः माशे से एक तोला तक सुबह-शाम नमक मिले गुनगुने जल से उतार लीजिए। प्लेग की कठिन से कठिन यातना शान्त हो जाती है।

२ मदार का रस ३ तोले, गो-घृत ३ तोले, दोनों को मिलाकर प्लेग के रोगी को पाँच पाँच घण्टे पर दो बार पिला दे। रूक्षता बेचैनी अथवा प्यास लगने पर केवल गो-घृत पिलावे। बारह से पन्द्र घण्टे के अन्दर दो दो तोले पिला कर पूर्वोक्त दवा फिर दे दे। इसके बाद पांच पांच घण्टे पर एक एक तोला, फिर छै छै माशे दे। किन्तु घृत अवश्य देता रहे। जल बिल्कुल न दे जब तक पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त न हो। गिल्टियों में बची हुई लुगदी (मदार के पत्ते से रस निकाल लेने के बाद बची हुई वस्तु) बांधता रहे। इलाज़ उग्र अवश्य है, परन्तु लाभ ज़रूर होता है।

३ घी कुँवार के पट्ठे को चीर कर उसमें रसौत और हल्दी मिला कर गरम करके बांधे तो गिल्टी पिघल कर बैठ जाय और पुरानी गिल्टी पक कर बह जाती है।

## कान बहने की दवा

१ बबूल की फलियों का चूर्ण करके कान में डालने से कान का बहना शीघ्र बन्द होता है।

२ मूली को आगमें भून कर उसका रस निकाल कर कान

में डालने से कान का बहना शीघ्र बन्द हो जाता है।

## अध-कपारी (आधा सीसी) की दवा.

१ सेंधा नमक २ माशे बारीक़ पीस कर पोटली बांधले और उस को पानी में तर करके जिस तरफ़ दर्द हो, उसी तरफ़ के नथने में दो चार बूंद डाल दे। इससे अधकपारी (आधे सिर का दर्द) तुरन्त आराम हो जाता है।

२ केशर को घी के साथ पीसकर सुँघाने से आधे सिर में होने वाला दर्द आराम हो जाता है।

३ पुराने गुड़ में थोड़ा सा कपूर मिला कर नित्य प्रात:काल खाने से आधे सिर का दर्द दूर हो जाता है।

## बहरापन की दवा

करेले के बीज और काला ज़ीरा पीसकर कान में डालने से बहारापन मिट जाता है।

## श्वास रोग की दवा.

पांच साल का पुराना गुड़ एक छटांक लेकर सत्यानाशी के स्वरस में सात बार भिगोवे। गोली बनाने योग्य होने पर चने की सी गोली बनावे, किन्तु प्रत्येक गोली के भीतर मूंग के समान राल की भी गोली रख दे। गोलियों पर चांदी के वर्क़ चढ़ा कर प्रतिदिन दोनों समय एक एक गोली खावे और अनुपान में मूंग की ताज़ी दाल पीवे। फिर देखे श्वास रोग क्यों कर नहीं जाता।

## दमा की दवा.

१ अरूसे का पूरा पौधा, जिसमें उसकी जड़, छाल, पत्ते, फूल और फल पांचों हिस्से हों, लेकर जला ले। यह राख पानी न घोलकर २ दिन तक रख छोड़े। राख नीचे जम जायगी। ऊपर के पानी को आहिस्ते से उतार (निथार) ले। उसमें जो कुछ पानी रह जाय, उसे आग पर बरतन रख कर जलाले। यह अरूसे का सत है। इसकी थोड़ी सी मात्रा शहद में मिलाकर चाटने से दमा और खाँसी को बहुत लाभ होता है। दाँतों पर इसका मञ्जन करने से दांतों के बहुत से रोग दूर होते हैं।

२ अजवायन देशी १ तो०, जीरा सफ़ेद १ तो०, काला नमक १ तो०, कतीरा १ तो०, बबूल का ताज़ा छिलका १ तो०, अनारों का छिलका २ तो०, मुलहटी ३ तो०, इन सब चीज़ों को कूट कपड़ छान करके पानी में खरल कर धनिया बराबर गोली बनाकर सुखा ले। सुबह शाम दोपहर को २–२ गोली खाने से दमा का रोग नष्ट हो जायगा।

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचंद भैरोदान सेठिया

जैन–शास्त्रभण्डार (लाइब्रेरी)

बीकानेर

*TO be had at:—*

*Agarchand Bhairodan*

*Sethia Jain Library*

**BIKANER,** [RAJPUTANA]

सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ५५

* श्रीवीतरागाय नमः *

# नैतिक और धार्मिक
# शिक्षा ।

प्रकाशक—

**भैरोंदान जेठमल सेठिया**

**बीकानेर.**

| | | |
|---|---|---|
| वीर सम्वत् २४५३<br>विक्रम सम्वत् १९८४<br>ई० सन् १९२७ | द्वितीयावृत्ति<br>२००० | न्योछावर<br>-)। सवा<br>आना |

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

### नैतिक और धार्मिक—

# शिक्षा।

१ आत्म-धर्म को और अपने कुलकी सच्ची मर्यादा को न छोड़ना चाहिये, और उसी सच्चे धर्म की आराधना करनी चाहिए।

२ चोरी की ऐसी चीज़ न ख़रीदनी चाहिए, जिस से राजा के दण्ड का भागी होना पड़े।

३ ऐसा कोई कार्य न करना चाहिए, जिससे कि राजा दण्ड देवे और लोग निन्दा करें।

४ पराई वस्तु विना दिये न लेना चाहिए, लेने से चोरी का दोष लगता है।

५　अन्याय से धन का संग्रह न करना चाहिए ।

६　जहां बुद्धि से काम चल सके, वहां धन खर्च न करना चाहिए ।

७　असत्य न बोलना चाहिए, खास कर गुरुके पास, राज-सभा में और पञ्चायत तथा अन्य बड़ी सभा में ।

८　गुणवान् पण्डितों से प्रेम रखना चाहिए, इस से बुद्धि बढ़ती है ।

९　ऐसा कटुक वचन न बोलना चाहिए, जिससे दूसरे का दिल दुखे ।

१०　अनजानी वस्तु न खानी चाहिए। जैसे कि किंपाक फल ।

११　बही खाते में और खत पाने में झूठा लेखा न लिखना चाहिए ।

१२　अपनेसे बड़ों को तुच्छ शब्द (ओछी बोली) से न बोलाना चाहिए ।

१३　ज्यादा लोभ ही हानि है । क्योंकि लोभ में फँस कर ही मनुष्य ठगाया जाता है ।

१४　विद्यावान् से वादविवाद न करना चाहिए ।

१५　फ़िजूल ख़र्च न करना चाहिए ।

१६ प्रतिदिन खर्च और आमदनी सँभालना चाहिए।

१७ यदि औषध खाना पड़े तो पथ्य भी रखना चाहिए।

१८ हंसी दिल्लगी में भी किसी की चीज़ न उठानी चाहिए।

१९ तौलने और नापनेके बांट कम बढ़ न रखना चाहिए।

२० नामो ठामो (जमा खर्च) तैयार रखना चाहिए।

२१ भोजन करते समय झगड़ना नहीं चाहिए।

२२ भूख से ज्यादा भोजन न करना चाहिए। नहीं तो अजीर्ण हो जायगा।

२३ जुए सट्टे या फाटके का व्यापार न करना चाहिए, क्योंकि इससे प्रतीति (विश्वास) घट जाती है।

२४ चोर कसाई वेश्या नीच और दुष्ट के साथ लेन देन (व्यापार) न करना चाहिए।

२५ छोटे आदमी से तकरार न करनी चाहिए, लोक में अच्छा नहीं मालूम होता।

२६ पशु को चोट न मारना चाहिए। क्योंकि 'मर्म में लगे तो जान से जाय'।

२७ लिखते समय बातों में न लगना चाहिए, बातों

में लगनेसे गलतियां हो जाती हैं।

२८ समस्त जीव, सत्त्व, प्राण, भूतों को न मारना चाहिए। दया रखनी चाहिए।

२९ असमय में घर से बाहर न निकलना चाहिए।

३० जहां दो आदमी बात कर रहे हों, वहां न जाना चाहिए।

३१ जहां मित्रता हो, वहां कर्ज़ न लेना चाहिए। लेने से यदि चुक न सके तो रंज होता है और मित्रता टूट जाती है।

३२ लेन देन में साहूकारी रखनी चाहिए, इससे साख शोभा इज्जत और आबरू बढ़ती है।

३३ सदा निडर न रहना चाहिए, संसार का डर चाहिए।

३४ अकेली स्त्री के पास खड़ा न रहना चाहिए।

३५ ऐसे मनुष्य का साथ न करना चाहिए, जो बोलने से बंद न हो, अर्थात् सदा कुछ न कुछ बकता रहे।

३६ पराधीनता में पड़ने पर भी अपने शील को दृढ़ रखना चाहिए।

३७ सिटल विटल से अर्थात् धर्मच्युत से प्रेम न

करना चाहिए ।

३८ सज्जन मित्र को छेह न देना (किनारा न काटना) चाहिए ।

३९ उल्टी बुद्धि वाले को बार २ सीख न देनी चाहिए ।

४० सुख और दुःखमें भी भली मर्यादा न छोड़नी चाहिए ।

४१ अपने गुणों का अपने आप बखान न करना चाहिए ।

४२ अपने दोष दूसरों पर न डालना चाहिए ।

४३ पीठ पीछे किसी के अवगुण न प्रकट करना चाहिए ।

४४ सम्यक्त्व और शील को सुदृढ़ रखना चाहिए ।

४५ बुरीगार (भुंडे आदमी-दुर्जन) को छेड़ना न चाहिए ।

४६ हृदय की बात हरएक से न कहनी चाहिए ।

४७ क्रोध आवे, तो क्षमा करनी चाहिए ।

४८ विना विचारे मनमाना न बोल देना चाहिए ।

४९ धर्माचार्य की आज्ञा में रहना चाहिए ।

५० पढ़ने गुनने में वाद न करना चाहिए ।

५१ शंका हो, तो सद्गुरु से समाधान करना चाहिए।
५२ अपने दोषों की आलोचना करने में शल्य न रखनी चाहिये। आलोचना करके निःशल्य हो जाना चाहिये।
५३ गुरु के साम्हने और अन्य बड़ों के साम्हने न बोलना चाहिए।
५४ किसी की आत्मा को न दुखाना चाहिए।
५५ धर्म-स्थानों में विकथा न करनी चाहिए।
५६ धर्मस्थानों में असत्य न बोलना चाहिए।
५७ धर्म वही है जहां त्रस और स्थावर जीवों की रक्षा हो।
५८ असत्य का पक्ष न लेना चाहिए।
५९ कपटी का विश्वास न करना चाहिए।
६० पाप-कार्यों से डरते रहना चाहिए।
६१ किसी चीज़ का घमण्ड न करना चाहिए।
६२ धर्म-कार्यों में तत्पर रहना चाहिए।
६३ अत्यन्त लोभ और तृष्णा न करनी चाहिए।
६४ दिल में गांठ रख कर, किसी को दुःख न देना चाहिए।
६५ दूसरे की चुगली न करनी चाहिए।

६६ परोपकार करने में ढील न करनी चाहिए।

६७ कड़ुआ, कठोर और लज्जाहीन वचन न बोलना चाहिए।

६८ मीठा सत्य और निरवद्य वचन बोलना चाहिए।

६९ धर्म की बात खुले मुँह से-अयतना से न करनी चाहिए।

७० अंगीकार किये हुए व्रत और प्रत्याख्यान में दोष न लगने देना चाहिये।

७१ पांचों इन्द्रियों—स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और कर्ण—के विषयों के वश में न होना चाहिए।

७२ सांसारिक संबन्ध अस्थिर है, यह सदा याद रखना चाहिए।

७३ धार्मिक सम्बन्ध ही सच्चा सम्बन्ध है।

७४ पाखण्डी लोभी कुगुरु का संग न करना चाहिए।

७५ निर्लोभी सद्गुरु की सत्संगति करनी चाहिए।

७६ सात व्यसनों—जुआ खेलना, मांस खाना, शराब पीना, वेश्या गमन करना, शिकार खेलना, चोरी करना और परस्त्री गमन—का सेवन न करना चाहिए।

७७ अठारह पापों का त्याग करना चाहिए।

७८ प्रतिकूल बर्ताव करने वाले पर द्वेष न करना चाहिए।

७९ खोटे हानि, खरे बरकत। अर्थात् अन्याय का पैसा जल्दी नष्ट हो जाता और न्याय से पैदा किया हुआ स्थाई रहता और बढ़ता है।

८० पाप से दुष्फल और धर्म से सुफल मिलता है।

८१ जो झूठ न बोलकर सच बोले, उसे ही साहूकार समझना चाहिए।

८२ जो अच्छी शिक्षा को भी बुरी माने वह हीन-पुण्य है।

८३ जो क्षुद्रवचन न बोले, उसे गम्भीर मनुष्य समझना चाहिये।

८४ न्याय—पक्ष को स्वीकार करना चाहिए अन्याय पक्ष को नहीं।

८५ सुदेव सुगुरु और सुधर्म की विनय भक्ति करनी चाहिए।

८६ देव गुरु और धर्म की आसातना न करनी चाहिए।

८७ अपने से बड़ी दूसरे की स्त्री को माता के समान, और छोटी को बहिन भानजी के समान जाननी चाहिए।

८८ सम्पत्ति विपत्ति, सुख, दुःख, मूढता और चतुरता ये सब कर्मों के नाटक हैं।

८९ आरंभ परिग्रह विषय कषाय, चाहे थोडा हो या बहुत, वह दुःख ही का कारण है।

९० मित्र से कपट न रखना चाहिए।

९१ स्नेह करने वाली स्त्री का भी विश्वास न करना चाहिए।

९२ होली आदि में ऐसे निर्लज्ज वचन न बोलना चाहिए और न गीत गाना चाहिए जिससे भावों में विकार उत्पन्न हो, और आत्मा पर बुरा असर पडे।

९३ बड़ों के साथ वैर न करना चाहिए।

९४ समर्थ होकर, दूसरों की आशा भंग न करना चाहिए।

९५ किसीको झूठा कलंक न लगाना चाहिए।

९६ विना काम और अनादर से किसी के घर न जाना चाहिए।

९७ माता पिता की आज्ञा भंग न करना, तथा सगे सम्बन्धियों से कभी विरोध न करना चाहिए।

९८ कपटी के आडम्बर का विश्वास न करना चाहिए।

९९ अत्यन्त कष्ट आ पड़ने पर भी आत्मघात न करना चाहिए।

१०० हंसी करते हुए किसी पर क्रोध न करना चाहिए।

१०१ यदि क्रोधवश होकर कोइ कटुक वचन आकर कहे तो भी न्यायमार्ग न छोडना चाहिए।

१०२ माता पिता गुरु सेठ स्वामी और राजा के अवगुण (दोष) दूसरे के सामने न कहना चाहिए।

१०३ स्नेह-राग समान दूसरा बन्धन, और प्राणी की हिंसा के समान बड़ा कोई पाप नहीं है।

१०४ क्रोधी कृपण आलसी कुव्यसनी की संगति न करनी चाहिए।

१०५ दूसरे के अवगुणों की निन्दा न करके उसके गुण ही ग्रहण करने चाहिए।

१०६ अपनी या अपने इष्ट मित्र की गुप्त बात प्रगट न करनी चाहिए।

१०७ मन की बात क्षुद्र मनुष्य, मूर्ख, स्त्री और पागल को न कहनी चाहिए।

१०८ संकट आने पर भी धर्म धैर्य और सत्य न छोडना चाहिए।

१०९ जिस जगह क्लेश या पाप होने की संभावना हो, वहां मौन रहे या वह स्थान छोड़ देवे।

११० कृतघ्नी कपटी निर्दयी अतिलोभी निर्लज्ज कुव्यसनी मूर्ख और धूर्त के साथ प्रीति न करनी चाहिए।

१११ अपनी बुद्धि शक्ति और लक्ष्मी का विचार करके ही कोई कार्य प्रारम्भ करना चाहिए, जिससे कि दूसरों की सहायता के लिए न ताकना पडे।

११२ द्रव्य न होने पर भी कर्ज न करना चाहिए।

११३ निर्धनता में भी अकार्य और अनर्थ से द्रव्य कमाने की इच्छा न करनी चाहिए।

११४ किसी सज्जन तथा मित्र पर संकट पडे, तो अवश्य सहायता करनी चाहिए।

११५ प्रतिदिन कार्य अकार्य का विचार करना चाहिए।

११६ दान, मुनियों की सेवा, भक्ति, विद्या सीखने, धर्मकृत्य करने, और परोपकार करने में आ-

लस्य-प्रमाद और कृपणता न करनी चाहिए।

११७ दुष्ट कलंकी कपटी आदिओं के साथ लेन देन का व्यवहार न करना चाहिए।

११८ राजा गुरु माता पिता पंच और पण्डित के साम्हने झूठ, कपट और बेअदबी न करनी चाहिए। सरलता से सच्ची बात कहनी चाहिए।

११९ प्रियजनों, सम्बन्धियों, मित्रों और कुटुम्बियों से व्यापार सम्बन्धी लेन देन न रखना; किन्तु सुख दुःख में शामिल होना, भोजन वस्त्र आभूषणों से सत्कार करना और धर्म का उपदेश देना चाहिए।

१२० कुटुम्बियों के साथ विरोध न करना, सब को यथायोग्य राजी रखकर, दुःख में सहायता देनी चाहिए, और मीठे वचन बोलने चाहिए।

१२१ अपने घर पर कोई सत्पुरुष आवे, तो आदर करना चाहिए।

१२२ खोटा तौल खोटा माप और झूठी गवाही त्यागनी चाहिए।

१२३ राजा, तपस्वी, कवि, वैद्य, घरभेदु, रसोइया

मंत्रवादी और बड़े पुरुषों के साथ विरोध न करना चाहिए।

१२४ अपना पराक्रम लक्ष्मी बुद्धि पक्ष और सामग्री को विना देखे, विवाद या अभिमान से किसी की बराबरी न करनी चाहिए।

१२५ अपने इष्ट धर्म के अनुसार, जो नित्य नियम अंगीकार किया हो, उसे निरन्तर पालन करना चाहिए।

१२६ यदि कोई मनुष्य गुण की या हित की बात कहे तो आदर से सुन कर ग्रहण कर लेना चाहिए, और उसका उपकार मानना चाहिए।

१२७ जिस गांव के लोगों से या राजकर्मचारियों से विरोध हो, वहां न रहना चाहिए।

१२८ अपनी आत्मा को संसार केसंयोग वियोग तथा जन्म मरण के दुःखों से मुक्त करने के लिए सत्य मार्ग की खोज अवश्य करते रहना चाहिए।

१२९ ऐसे आदमी के पास न जाना चाहिए जो बुरी सलाह दे।

१३० मामले-मुक़द्दमें-के मार्ग में मत पडो, ज़िद्द

को छोड़ कर न्याय मार्ग ग्रहण करो। कषाय वश यदि काम पडजाय तो पंचों से मामला तय करलो। चिन्ता हैरानी से बचो। अटरनी (ATTORNEY—जिसकी मार्फ़त वैरिष्टर नियुक्त किये जाते हैं) के पास न जाओ, नहीं तो खर्च देते समय पछताना पडेगा।

१३१ जिस जगह शोक चिन्ता मोह और दुःख पैदा हो उस जगह को छोड देना चाहिए, जहां ज्ञान वृद्धि हो वहां जाना चाहिए।

१३२ बड़ों का यह कहना है कि जो न्याय मार्ग और सिद्धान्त के अनुसार चलता है उसे मुकद्दमा नहीं लगता एवं दुःख नहीं होता—बिलकुल सत्य है।

१३३ पीठ पीछे निन्दा करने से वैर बढ़ता है।

१३४ नीच आदमी को न छेड़ना चाहिए, नहीं तो रेकार तुंकार सुनना पडेगा।

१३५ जहां छत या चंदोवा आदि न हो वहां तथा नग्न ( उघाड़े शरीर ) न सोना चाहिए।

१३६ प्रातः मध्याह्न सन्ध्या और मध्य रात्र इन चार कालों में अशुभ बात न कहनी चाहिए।

१३७ जहां संक्रामक बीमारी ( प्लेग हैजा आदि ) हो अर्थात् रोगचाला हो, वहां न रहना चाहिए।

१३८ बिना छना हुआ पानी न पीना चाहिए।

१३९ रस का बर्तन और दीपक आदि उघाडा न रखना चाहिए।

१४० ऐसा आचरण न करना चाहिए, जो दूसरों को बुरा लगे।

१४१ ऋण ( कर्जा-उधार ) देते समय इतनी बातों का विचार जरूर करना चाहिए-हैसियत, सम्पत्ति, पूंजी, व्यापार, नफ़ा, नुकसान, क्षेत्र, राजा का कानून, चालचलन, संगति, साख, शोभा, संप-मेल परिवार, प्रकृति, काम करने वाला नियत इत्यादि, इनकी देख भाल कर के ही ऋण देना चाहिये।

१४२ कुमार्ग में धन खर्च करके व्यर्थ न खोना चाहिये।

१४३ मार्ग में तरुण स्त्री का साथ न करना चाहिए।

१४४ अयोग्य आसन पर न बैठना चाहिए।

१४५ दिन में बहुत न सोना चाहिए।

१४६ पानी का विश्वास न करना चाहिए।
१४७ पर के द्रव्य की इच्छा न करनी चाहिए।
१४८ गुरु-गम अर्थात् गुरु-धारणा विना सूत्र का उपदेश न करना चाहिए।
१४९ सोते उठते ही सामायिक करना चाहिए। अर्थात् प्रभात काल ( पिछली रात ) में किसी काम में लगने के पहले सामायिक करना चाहिए।
१५० निर्ग्रन्थ-पंचमहाव्रतधारी साधु का दर्शन करना चाहिए।
१५१ मन लगा कर धर्म की दलाली करना चाहिए।
१५२ मा बाप और सासू सुसरे आदि बड़ों को दुःख न पहुंचाना चाहिए।
१५३ पाप कार्यों में आगे न बढ़ना चाहिए।
१५४ धर्मकार्य में आलस्य न करना चाहिए।
१५५ निश्चय और व्यवहार दोनों को ही मानना चाहिए।
१५६ हिसाब किताब करते समय, स्वाध्याय करते समय बीच में कोई चीज़ न देना चाहिए, और न बोलना चाहिए। यदि बोले तो काम करने वाले को बुरा लगता और भूल हो जाती है।

१५७ सांसारिक कार्य उतावली से न करना चाहिए।

१५८ क्रोध की बात, चिन्ता की बात, दुःख की बात स्वार्थ की बात, और असुहावनी बात, न करनी चाहिए।

१५९ ज्ञान के उद्योग के लिए थोड़ाबहुत समय जरूर निकालना चाहिए।

१६० नित्य नियम और मर्यादा विधिपूर्वक शुद्ध उपयोग से करना चाहिए।

१६१ साधु साध्वी के लिए निर्दोष आहार शुभ भाव से देना चाहिए।

१६२ किसी का जी न दुखाना चाहिए। क्रोध आवे तो चुप रहना चाहिए।

१६३ यदि कोई हमारा अपराध करे, तो क्षमा कर के अन्तःकरण से माफी देना चाहिए।

१६४ जल्दी उठ कर जो धार्मिक नित्य नियम करे उसे पुण्यवान् समझना चाहिए। यदि देर से उठे तो बुरा लगे और दारिद्र्य आवे

१६५ चिन्ता से रोग होते हैं विना कारण गप सप न लगाना चाहिए।। समय व्यर्थ बरबाद न करना चाहिए।

१६६ सब जीवों का कल्याण हो, ऐसी शुभ भावना भानी चाहिए।

१६७ नवीन २ शास्त्र बांचने और पढने का अभ्यास रखना चाहिए।

१६८ पूंजी के अनुसार काम करना चाहिए।

१६९ लक्ष्मी के होने पर असन्तोष न रखना चाहिए। अपनी पूंजी के चार भाग बनाकर एक भाग से व्यापार, दूसरे भाग से खान पान मकानात गहना आदि, तीसरा भाग भंडार में जमा रखना और चौथा भाग धर्म में खरचना चाहिए। ऐसा करने से सन्तोष और समाधि रहती है। अति तृष्णा और लोभ से दुःख होता है।

१७० किसी का उपकार न भूलना चाहिए।

१७१ जिसने एक अक्षर सिखाया हो, उसे भी गुरु-तुल्य समझना चाहिए।

१७२ अपने आत्मा का दोष खोज कर उसे निकाल डालना चाहिए।

१७३ विषयासक्त मनुष्य सदा दुःखी रहता है।

१७४ अपनी संतान को छोटेपन से ही सुसंगति में रखना चाहिए, अच्छी विद्या और धर्म के मूल

तत्त्वों की शिक्षा देनी चाहिए।

१७५ धर्माचरण करते समय "मैं मृत्यु के मुख में हूँ, आयु का विश्वास क्षण भर भी नहीं है" ऐसा सोचना चाहिए।

१७६ सर्वस्व नाश होता हो, तो भी अपने वचन (सत्य वचन) का अवश्य पालन करो

१७७ ज्ञान और ज्ञानवान् की भक्ति, जहां तक हो सके भरसक करो

१७८ रूप क्रोध और मद में अन्धा न हो जाना चाहिए।

१७९ भांग तमाखू और अफ़ीम आदि नशैली चीज़ों का सेवन मत करो।

१८० गृहस्थों के बारह व्रतों को यथाशक्ति पालन करो।

१८१ नीति मार्ग में चल कर सच्चा यश लेना चाहिए।

१८२ साधर्मी को यदि दोष लग गया हो, तो उसे एकान्त में समझावें और उस साधर्मी को भी चाहिए कि जैसा दोष लगा हो वैसा ही प्रायश्चित लेवे।

१८३ चर्चा करते समय विवाद न करना चाहिए।

१८४ भगवान के कहे हुए मार्ग में खेंचतान न करनी चाहिए।

१८५ हर एक पक्खी चौमासी और संवत्सरी में धार्मिक लाभ हानि का विचार करना चाहिए।

१८६ विद्या को विनयपूर्वक पढ़ना चाहिए।

१८७ आपस में लड़ना झगड़ना न चाहिए।

१८८ धर्म से गिरते हुए साधर्मी को स्थिर करना चाहिए।

१८९ रोगी ग्लानी और आपत्ति-ग्रस्त मनुष्यों की तन मन और धन से सेवा करनी चाहिए।

१९० अग्नि, गहरे जल, शस्त्र, सींग और नख वाले जानवर, विष, पाखण्डी, कुपात्र और स्त्री का विश्वास नहीं करना चाहिए।

१९१ बच्चों की आपस की लड़ाई में खुद न पड़ना चाहिए।

१९२ घुना हुआ अनाज न खाना चाहिए।

१९३ प्यास लगने पर एकदम ज्यादा पानी न पीना चाहिए।

१९४ इमली वृक्ष की छाया में न बैठना चाहिए क्यों कि इस की हवा रोगोत्पादक है।

१९५ गुस्से में आकर बालक के माथे में न मारना चाहिए।

१९६ दिन में नींद मत लो इससे रोग होता है।

१९७ यदि तुम्हें संसार के भीषण दुःखों का डर लगता हो और सुख की अभिलाषा हो, तो धर्म रूपी कल्पवृक्ष को सेवन करो।

१९८ करोड़ों ग्रन्थों का सार यह है कि धर्म की जड़ दया और पाप की जड़ कुव्यसन है।

१९९ शोक रूपी बैरी को पास रखनेसे बुद्धि हिम्मत और धर्म का समूल नाश हो जाता है।

२०० जैसे विना पुत्र के पलने की और विना दूल्हा के बरात की शोभा नहीं होती, उसी तरह विना धर्म के आत्मा की शोभा नहीं होती।

२०१ शास्त्रों का सुनना, श्मशान भूमि और रोग-पीडा, ये तीन वैराग्योत्पत्ति के मुख्य कारण हैं।

२०२ बेसमझ से जो शास्त्र का अर्थ करते हैं उन के लिए शास्त्र भी शस्त्रसमान है।

२०३ बुद्धि की वृद्धि और नवीन तर्क की उत्पत्ति होने का मुख्य कारण मन की शुद्धि है।

२०४ संसार को वश करने का उपाय गुणग्रहण मिष्ट-भाषण और उदारता-गुण की वृद्धि है।

२०५ लोग हँसी या क्रोध में कहा करते हैं-तुम्हारा हाथ टूट गया है, क्या तुम अंधे हो? किन्तु ऐसा कहने से चिकने कर्मों का बन्ध होता है। उन्हें भोगते समय छठी का दूध याद आ जाता (भारी संकट पड़ता) है। रो २ कर भी पल्ला छुड़ाना मुश्किल पड़ता है अतः जो कुछ बोलना हो, बिना विचारे मत बोलो क्योंकि तलवार का घाव भर जाता है, पर बोली की गोली का नहीं।

२०६ उसकी सामायिक मोक्षप्रद होती है जो अपनी या दूसरों की निन्दा और प्रशंसा में समभाव रखता है।

२०७ जैसे राजा की आज्ञा का भंग करने से इस लोक में दण्डित होना पड़ता है, वैसे ही सर्वज्ञ भगवान् जिनेन्द्र की उत्सूत्र-प्ररूपणा रूप आज्ञा भंग करने से परभव में अनन्त भव भ्रमण करना रूप दण्ड प्राप्त होता है।

२०८ अगर तुम अपने इष्ट जनों से प्रेम रखना चाहते हो, तो तुम्हें चाहिए कि, वे जब क्रोध करें तब तुम क्षमा धारण करो।

२०९ अगर तुम शीघ्र धर्मात्मा बनना चाहते हो तो धर्मात्मा पुरुष और गुरु का विनय करो तथा अच्छा आचरण करो।

२१० निश्चय धर्म की प्राप्ति तब होगी, जब कुटिलता, कटुवचन और कुमतिका त्याग करोगे।

२११ अर्हन्त देव, निर्ग्रन्थ गुरु और केवलिप्ररूपित दयामय धर्म ये तीनों धर्म के व्यावहारिक तत्त्व हैं

२१२ देव-आत्मा, गुरु-ज्ञान और शुद्ध उपयोग-धर्म ये तीनों धर्म के निश्चय-तत्त्व हैं।

२१३ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र, इन तीनों का मिलना ही मुक्ति का मार्ग है।

२१४ धर्म के चार प्रकार हैं—दान, शील, तप और भावना।

२१५ क्षमा अमृत है, उद्यम मित्र है (क्योंकि उद्यम से दरिद्रता नष्ट होती है) सत्य और शील शरण (निरापद स्थान-आपत्ति से बचाने वाले) हैं और सन्तोष सुख है।

२१६ सत्संगति परम लाभ, संतोष परम धन, विचार परम ज्ञान और समता परम सुख है।

२१७ क्रोध विष, मान शत्रु, माया भय और लोभ

दुःख है इसलिए इन से बचते रहो।

२१८ याद रखिए, एक दिन अवश्य मरना है और कृत (किए हुए) कर्म का बदला अवश्य भरना है

२१९ जीवन, जल के बुलबुले के समान है, लक्ष्मी अस्थिर, शरीर क्षणनश्वर (क्षणभंगुर) और थोड़ा या बहुत काम–भोग दुःख ही का कारण है।

२२० धन अति प्यारा लगे, तो भी अनीति से इकट्ठा न करना चाहिए। धन हाट हवेली कुटुम्ब परिवार सब यहां ही रह जाता है। केवल जीव ही अकेला आता और जाता है, अपने द्वारा बांधे हुए कर्म अपने आप भोगता है, संसार में सब स्वार्थी हैं।

२२१ कषाय राग और द्वेष को कम करो–जीतो, इन्द्रियदमन करो, धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्याओ।

२२२ पाप की निन्दा करनी चाहिए परन्तु पापी की नहीं। स्वात्मा की निन्दा करनी, परन्तु पर की नहीं।

२२३ यह कभी भी न सोचना चाहिए कि जो 'मेरा

सो सच्चा' किन्तु 'जो सच्चा सो मेरा' यह विचारना चाहिए।

२२४ आर्त्तध्यान और रौद्र ध्यान का त्याग करना चाहिए।

२२५ सर्व जीवों से मैत्री भाव, गुणवान् पुरुषों में प्रमोद (हर्ष), दुखियों पर दया और शत्रुता करनेवालों पर मध्यस्थभाव धारण करना सद्भाव है।

२२६ दुःखिनी विधवाओं के उष्ण आंसुओ को शान्त करना अर्थात् दुष्टों के अत्याचारों से बचा कर उन के शील धर्म आदि की रक्षा करते हुए सुख पहुँचाना, और दुखी बुभुक्षित निराधार बालकों का अन्न वस्त्र से पोषण करना परम धर्म है।

२२७ याद रक्खो! आंख बन्द होने बाद तुम्हारा कुछ नहीं है।

२२८ विषयासक्त मनुष्य सदा दुःखी रहता है।

२२९ एक सुयोग्य माता सौ शिक्षकों का काम देती है।

२३० जैसा कहना आता है वैसा करना भी आता है?।

२३१ ज्ञान गर्व के लिए नहीं, किन्तु स्वपर का बोध करने के लिए है।

२३२ जिसकी तृष्णा विशाल है वह सदा दरिद्री रहता है और जिसे सन्तोष है वह सदा श्रीमान् (धनवान्) है।

२३३ बुरे विचार करना विष पीने के बराबर है, अच्छे विचार करना अमृत पीने के बराबर है।

२३४ जो मन को जीत लेता है वह संसार को जीत लेता है।

२३५ जिसने काम को जीत लिया है, वह सब देवों का सरदार है।

२३६ ऐसा व्यसन-आदत-न डालो, जिससे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ख़राब हो।

२३७ गुणज्ञ पुरुष गुणों को ग्रहण करके गुणी, और दोषज्ञ पुरुष दोषों को ग्रहण करके दोषी बनते हैं।

२३८ मृत्यु के साथ जिसकी मित्रता हो अथवा जो मृत्यु के पास से भाग कर छूट सकता हो, वह सुख से भले ही सोवे।

२३९ परिग्रह, परमधर्म रूप चंद्रमा के लिए राहु के समान है, इसलिए इससे विराम (विरक्तता)

पाना चाहिये । जिसको इन्द्रियाँ विषयों से आर्त्त (पीड़ित) हैं, उसे शान्त स्वरूप आत्म-सुख की प्रतीति कैसे हो सकती है ।

२४० जो जीव सत्पुरुषों के गुणों का विचार नहीं करता और अपनी मनोकल्पना का आश्रय लेता है, वह सहज ही संसार की वृद्धि करता है । अर्थात् वह जीव अमर होने के लिए विष पीता है ।

२४१ हे सर्वोत्तम सुख के साधनभूत सम्यग्दर्शन ! तुझे अत्यन्त भक्ति से नमस्कार हो, भगवदुपदिष्ट आत्म-सुख का मार्ग श्री गुरु महाराज से जान कर, इसकी यत्नपूर्वक उपासना करो।

२४२ देह से भिन्न स्वपरप्रकाशक परमज्योति स्वरूप आत्मा में मग्न होओ। हे आर्यजनो! आत्माकी ओर उन्मुख हो कर स्थिरतापूर्वक आत्मा में ही लीन रहोगे, तो अनन्त अपार आनंद का अनुभव करोगे ।

२४३ जीवन का एक क्षण करोड़ों सुवर्ण मोहरों से भी खरीदा नहीं जा सकता, उसे व्यर्थ खोने सरीखी और कौनसी हानि है ।

२४४ सदुद्योग, सद्‌भाग्य का सहोदर है, आज की कीमत, आगामी काल से दुगुनी है। जो कार्य आज हो सकता हो, उसे कल के लिए न छोड़ो।

२४५ समय प्रकृति का ख़ज़ाना है, घड़ियां और घंटे उसकी तिजोरियां हैं, पल या क्षण उसके कीमती हीरे हैं, चतुर नर कीमती से कीमती हीरे को गँवाने की अपेक्षा एक पलको व्यर्थ गँवाना हानिकारक समझते हैं।

२४६ ज्ञान और विचार वास्तविक नेत्र हैं, बिना इनके आंखें होते हुए भी अन्धा है, ऐसा मनुष्य गड्ढे (खड्डे) में गिरे, इसमें नवीनता ही क्या है?।

२४७ डॉक्टर बैरिस्टर या प्रोफेसर की उपाधि प्राप्त करने में ही शिक्षा का उद्देश्य समाप्त नहीं होता किन्तु प्रगट सेवा करने और आत्म-कल्याण करने में ही शिक्षा का उद्देश्य सम्पन्न होता है। वास्तव में जिससे मन मारा जा सके वही सच्ची शिक्षा है।

२४८ जो मनुष्य अपनी इच्छा को अपने क़ाबू में नहीं कर सकता, वह जीवन की कठिनाइयों पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता।

२४९ समाजसेवा और धर्मसेवा उत्तम है, परन्तु आत्मसेवा सर्वोत्तम है। क्योंकि जो संसार के समस्त प्राणियों को आत्मवत् गिने, पर-धन पत्थर समान गिने, परस्त्री को माता के समान गिने, वही आत्मसेवा कर सकता है।

२५० प्रशंसा की इच्छा न करो, पर जिससे प्रशंसा हो, ऐसे कार्य करो, कीर्ति सत्कार्य के साथ ही रहती है।

२५१ यदि तुम्हें बड़ा बनना है, तो पहले छोटे बनो। गहरी (नीची-उंडी) नींव डाले विना बड़ा मकान नहीं चिना जा सकता।

२५२ बड़प्पन की माप उमर या श्रीमंताई से नहीं, किन्तु बुद्धि से या उदारता से होती है। अतः चतुर और उदार बनो।

२५३ तलवार की कीमत म्यान से नहीं बल्कि धार से होती है, उसी तरह मनुष्य की कीमत धन से नहीं किंतु सदाचार से होती है।

२५४ वैर का बदला लेना क्षुद्रता है, जब कि क्षमा करना बड़प्पन का काम है। वृक्ष पत्थर मारने वाले को भी फल देता है।

२५५ जब बादल बरसते और वृक्ष फलते हैं, तब नीचे नमते हैं, इसी तरह समृद्ध होकर जो नम्र बने वही सज्जन गिना जाता है।

२५६ बरसात विना मांगे बरसता है उसी तरह सज्जन विना मांगे अपनी धन-सम्पत्ति परोपकार के कामों में खर्चता है।

२५७ बड़ी उपाधि पाकर जो ग़रीबों पर, दया न करे वही शैतान है, शैतान के शिर पर सींग तो उगते ही नहीं है।

२५८ दान शीलता स्वर्ग की कुँजी है, और दया खानदानी का खजाना है, पत्थरसमान हृदय के साथ खानदानी नहीं रहती।

२५९ नदी का पानी समुद्र में मिल जाता है, उसी तरह दातार की दौलत व्याज सहित उसे ही वापस मिलती है।

२६० जो बुराई के बदले भलाई करे, अपकार के बदले उपकार करे वही वास्तविक सत्पुरुष है।

२६१ महापुरुष वही है जो चढ़ती (उन्नति) में गर्व और पड़ती (अवनति) में खेद न करे और शरणागत का त्याग न करे।

२६२ जो सुने या ग्रहण करे, उसे शिक्षा देना अच्छा है किन्तु मूर्ख को शिक्षा देना सर्प को दूध पिलाने बराबर है।

२६३ जिसके लिए दूसरों को उपालम्भ देते हो, वही अवगुण यदि तुम में है, तो पहले अपना अवगुण दूर करो, फिर दूसरों को कहो।

२६४ चोर व्यभिचारी धर्मद्रोही राजद्रोही मनुष्य से सदा दूर रहना चाहिए, इन की संगति हानि पहुँचाने वाली होती है।

२६५ अनेक युद्धों में विजय प्राप्त करने वाले योद्धा की अपेक्षा मनोराज्य पर विजय पाने वाला योद्धा ज्यादा शूरवीर गिना जाता है।

२६६ श्रीमानों या त्यागियों को संतोष से जो सुख प्राप्त हो सकता है, वह सुख किसी भी वस्तु से नहीं मिल सकता।

२६७ धन में, खाने पीने में और मौज शौक में संतोष रखना चाहिए, किन्तु ज्ञान में, दान में और धर्म में संतोष न रखना चाहिए।

२६८ जिस से दुःख मिट सके, उसीके सामने हृदय खोलना (दुःख प्रकट करना) चाहिए। जिस

किसी के पास हृदय खोलने से क्षुद्रता (हलकाई) समझी जाती है।

२६९ विष से ज्यादा जहरीला कर्ज है, बिष तो खाने वाले ही को मारता है, किन्तु कर्ज बालबच्चों को भी मारता है।

२७० उत्तम पुस्तकें सत्संगति का काम करती हैं, और खराब पुस्तकें सत्संगति के सुंदर असर को भस्म करदेती हैं।

२७१ धर्म की जड़ विनय है, कपट से नहीं किन्तु सच्चे मन से बड़ों की सज्जनों की और गुरुओं की विनय करो।

२७२ उपकारी का उपकार भूल जाने वाले में मनुष्यता का गुण नहीं रह सकता, पशु भी उपकार का बदला चुकाते हैं।

२७३ विशाल मन और विशाल कार्यों में ही बड़प्पन है, पर बड़ी बातें करने में नहीं।

२७४ त्यागशीलता (दान) के विना सम्पत्ति ऐसी निर्माल्य और अस्पृश्य है, जैसे विना चेतन के शरीर।

२७५ दान की प्रतिध्वनि स्वर्ग के द्वार तक पहुँचती

है और दानी के यशोगान करने के लिए शासन के देवता आकर्षित होते हैं।

२७६ हमारे लिए दौलत है, दौलत के लिये हम नहीं हैं, दौलत के लिए जीवन गँवाना आत्मा को गँवाने बराबर है।

२७७ "अपनी करनी पार उतरनी, जैसा देना वैसा लेना, इस हाथ दे उस हाथ ले" इन अनुभूत वाक्यों का सदा स्मरण रक्खो।

२७८ लक्ष्मी चंचल है, प्राण पाहुना (मेहमान) है, जवानी जाने को ही है, आयुष्य अस्थिर है, धैर्य का स्थान एक धर्म ही है।

२७९ अतीत काल का सोच न करना चाहिए, आगामी का विश्वास न करना चाहिए और वर्तमान को व्यर्थ न जाने देना चाहिए।

२८० मृत्यु एक क्षण भर भी नहीं थँभेगी, लालच से ललचायगी नहीं, अतः कल करना हो, सो आज–अभी करो।

२८१ जरी के वस्त्र और हीरा माणिक के अलंकारों

की अपेक्षा ब्रह्मचर्य ही मनुष्य की ज्यादा शोभा बढ़ाता है।

२८२ सोने चांदी और हीरा माणिक के आभूषण नष्ट हो जाते हैं, लेकिन शील-रूप आभूषण अखंड रहता है। वह स्त्री-पुरुषों कुमार-कुमारिकाओं बुड्ढों और जवानों, सभी को शोभा देता है।

२८३ जिस काम के करने पर पश्चात्ताप करना पड़े, उस के प्रारम्भ न करने में ही वास्तविक चतुरता है।

२८४ किसी इष्ट या अनिष्ट नश्वर (नाश होने वाली) वस्तु का संयोग ही दुःख का कारण है, क्योंकि जहां संयोग वहां वियोग भी अवश्य होता है।

२८५ अभयपद प्राप्त करना हो, तो दूसरों को अभय दो, इसी तरह सुख चाहते हो, तो सुख दो।

२८६ अगर किसी को सुखी न बना सको तो दुःख तो किसी को मत दो।

२८७ दूसरे का बुरा सोचना अपना बुरा करने के

बराबर है। क्योंकि "जो दूसरों के लिए गड्ढा (खड्डा) खोदता है वह स्वयं गड्ढे में गिरता है"।

२८८ केवल प्राणियों के प्राण हरण करना ही हिंसा नहीं है, किन्तु अंतरात्मा को दुखाने के लिए कुछ भी करना या चिन्तन करना भी हिंसा है।

२८९ क्रोध की क्रूरता के साम्हने क्षमा का खड्ग रक्खो और मान का मर्दन करने के लिए नम्रता का पाठ सीखो।

२९० माया के मूल (जड़) को उखाड़ कर सरल बनो, और लोभ को थांभ कर संतोषी बनो, क्योंकि जहां सरलता और सन्तोष है, वहीं धर्म का निवास है।

२९१ हमने यदि दूसरे का उपकार किया हो और दूसरे ने हमारा अपकार किया हो, तो दोनों भूल जाना चाहिए।

२९२ सत्य की सीमा में ही विजय की पताका फहराती है। 'जहां झूठ वहां नाश, जहां कपट वहां चौपट (उजाड़)' यह नीति का परम मन्त्र है।

२९३ अप्रामाणिकता से कमाये हुए अटूट द्रव्य की अपेक्षा, प्रामाणिकता का एक पैसा भी ज्यादा क़ीमती और टिकाऊ होता है।

२९४ विश्वासघात, चोरी, कपट, प्राणिवध, कन्याविक्रय और स्वामिद्रोह से प्राप्त हुई सम्पत्ति, सम्पत्ति नहीं विपत्ति है।

२९५ अन्याय और अधर्म से पैदा किये हुए द्रव्य को यदि पूर्व पुण्य का सहारा न हो, तो दश वर्ष से अधिक नहीं ठहर सकता।

२९६ जिस धन से दीन दुखी जनों का उद्धार न किया हो, सुपात्र को दान न दिया हो और कुटुम्बियों का पोषण न किया हो, वह धन, धन नहीं, धूल है।

२९७ आमदनी के अनुसार धर्म मार्ग में बिलकुल व्यय न करना, लक्ष्मी को लंगड़ी बनाने के बराबर है।

२९८ अन्तरंग में गुण न हो, तो बाहर का आडंबर व्यर्थ है। यही नहीं, वह संसार को फँसाने

वाली फाँसी है। गाय की कीमत घंटियां बांधने से नहीं, किन्तु दूध देने से होती है।

२९९ विना निन्दा किए न रहा जाता हो, तो अपनी खुद की निन्दा करनी चाहिए; क्योंकि दूसरे की निन्दा करना, आत्मा को ज़हरीली बनाना है।

३०० भयंकर वाघ के मुख में हाथ डालने की अपेक्षा दुर्जन की संगति करना अधिक भयंकर है

३०१ माता पिता की सेवा भक्ति करने में और उनकी आज्ञा पालने में पुत्र की सच्ची पवित्रता है।

३०२ हितचिन्तक माता पिता, निःस्वार्थी शिक्षक और सद्गुरु, इन तीनों की आज्ञा पालन करना ईश्वर की आज्ञा पालने के बराबर है।

३०३ नारियल जैसे वृक्ष भी अपने पालने पोषने वाले को, मधुरजलपूर्ण फल दे कर प्रत्युपकार करते हैं, तो मनुष्य प्रत्युपकार गुण कैसे छोड़ सकता है।

३०४ मौज शौक़ के लिये नहीं, किन्तु धर्म और मरमार्थ के लिए शरीर का स्वास्थ्य क़ायम रखना आवश्यक है, क्योंकि जिसका शरीर स्वस्थ होता, उसी का मन स्वस्थ रह सकता है।

३०५ एकबार के भोजन के पूरे २ पचने से पहिले दूसरी बार भोजन कर लेना, रोगों को आमंत्रण देने के बराबर है।

३०६ पांचों इन्द्रियों को स्वतन्त्र करना आपत्ति का द्वार खोलने के बराबर है।

३०७ धर्म कल्पवृक्ष है, मोक्ष और अभ्युदय ये दोनों उसके फल हैं, मैत्री, प्रमोद, करुणा, और माध्यस्थ्य (उपेक्षा) ये चार भावनाएँ उस का मूल हैं, विना मूल शाखा नहीं होती और विना शाखा के फल नहीं होते; अतः यदि मोक्ष रूपी फल प्राप्त करना हो, तो भावना रूप मूल को मज़बूत बनाओ।

३०८ प्यास के समय विना भूख न खाना चाहिए और भूख के समय विना प्यास पानी न पीना चाहिए।

३०९ गर्मी के दिनों में, जिस वक्त धूप न हो, और सर्दी के दिनों में मोटा या ऊनी कपड़ा पहिनकर थोड़ी या सुहाती ठंड के समय, स्वच्छ वायु वाले मैदान में, सुबह शाम घूमने से शरीर स्वस्थ होता है और भूख बढ़ती है।

३१० आब हवा बदलने के लिए ऐसी जगह में रहना चाहिए, जहां की आब हवा अच्छी हो, ऐसी जगह पर रहने से शरीर तन्दुरुस्त होता है। कहावत है "सौ दवा और एक हवा"।

३११ शरीर तन्दुरुस्त न रहने पर या बीमारी आने पर इलाज कराने से पहले ऊँचे डॉक्टर, विद्वान् वैद्य या नामी हकीम से चिकित्सा कराओ, पश्चात् विचार करके जो ज्यादा अनुभवी और यशस्वी हो, उसी की दवा लो।

३१२ जहां का पानी गँदला या भारी हो, वहां के लोगों को चाहिए कि पानी को छान कर साफ़ कर गर्म किये विना न पीवें।

३१३ गरिष्ठ चीज़ और ख़ासकर रबड़ी पेड़ा आदि मावे (खोए) की चीज़ को लोभ या जिह्वा के

वश होकर मात्रा से अधिक मत खाओ, क्योंकि यह पाचन शक्ति को बिगाड़ती है। मन्दाग्नि वाले के लिए तो भयंकर बीमारियों को बुलाना है।

३१४ आधा पेट अन्न से और चौथाई जल से भरो तथा चौथाई हवा के लिए खाली रक्खो, ऐसा करने से शरीर स्वस्थ रहता है।

३१५ विद्या आत्म-ज्ञान के लिए, धन दान के लिए और शक्ति दूसरों की रक्षा के लिए होती है।

इति शुभम्

पुस्तक मिलने का पता—

श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया

जैन शास्त्र भण्डार

बीकानेर (राजपूताना)

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचन्द भैरोंदान सेठिया

जैन लाइब्रेरी (शास्त्रभण्डार)

बीकानेर [राजपूताना]

सेठिया जैन ग्रन्थ माला पुष्प नं० ५६

श्री वीतरागाय नमः

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## पहला भाग

प्रकाशक—

अगरचन्द भैरोंदान सेठिया

बीकानेर

वीर सं० २४५६ तृतीयावृत्ति न्योछावर )III

विक्रम सं० १९८६ ५००० तीन पैसे

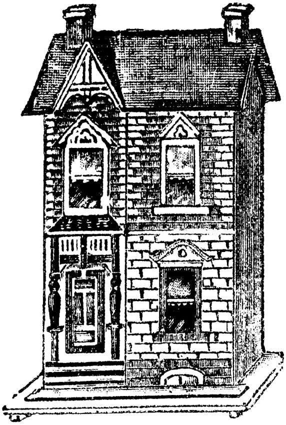

बंगला

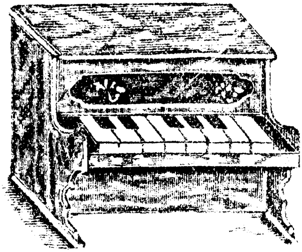

हारमोनियम

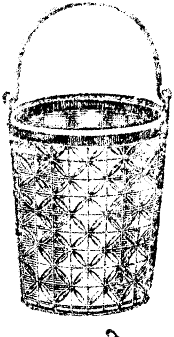

बालटी

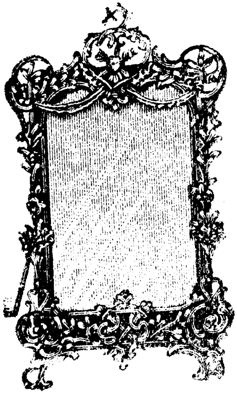

काच

प्याला

# माणकचन्द सेठिया

*Manuckchand Sethia*

ॐ

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## पहला भाग

स्वर—

अ आ इ ई

उ ऊ ऋ ॠ

ऌ ॡ ए ऐ

ओ औ अं अः

## स्वरों की पहिचान।

# ऊ ऐ ई ॡ आ ए इ उ ओ
# ऌ ऋ अ अः औ ॠ अं।

अ का अ ऐसा भी रूप होता है।

व्यञ्जन —

# क ख ग घ ङ

# च छ ज झ ञ

# ट ठ ड ढ ण

त थ द ध न

प फ ब भ म

य र ल व

श ष स ह

कोई कोई क्ष त्र ज्ञ को अलग व्यञ्जन मानते हैं। पर वे दो अक्षरों के मिलने से बनते हैं; इसलिए इन तीनों को मिले हुए अक्षरों के साथ बताएँगे।

कुछ व्यञ्जनों के दूसरे-दूसरे रूप—

भ की जगह झ, ण की जगह ण और श की जगह श भी लिखा जाता है। पर बोलने में और मतलब में कुछ भेद नहीं होता।

व्यञ्जनों की पहिचान

क फ श य ल ग भ

झ छ च ठ ट ढ ड

स ख थ व ब र घ

ध भ म घ ष ज अ

झ द ण त थ प य

श छ फ ड ह न

## क ख ग ज ड ढ फ ।

ऊपर लिखे अक्षरों के नीचे बिंदी लगाने से बोलने में फरक पड़ जाता है । पाठक लड़कों को बोला बोला कर समझा देवें । जैसे—

## क़ ख़ ग़ ज़ ड़ ढ़ फ़

(१)

### अक्षरों का जोड़ना ।

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| आ | ए | आए | आ | ओ | आओ |
| अ | ब | अब | आ | ग | आग |
| इ | स | इस | ई | ख | ईख |
| उ | स | उस | ऊ | ख | ऊख |
| ऋ | ण | ऋण | ए | क | एक |
| ऐ | ब | ऐब | ओ | स | ओस |
| औ | र | और | अं | ग | अंग |

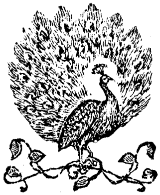

मोर

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| क | ल | कल | क | र | कर |
| ख | ग | खग | ख | ल | खल |
| म | न | मन | भ | र | भर |
| ज | ब | जब | त | ब | तब |
| ड | र | डर | घ | र | घर |
| म | त | मत | च | ल | चल |
| घ | ट | घट | प | ट | पट |
| ब | ल | बल | ज | न | जन |
| ब | ढ़ | बढ़ | फ | ल | फल |

(२)

तन मन धन गज बल मत कर
घर चल फल चख नम कह रह
नस पर धन मत हर सच कह
इस सब रख बस कर लड़ मत।

(४)

गरम मगर नहर रहन नमक चरण
लगन शहर मगन खटक चटक मटक
बतक रपट लचर तलब महल पकड़
भजन सड़क नरम

(५)

सरपट करवट शरबत थरथर बरतन
मलमल कलकल बरगद पलटन रपटन
मतलब पनघट महतर हलचल जमघट
खटपट खदबद जबरन

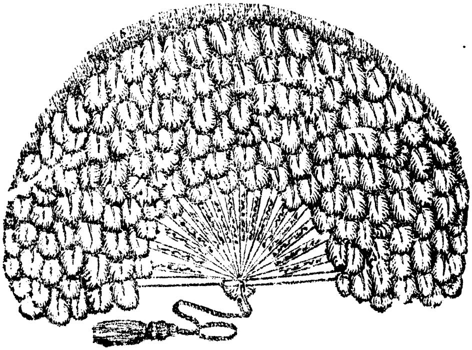

पंखा

अभ्यास ।

यह घर । डर मत । सच कह । पर धन मत हर । सरपट न चल । गरम जल । ओस पर मत भटक । ऐब तज । बरगद पर मत चढ़ । उस पर यह मत रख । मन बस कर । करवट बदल । खटपट मत कर । झटपट पढ़ । भजन कर नरम बन ।

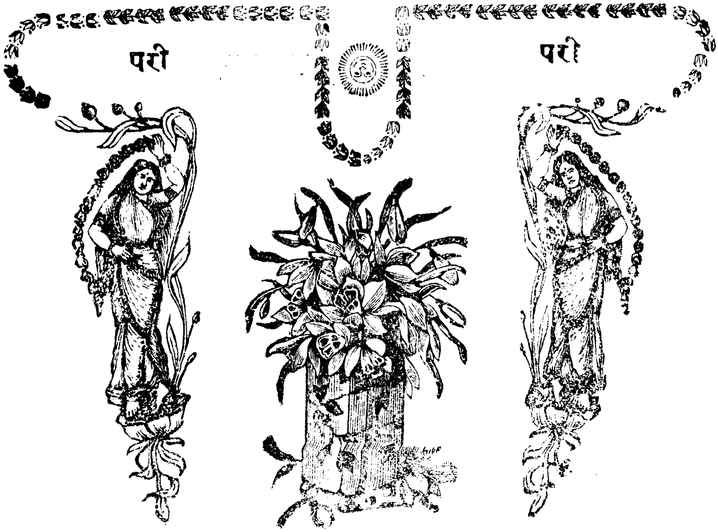

व्यञ्जनों के साथ स्वरों के चिह्न जोड़े जाते हैं। जैसे—

स्वरों के चिह्न —मात्रा।

| | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| स्वर— | अ | आ | इ | ई | उ | ऊ | |
| चिह्न— | ० | ा | ि | ी | ु | ू | |
| | ए | ऐ | ओ | औ | अं | अः | |
| | े | ै | ो | ौ | ं | ः | |

उदाहरण।

क्+अ=क — क्+आ=का

क्+इ=कि — क्+ई=की

क्+उ=कु — क्+ऊ=कू

क्+ए=के — क्+ऐ=कै

क्+ओ=को — क्+औ=कौ

क्+अं=कं — क्+अः=कः

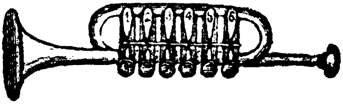

बिगुल बाजा

## बारह खड़ी।

क का कि की कु कू के कै को कौ कं कः

ख खा खि खी खु खू खे खै खो खौ खं खः

ग गा गि गी गु गू गे गै गो गौ गं गः

घ घा घि घी घु घू घे घै घो घौ घं घः

च चा चि ची चु चू चे चै चो चौ चं चः

इसी तरह सब व्यञ्जनों के साथ स्वरों के चिह्न लगा लगा कर पाठक बालकों को समझा दें और बोलना बना दें।

र में उ लगाने से रु और ऊ लगाने से रू ऐसा रूप हो जाता है। जैसे — गुरु, रूप

किसी अक्षर के ऊपर जो बिंदी लगाई जाती है, उसे अनुस्वार कहते हैं। किसी अक्षर के ऊपर ँ ऐसा चिह्न लगाया जाता है, उसे अनुनासिक कहते हैं। जैसे— हँसी। किसी अक्षर के आगे दो बिन्दियाँ लगाई जाती हैं, उन्हें विसर्ग कहते हैं। जैसे-छः।

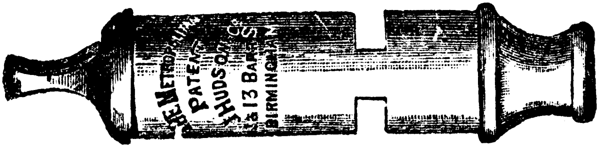


सीटी

## मात्राओं का लगाना ।

(१)

# अ आ इ ई उ ऊ ऋ

स्+अ=स          च्+अ=च

सच  सब          चल  चख

क्+आ=का          म्+आ=मा

काका  काम          मामा  माता

क्+इ=कि          ज+इ=जि

किस  किरण          जिन  जिस

ग्+ई=गी          ब्+ई=बी

गीत  बागी          बीस  बीच

त्+उ=तु          स्+उ=सु

तुम  तुझ          सुर  सुख

च्+ऊ=चू          श्+ऊ=शू

चूर  चूम          शूर  शूल

हाथ

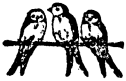

चिड़ियाँ

हाथ

जब किसी व्यञ्जन में 'ऋ' जोड़ा जाता है, तब उसका रूप ऐसा हो जाता है। जैसे—क्+ऋ=कृ–कृपा।

# ऋ ऌ ॡ

ये तीन स्वर संस्कृत में ही काम आते हैं।

(२)

# ए ऐ ओ औ अं अः

द्+ए=दे — देव देह

स्+ए=से — सेठ सेव

च्+ऐ=चै — चैन चैत

ज्+ऐ=जै — जैन जैसा

च्+ओ=चो — चोट चोर

म्+ओ=मो — मोर मोल

क्+औ=कौ — कौन कौआ

म्+औ=मौ — मौन मौत

भ्+अं=भं — भंग

ह्+अं=हं — हंस

छ्+अः=छः — छः

## स्वर और व्यञ्जनों का मेल।

(१)

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| मामा | काका | काला | ताला | किस |
| जिन | तीर | खीर | सुन | मुनि |
| चूर | दूर | चूहा | मूल | देव |
| सेवा | जैन | मैल | सोना | कोरा |
| मोती | मौन | कौन | संग | कंस |

(२)

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| लालच | छाना | लीपना | पढ़ना | लिखना |
| सीखना | वैरागी | अनेक | भलाई | खिलाना |
| देखलो | गमन | मरण | सदैव | करना |
| पड़ता | देवता | भलाई | बुराई | धरना |
| पिलाना | गरीब | आदमी | सादगी | पसंद |

(३)

| | | | |
|---|---|---|---|
| मारपीट | मुनिराज | जिनदेव | डुगडुगी |
| झूठमूठ | देवलोक | रामदास | रेलगाड़ी |
| कबूतर | जानवर | दौड़धूप | छेडछाड़ |
| बीकानेर | महाराज | राजपूत | महावीर |

## वाक्य-रचना

(१)

सच बोलो। दया पालो। कौन है। खुश रहो।
भले बनो। घर चलो। मत डरो। खूब पढ़ो।
मीठा बोलो। धीरे हँसो। चोरी मत करो।

(२)

सवेरा होगया है। चिड़ियाँ बोलती हैं।
बिछौना छोड़ दो। शरीर साफ़ करो।
किताब उठाओ। पाठ याद करो।
बासी दूध मत पिओ। मदरसा खुल गया।
गुरुजी वहां हैं। सब साथी गये।
उन से पहिले पहुँचो। इनाम खूब मिलेगा।
माता खुश होगी। मिठाई भी मिलेगी।
गाय दूध देती है। उसके सिर पर ताज है।
लालच छोड़ना चाहिए।

जिनदास भला बालक है। रोज पाठशाला जाता है। भगवान महावीर यहां नहीं हैं। देवलोक बहुत ऊँचा है। नरक सात होते हैं। कबूतर जीव नहीं खाता। सब जगह आकाश है। पानी में छोटे छोटे जीव होते हैं। विना छना पानी मत पिओ। रात में भोजन मत करो। नुकसान से बच जाओगे।

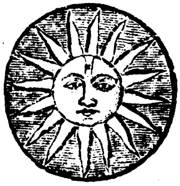

सूरज

सूरज घूमता रहता है। धरती ठहरी रहती है। किसी जीव को मत सताओ। कोई कुछ कहे तो सहन करो।

देवकुमार मोटा ताजा लड़का है। वह रोज़ कसरत किया करता है। सुबह झटपट उठता है। आलस हमारा बैरी है।

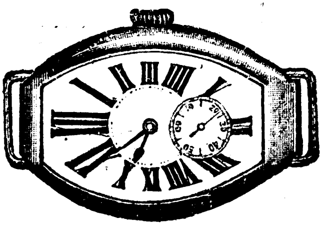

घड़ी

हिरन

(४)

घड़ी टकटक करती रहती है।

हिरन भोला भाला जानवर होता है। जिनदास और भगवानदास एक ही मदरसे में पढ़ते हैं। लड़ना झगड़ना बुरी बात है। अलोकाकाश में जीव नहीं जा सकते हैं। जिन चौबीस ही होते हैं। किसान कड़ी मिहनत करते हैं। राजपूताने के राजा बहादुर होते हैं। पहिले बहुत से राजा जैन होते थे। जिस देश का नमक खाते हो, जिस धरती का अनाज खाते हो, उसकी सेवा करो।

कलश

कलश मंगल रूप माना गया है। हम सब भारतवासी हैं। ऋषभदेव नाभिराजा के लड़के थे।

## पाठ पांचवाँ

एक भेड़ खेत में चर रही थी। शिकारी जानवर उसके पीछे दौड़े। भेड़ भागी। भागते भागते किसी झाड़ी में छिप गई। उसे किसी ने देख न पाया। झाड़ी मे बहुत सी कोंपलें थीं। कुछ देर बाद वह भेड़ कोंपलें खाने लगी। झाड़ी सूनी हो गई। शिकारी जानवरों ने उसे देख लिया और पकड़ लिया। सच है—

भलाई करने वाले के साथ बुराई कभी न करनी चाहिये। जो बुराई करते हैं, उनकी दशा भेड़ के समान होती है।

## पाठ छठा।

लड़कों को कुछ बातें ज़रूर करनी चाहिए। वे ये हैं। कभी झूठ न बोलना चाहिए। माता पिता और गुरु का आदर करना चाहिए। जब वे बाहर से आवें, तब खड़े हो जाना चाहिए। उनकी सेवा सदा करनी चाहिए।

विना पढ़ा लिखा आदमी पशु के समान है। इसलिए तुम पढ़ने लिखने में खूब मिहनत करो।

तुम अभी छोटे हो। थोड़े दिनों में ही बड़े बन जाओगे। सब बड़े २ आदमी पहले तुम सरीखे थे। अपने को नीचा न समझो।

पर घमंड न करो । बड़े बनने की तरकीब अपने गुरुजी से पूछो ।

अपने साथियों से मत लड़ो। उनसे मिलकर रहो । जब जुदे हो जाओगे, तब उनकी याद आवेगी ।

लक्ष्मीजी

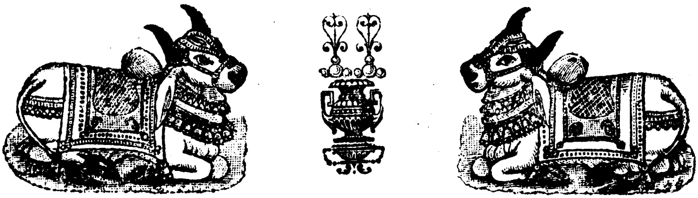

नांदिया

## पाठ सातवाँ

एक कौआ था। वह बहुत चालाक था। लोगों के आंगन की चीजें उठा ले जाना था। कभो कभी मौका पाकर, घर में घुस जाता और चीजों को फैला दिया करता था। उस से सब लाग बड़े दुखी थे। वह एक दिन किमी मकान में घुस गया। उसमें खीर पक रही थी। कौआ साचने लगा — आज खूब बनी। यह सोच कर वह खीर की तपेली के पास गया और उसमें अपनी चोंच डाल दी। खीर बहुत गरम थी। उसकी चोंच जल गई और तेज भाफ से आंखें फूट गईं।

बालको ! कौए की तरह कभी चोरी न करना। छोटी चोरी या बड़ी चोरी का फल बुरा ही होता है। कहो, कौए की कैसी दशा हुई ?।

## पाठ आठवाँ

किसी समय एक राजा ने किसी गांव में एक हाथी भेजा। वह बहुत बीमार था। राजा ने कहला भेजा—'हाथी मर गया' यह समाचार कभी न लाना। लेकिन इसका हाल रोज़ सुना जाना। नहीं सुनाओगे तो दंड पाओगे। राजा का हुकम सुन, सब घबराए। बालक रोहक बहुत चतुर था। सब ने उसी से पूछा। रोहक बोला—इसे घास चरने डाल दो, फिर जो होगा सो देखा जायगा। रोहक के कहने से हाथी को घास डाला गया, लेकिन हाथी रात ही में मर गया।

गमला

दूसरा दिन हुआ। रोहक के कहने से गांव के लोग राजा के पास जाकर बोले-महाराज! आज हाथी न बैठता है, न खाता है, न लीद करता है, न सांस ही लेता है। राजा बोला— अरे! हाथी मर गया है? लोग बोले— महाराज! आप ही ऐसा कहते हैं, हम लोग नहीं कहते। यह जवाब सुन कर राजा चुप हो गया। सब ने उस लड़के की चतुराई की बड़ाई की।

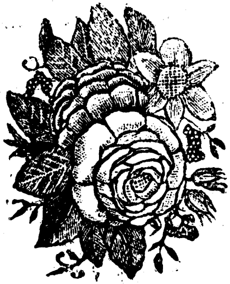
गुलाब का फूल

पाठ नवमां

# बालकों के काम

(चि० ज्ञानपाल सेठिया)

माता जो कुछ सिखलावेगी
काम काज जो बतलावेगी ।
खुश दिल होकर वही करूँगा
कभी तनिक भी नहीं मुकरूँगा ॥ १ ॥
रोज़ रोज़ पढ़ने जाऊँगा
पढ़कर सीधा घर आऊँगा ।
मेरे साथी मेरे भाई
नहीं करूँगा कभी लड़ाई ॥ २ ॥

१ थोड़ा २ इन्कार करूंगा

कडुवा वचन नहीं बोलूँगा
सदा सरल बानी बोलूँगा ।
मात पिता की विनय करूँगा
चरणों में माथा रख दूँगा ॥ ३ ॥
बिना छना पानी न पिऊँगा
और काम में भी नहिं लूँगा ।
निशि में भोजन नहीं करूँगा
जिनवर को न कभी भूलूँगा ॥ ४ ॥

---

निशि— रात

| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| एक | दो | तीन | चार | पांच | छह | सात | आठ | नौ | दस |

॥इति॥

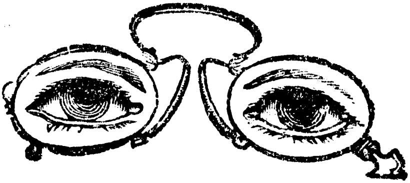

चसमा

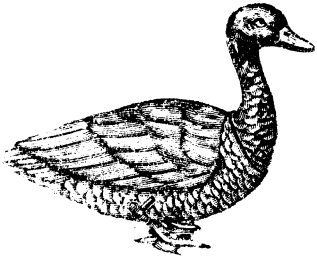

बतक

फूलों की छाब

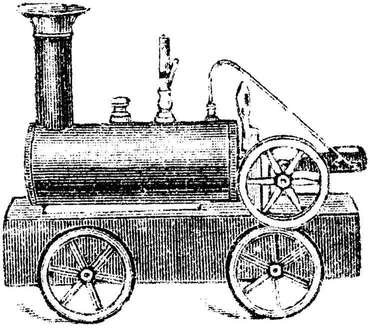

इञ्जन

मोर

## अध्यापकों से निवेदन—

(१) सबसे पहिले लड़के को बोर्ड पर लिख कर या पुस्तक में अक्षर दिखा कर बोध करावें।

(२) जब एक अक्षर अच्छी तरह समझ में आ-जावे और याद हो जावे, तब दूसरा अक्षर पढ़ावें।

(३) जब लड़के अक्षर अच्छी तरह पहिचान लें तो लिखना सिखावें।

(४) आरंभ से ही हिज्जे सिखाने की चेष्टा की जानी चाहिए। बारहखड़ी रटा कर नहीं, वरन् शब्दों की आकृतियों के साथ हिज्जे सिखाये जाने चाहिए।

(५) पाठ पढ़ाने के समय कठिन २ शब्दों के हिज्जे समझा कर काले तख्ते पर लिख देना चाहिये।

(६) प्रारंभिक कक्षा में जहां डिक्टेशन लिखना उचित नहीं समझा जाता, छोटे बालकों से पाठ की नकल कराना बड़ा उपयोगी होता है।

(७) छोटे बच्चों को कलम खुद बना कर देना चाहिए।

(८) आरंभ से ही बच्चों के उच्चारण की ओर पूरा ध्यान देना चाहिए।

पुस्तक मिलने का पता—

**श्री अगरचंद भैरोंदान सेठिया**

सेठिया जैन लाइब्रेरी

बीकानेर

सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ५७

* श्री वीतरागाय नमः *

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## दूसरा भाग

प्रकाशक—

**भैरोंदान जेठमल सेठिया.**

**बीकानेर**

वीर सं २४५३ द्वितीयावृत्ति न्योछावर =)

विक्रम सं १९८४ ३००० दो आना

# कुन्दनमल सेठिया

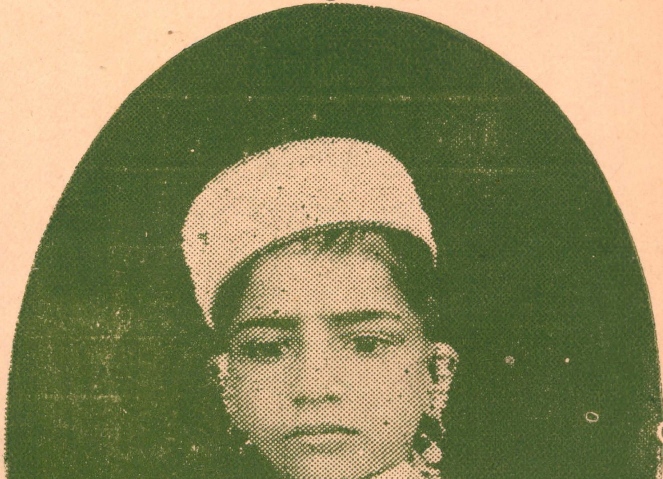

Kundanmull Sethia

# निवेदन

जैन विद्यार्थियों की प्रारम्भिक हिन्दी पढ़ाई के लिए उपयोगी पाठ्यपुस्तकों का अभाव-सा देखकर हमने हिन्दी-बालशिक्षा नामक एक सीरीज़ निकालने का निश्चय किया था। निश्चय के अनुसार हिन्दी बालशिक्षा के पाँच भाग तैयार हो चुके हैं। इधर पचवें भाग के तैयार होते न होते ही प्रथम भाग और दूसरा भाग लगभग एक साल में ही समाप्त हो चुके अतः उनकी दूसरी आवृत्ति करना आवश्यक होगया। प्रथम भाग की दूसरी आवृत्ति में बालकों के मनोरंजन के लिए चित्रों की संख्या बढ़ा दीगई है।

दूसरे भाग में अब की बार बहुत-सा परिवर्तन हो गया है। जब हमने देखा कि समाज ने इन भागों को प्रेम के साथ अपनाया है, तो हमारा जी और भी उपयोगी बनाने के लिए लालायित हुआ। तदनुसार अब की बार संयुक्त अक्षर खूब विस्तार के साथ लिखे गये और कई नये पाठ और कविताएँ भी मिला दी गईं। जिनके पास पहिली आवृत्ति की पुस्तकें बची होंगी, वे दूसरी आवृत्ति की पुस्तकें मँगाकर साथ२ विद्यार्थियों को पढ़ाना चाहेंगे तो उन्हें थोड़ीसी हानि होगी, पर उनसे हमारा निवेदन है कि बालकों के अधिक लाभ के सामने नगण्य हानि का खयाल न करें।

एक निवेदन विद्वानों से भी करना है। वह यह कि वे पुस्तक के विषय में उचित सूचानाएँ करें, जिससे फिर समुचित सुधार किया जा सके।

बीकानेर
२८ नवम्बर १९२७

निवेदक—
भैरोंदान जेठमल सेठिया।

# विषयानुक्रम ।


| पाठ | विषय | पृ॰ |
|---|---|---|
| १ | प्रार्थना | १ |
| २ | मिले हुए अक्षर | २ |
| ३ | संयुक्त अक्षरों के विशेष उदाहरण | ४ |
| ४ | बारह महीने | १३ |
| ५ | समझदार चूही | १५ |
| ६ | सवेरा-(पं॰ अयोध्यासिंह-) | १७ |
| ७ | हँसना | १८ |
| ८ | संगति का फल | १९ |
| ९ | धर्म | २१ |
| १० | झूठी बड़ाई | २२ |
| ११ | पढ़ना | २४ |
| १२ | परोपकर | २५ |
| १३ | सचाई का फल | २७ |
| १४ | दया | २९ |
| १५ | राजा जिनशत्रु | ३१ |
| १६ | कमीन-(बाल कवितावली) | ३३ |
| १७ | क्षमा | ३४ |
| १८ | समय | ३५ |
| १९ | बेईमानी का धन | ३७ |
| २० | कर्त्तव्य | ३९ |

| | | |
|---|---|---|
| २१ | उत्तम उपदेश | ४२ |
| २२ | अविनीत बालक | ४३ |
| २३ | उपदेशी दोहे | ४५ |
| २४ | बन्दर की चतुराई | ४६ |
| २५ | अविचार से हानि | ४८ |
| २६ | उपदेशी दोहे | ५० |
| २७ | गिनती | ५२ |
| २८ | सदा-- (बाल कवितावली) | ५३ |
| २९ | पहाड़ा | ५४ |
| ३० | कठिन शब्दों के अर्थ | ५६ |

ॐ

# हिन्दी बाल शिक्षा

## दूसरा भाग

पाठ १ ला.

## प्रार्थना

महावीर भगवान् हमारे
बहुत जीव तुमने हैं तारे ।
हाथ जोड़कर शीश झुकाते
सब मिलकर तेरे गुण गाते ॥

(२)

सुमति दीजिये भगवन्! हमको
जिससे पहिचानें हम तुमको ।
ठीक ठीक मारग बतलाओ
हे जिन ! हमको वीर बनाओ ॥

(३)

हम तेरे पैरों पड़ते हैं
आपस में न कभी लड़ते हैं
तुम रखवाले एक हमारे
महावीर भगवान् हमारे ॥

(४)

तुम हो जग से जुदे, निराले
ठीक पंथ बतलाने वाले ।
भगवन्! मेरे दिल में आओ
मेरे मन को साफ बनाओ ॥

# पाठ २ रा

## मिले हुए अक्षर ।

अक्षर दो तरह के होते हैं । एक वे, जिनके आगे '।' ऐसी सीधी पाई बनी रहती है । दूसरे वे जिनके आगे पाई नहीं होती । जैसे—

पाई वाले—ख ग घ च ज ञ ण त थ ध न आदि ।

बिना पाई के— क छ झ ट ठ ड ढ द आदि ।

पाई वाले अक्षर जब किसी दूसरे अक्षर से मिलते हैं, तब उनकी केवल पाई मिट जाती है। जैसे—

ग् + व=ग्व ग्वाला | त्+ म= त्म आत्मा
त् × थ= त्थ पत्थर | न् × म=न्म सन्मति
च् + छ=च्छ अच्छा | च्+ च=च्च बच्चा
ज् + ज=ज्ज सज्जन | ण्+ड= ण्ड ठण्ड
प् + प= प्प कुप्पा | म्×भ=म्भ दम्भ

जब बिना पाई के अक्षर दूसरे अक्षरों से मिलते हैं, तब वे प्रायः जैसे के तैसे बने रहते हैं। जैसे-

क्× ख= क्ख मक्खन | ङ्+ ग= ङ्ग मङ्गल
ट्+ ट= ट्ट सट्टा, | द्+ ध= द्ध बुद्धि

बिना पाई के अक्षरों के साथ जब य मिलता है, तब उसकी सूरत य हो जाती है। जैसे—

छ्+ य= छ्य छ्यानवे | क्+ य= क्य क्या

र जब किसी अक्षर से मिलता है, तब कभी ऊपर चला जाता है, कभी नीचे। जब आगेके अक्षर से मिलता है, तब ऊपर और जब पीछे के अक्षर में मिलता है, तब नीचे हो जाता है। जैसे—

ऊपर | नीचे
र्+ म= र्म धर्म, कर्म | प्+ र= प्र प्रभु
र्+ थ=र्थ ,तीर्थ अर्थ | व्+ र= व्र व्रत

जब क् और ष मिलते हैं, तब क्ष होजाता है। जैसे—क्षत्रिय। जब त् और र मिलते हैं, तब त्र होजाता है। जैसे— त्रस। जब ज् और ञ मिलते हैं, तब ज्ञ होजाता है। जैसे— ज्ञान

# पाठ ३ रा

## संयुक्त अक्षरों के विशेष उदाहरण।

### क संयोग

क्+क=क्क मक्की, शक्कर। क्+ख=क्ख मक्खी, रक्खा।

क्+च=क्च वाक्चातुर्य, । क्+ट=क्ट एक्ट ।

क्+त=क्त मुक्त, शक्ति। क्+म=क्म हुक्म, रुक्मणी ।

क्+य=क्य वाक्य, क्या। क्+र क्र क्रूर, आक्रोश।

क्+ल=क्ल अक्ल, शुक्ल। क्+व=क्व क्वचित्, क्वाथ।

क्+श=क्श नक्शा। क्+स=क्स अक्सर, अक्स।

### ख संयोग

ख्+त=ख्त वख्त, तख्ता। ख्+म=ख्म जख्म, तुख्म ।

ख्+य=ख्य ख्याति, ख्याल। ख्+व=ख्व ख्वाहिश, ख्वार।

ख्+स=ख्स शख्स।

### ग संयोग।

ग्+ग=ग्ग सुग्गा, पग्गड़। ग्+घ=ग्घ घिग्घी, बग्घी।

ग्+ज=ग्ज मग्जी, मग्ज। ग्+ण=ग्ण रुग्ण ।

ग्+द=ग्द वाग्दान, दिग्दर्शन। ग्+ध=ग्ध दुग्ध, विदग्ध।
ग्+न=ग्न अग्नि, नग्न। ग्+भ=ग्भ दिग्भाग ।
ग्+म=ग्म वाग्मी, युग्म। ग्+य=ग्य ग्यारह, भाग्य।
ग्+र=ग्र उग्र, ग्राहक। ग्+ल=ग्ल ग्लास, ग्लानि।
ग्+व=ग्व ग्वाला, ग्वार।

## घ संयोग।

घ्+न=घ्न कृतघ्न, शत्रुघ्न। घ्+र=घ्र घ्राण, आघ्रात।

## ङ संयोग

ङ्+क=ङ्क अङ्क, शङ्का। ङ्+ख=ङ्ख शङ्ख, पङ्खा।
ङ्+ग=ङ्ग अङ्ग, अपङ्ग। ङ्+घ=ङ्घ जङ्घा, कङ्घा।
ङ्+म=ङ्म वाङ्मय।

## च संयोग

च्+क=च्क मुच्कुंद। च्+च=च्च बच्चा, सच्चा।
च्+छ=च्छ अच्छा, तुच्छ। च्+य=च्य वाच्य, च्युत।

## छ संयोग

छ्×य=छ्य छ्यासी, छ्यालीस। छ्×र=छ्र छ्र।
छ्×व=छ्व श्वासोछ्वास,।

## ज संयोग

ज्×ज=ज्ज मज्जा, कज्जल। ज्×झ=ज्झ झज्झर, मज्झमनिकाय

ज्+य=ज्य पूज्य, ज्यादा । ज्+र=ज्र वज्र, वज्रपात

ज्+व=ज्व ज्वर, ज्वाला ।

झ संयोग

झ्+य=झ्य बूझ्यो, जूझ्यो ।

ञ संयोग

ञ्+च=ञ्च पञ्च, सञ्चय । ञ्+छ=ञ्छ वाञ्छा, लाञ्छित ।

ञ्×ज=ञ्ज गञ्जा, पञ्जाब । ञ्+झ=ञ्झ सञ्झा ।

ट संयोग

ट्+क=ट्क षट्क । ट्+ट=ट्ट पट्टी, मिट्टी ।

ट्+ठ=ट्ठ भट्ठी, चिट्ठी । ट्+य=ट्य नाट्य, अकाट्य ।

ट्+र=ट्र ट्रंक, ट्रावनकोर । ट्+व = ट्व खट्वा, ट्विल ।

ठ संयोग

ठ्+य=ठ्य शाठ्य ।

ड संयोग

ड्×ग=ड्ग खड्ग, खड्गी । ड्×ड=ड्ड उजड्ड, अड्डा ।

ड्×ढ=ड्ढ बुड्ढा, गड्ढा । ड्×य=ड्य कुड्य, ड्योढ़ी ।

ड्×र=ड्र पुंड्र, ड्रामा । ड्×व=ड्व अनड्वान, नड्वल ।

ढ संयोग

ढ्×य=ढ्य धनाढ्य, बलाढ्य । ढ×र=ढ्र मेढ्र

ण संयोग

ण्×ट=ण्ट कण्टक, अण्टी । ण्×ठ=ण्ठ कण्ठ, डण्ठल ।

ण्×ड=ण्ड अण्डवण्ड, काण्ड। ण्×ढ=ण्ढ पण्ढ, मेण्ढक।
ण्×ण=ण्ण विषण्ण, ण्×य=ण्य पुण्य, नगण्य।
ण्×व=ण्व कण्व, अण्वादि।

## त संयोग

त्×क=त्क तत्काल, सत्कार। त्×ख=त्ख उत्खात।
त्+त=त्त कुत्ता, सत्ता। त्+थ=त्थ कत्था, पत्थर।
त्+न=त्न पत्नी, यत्न। त्+प=त्प तत्पश्चात्, तत्पर।
त्+फ=त्फ लुत्फ, तत्फल। त्+म=त्म आत्मा, भूतात्मक।
त्+य=त्य सत्य, अपत्य। त्+र=त्र त्रस, छित्र।
त्+ल=त्ल कत्ल। त्+स=त्स वत्स, कुत्सित।

## थ संयोग

थ्+य=थ्य पथ्य, मिथ्यादर्शन। थ+व=थ्व पृथ्वी।

## द संयोग

द्+ग=द्ग उद्गम, मुद्ग। द्+द=द्द हद्द, चद्दर।
द्+ध=द्ध उद्धत, पद्धति। द्+भ=द्भ अद्भुत, उद्भव।
द्+म=द्म सद्म, पद्मप्रभ। द्+य=द्य विद्या, द्युमणि।
द्+र=द्र द्राक्षा, दरिद्र। द्+व=द्व विद्वान, हरिद्वार।

## ध संयोग

ध्+न=ध्न वृध्न। ध्+य=ध्य अध्यवसाय, उपाध्याय।
ध्+र=ध्र ध्रुव गृध्र। ध्+व=ध्व अध्वा, विध्वंस।

## न संयोग

न्+त=न्त कल्पान्त, अन्त। न्+थ=न्थ पन्थ, कन्था।

न्+द=न्द अभिनन्दन, चन्दन। न्+ध=न्ध कन्धा, बन्धु।

न्+न=न्न गन्ना, पुन्नाग। न+म=न्म सन्मान, तन्मय।

न्+य=न्य अन्याय, कन्या। न्+र=न्र अग्नीश।

न्+व=न्व अन्वय, धन्वी। न्+श=न्श मन्शा, मुन्शी।

न्+स=न्स इन्सान, कुन्सी।

## प संयोग

प्+ट=प्ट लिप्टन। प्+त=प्त कप्तान, सुप्त।

प्×न=प्न स्वप्न,। प्+प=प्प गप्प, थप्पड़।

प्+फ=प्फ गप्फा,। प्+म=प्म पाप्मा।

प्+य=प्य प्याला, प्यास। प्+र=प्र प्राप्त, प्रयत्न।

प्+ल=प्ल विप्लव, प्लावित।

## फ संयोग

फ्+त=फ्त मुफ्त, हफ्ता।

## ब संयोग

ब्+ज=ब्ज कब्जा, सब्ज। ब्+द=ब्द शब्द, अब्द।

ब्+ध=ब्ध लुब्धक। ब्+ब=ब्ब बब्बर, झब्बा।

ब्+भ=ब्भ लब्भड़। ब्+य=ब्य ब्याज, ब्याह।

ब्+र=ब्र ब्राह्म, ब्राह्मण। ब्+ल=ब्ल तब्ला, ब्लोक।

## भ संयोग

भ्+य=भ्य अभ्यास, अलभ्य । भ्+र=भ्र भ्रमर, अभ्रक ।

भ्व=भ्व भ्वादि, विभ्वी ।

## म संयोग

म्+त=म्त इम्तहान । म्+द=म्द उम्दा, नम्दा ।

म्+न=म्न निम्न, सौम्नि । म्+प=म्प लम्पट, चम्पा ।

म्+फ=म्फ गुम्फित । म्+ब=म्ब बम्बई, अम्बा ।

म्+भ=म्भ रम्भा, दम्भ । म्+म=म्म अम्मा, हम्मीर ।

म्+य=म्य म्यान, रम्य । म्+र=म्र आम्र, नम्र ।

म्+ल=म्ल आम्ल, म्लेच्छ । म्+व=म्व सम्वत्, सम्वर ।

## य संयोग

य्+य=य्य शय्या, मैय्या ।

## र संयोग

र्+क=र्क अर्क, शर्करा । र्+ख=र्ख मूर्ख, चर्खा ।

र्+ग=र्ग मार्ग, सर्ग । र्+घ=र्घ अर्घ, दीर्घ ।

र्+च=र्च चर्चा, खर्च । र्+छ=र्छ बर्छा, तिर्छा ।

र्+ज=र्ज गर्जन, मार्जन । र्+झ=र्झ निर्झर ।

र्+ट=र्ट आर्ट, शर्ट । र्+ड=र्ड आर्डर ।

र्+ण=र्ण अर्णव, वर्ण । र्+त=र्त आर्त, धूर्त ।

र्+थ=र्थ अर्थ, निरर्थक । र्+द=र्द दर्द, सर्द ।

र्+ध=र्ध निर्धन, निर्धार र्+न=र्न दुर्नय, दुर्निवार।

र्+प=र्प सर्प, दर्प। र्+फ=र्फ सिर्फ, उर्फ।

र्+ब=र्ब निर्बल, खर्ब। र्+भ=र्भ निर्भय, निर्भर।

र्+म=र्म निर्मम, निर्मूल। र्×य=र्य आर्य, मर्यादा।

र्+र=र्र र्रर्र,बर्र। र्+ल=र्ल दुर्लभ।

र्×व=र्व पर्वत, पार्वती। र्+श=र्श दर्शन, स्पर्श।

र्+ष=र्ष वर्षा, शीर्षक। र्+स=र्स फर्स, कुर्सी।

र्+ह=र्ह अर्हन्त, मानार्ह

## ल संयोग

ल्+क=ल्क मुल्क, शुल्क। ल्+ग=ल्ग फाल्गुन।

ल्+झ=ल्झ उल्झन, अल्झेड़ा। ल्×त=ल्त गल्ती, मुल्तबी

ल्+थ=ल्थ उल्था, कुल्थी। ल्+द=ल्द बल्द, जल्दी।

ल्×प=ल्प अल्प, कल्पना। ल्×म=ल्म वाल्मीकि,गुल्म।

ल्+फ=ल्फ कुल्फी, सुल्फा। ल्+य=ल्य मूल्य, तुल्य।

ल्+ल=ल्ल बिल्ली, हल्ला। ल्×ब=ल्ब किल्बिष, खल्वाट

ल्+ह=ल्ह कुल्हाड़ी, कोल्हू।

## व संयोग

व्+य=व्य व्यय, व्यापार। व्+र=व्र व्रण।

व्+व=व्व नव्वाबी, नव्वाब।

## श संयोग

श्+क=श्क मुश्किल,लश्कर। श्+च=श्च निश्चय,पश्चिम।

श्+छ=श्छ निश्छल, निश्छेर। श्×ल=श्ल नश्लर, किश्ती।
श्+न=श्न प्रश्न, रोश्नाई। श्+म=श्म चश्मा, काश्मीरी
श्+य=श्य श्याम, कश्यप। श्+र=श्र श्रवण, श्रीमान्।

## ष संयोग

ष्+क=ष्क शुष्क, पुष्कर। ष्×ट=ष्ट इष्ट, कष्ट।
ष्×ठ=ष्ठ ओष्ठ, पृष्ठ। ष्+ण=ष्ण उष्ण, कृष्ण।
ष्×प=ष्प पुष्प, वाष्प। ष्+फ=ष्फ निष्फल।
ष्+म=ष्म ऊष्मा। ष्+य=ष्य मनुष्य, पुष्य।
ष्-व-ष्व विष्वक्।

## स संयोग

स्+क=स्क तस्कर, तिरस्कार। स्+ख=स्ख स्खलन।
स्+त=स्त विस्तार, विस्तृत। स्+थ=स्थ स्थान, स्थिति।
स्+न=स्न- स्नान, स्नेही। स्+प=स्प परस्पर, स्पर्द्धा।
स्+फ=स्फ स्फुरण, स्फीत। स्+म=स्म विस्मय, स्मर।
स्+य=स्य तपस्या, शस्य। स्+र=स्र सहस्र, अजस्र।
स्+ल=स्ल नस्ल तस्ला। स्+व=स्व स्वामी, तपस्वी।
स्-स-स्स हिस्सा, गुस्सा।

## ह संयोग

ह्+ण=ह्ण अपराह्ण। ह्+न=ह्न वह्नि, अह्नि।
ह्+म=ह्म ब्राह्मण, जिह्म। ह्+य=ह्य बाह्य, सह्य।

ह्-र-ह्र ह्री। ह्-ल-ह्ल आह्लाद, प्रह्लाद।

ह्-व-ह्व जिह्वा, आह्वान।

**अनेक वर्णों का संयोग।**

वाग्व्यापार, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, वर्द्धमान, सौधर्मेन्द्र, याज्ञवल्क्य, कर्मण्य, दौस्थ्य, राष्ट्रीय, कार्पण्य, इन्द्रिय, सान्त्वना, इक्ष्वाकु, मर्त्यलोक, सन्ध्या, सौन्दर्य, श्रेष्ठ, दाम्पत्य, बृहस्पति, माङ्गल्य, निश्शल्य, ऊर्ध्व, कर्तृत्व, व्यक्त, सौक्ष्म्य, स्वातन्त्र्य, परतन्त्र, अन्योन्याश्रय, पञ्चत्व, सात्त्विक, साम्प्रत, अर्हन्त, पच्चक्खाण, साङ्कर्य। चन्द्रार्द्ध, आस्ट्रिया, निर्वाणोत्सव, श्लाघ्य, प्रतिद्वन्द्विता, धार्ष्ट्य, संस्कृति, नैपुण्य, स्वच्छन्द, कृत्स्न, वात्स्यायन, सम्यक्त्व, बार्हस्पत्य, गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्याश्रम।

# पाठ ३ रा

सूर्य निकलने तक सोना हानिकारक है। महात्मा बुद्ध और प्रभु महावीर लगभग एक ही समय हुए थे। स्कूल में कितने अध्यापक और कितने विद्यार्थी हैं। महावीर के दूसरे नाम सन्मति और वर्द्धमान हैं। तीर्थङ्कर सच्चे धर्म का उपदेश देते हैं। वे कठिन तपस्या

करके सर्वज्ञ हो जाते हैं। सर्वज्ञ सब कुछ जानते हैं। जो एक बार मोक्ष चले जाते हैं, वे फिर कभी वापस नहीं लौटते। ईश्वर सुख दुःख नहीं देता। उसका इन झंझटों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हम अपने कर्मों का फल, स्वयं भोगते हैं। लड़को, कभी ईश्वर को विस्मरण मत करना। सुपार्श्वनाथ सातवें और चन्द्रप्रभ आठवें तीर्थङ्कर हैं। सन्ध्या का सौन्दर्य दर्शनीय होता है। भारतवर्ष की दरिद्रता दूर करो। अर्हन्त सच्चे देव हैं। श्रेष्ठ मनुष्य सन्माननीय होते हैं। विपन्न को सान्त्वना देना चाहिए। बच्चो! अध्यापक का आदर करो। ग्रन्थालय में ग्रन्थ हैं। परमात्मा की भक्ति से आत्मशुद्धि होती है।

---

## पाठ ४ था

### बारह महीने।

(१)

चैत माह अति आनँद दाई,
जन्मे महावीर हे भाई॥
फिर वैसाख की बारी आई,
अक्षय-तीज खूब मन भाई॥

(२)

तीजा जेठ महीना प्यारे,
परेशान गरमी के मारे।
अषाढ़ मास चौथे आजारे!
खुश हो जावें कृषक विचारे॥

(३)

फिर श्रावण की हुई बहार,
आया राखी का त्यौहार।
भादों में पर्यूषण यार!,
पानी बरसे मूसलधार॥

(४)

हैं आसौज सातवें आए,
साथ दशहरा हैं ये लाए।
अष्टम कातिक दीप जलाए,
महावीर निर्वाण सिधाए॥

(५)

नववें मगसिर का अवतार,
ब्याह शादियों की भरमार।
दसवें पौष शीत की मार,
'सी-सी' करवाती है यार!॥

(६)

ओहो लाल ! माघ आया है,
  यह बसन्त ऋतु को लाया है।
फाल्गुन मेरे मन भाया है,
  होली साथ साथ लाया है॥

## सात वार

पहले रविवार है आता, दूजा सोमवार कहलाता।
बच्चो ! तीजा मंगलवार, चौथा कहलाता बुधवार॥
पंचम गुरुवार तुम जानो, शुक्रवार छट्ठा पहिचानो।
सप्तम वार शनिश्चर नाम, आना जाना इनका काम॥

# पाठ ५ वाँ

## समझदार चूही।

किसी महाजन के घर में एक कोठार था। उस में शक्कर बादाम पिस्ता वगैरह अच्छी अच्छी चीजें रक्खी रहती थीं। इसी कोठार में एक चूही रहती थी। वह खूब माल खाती और आनन्द से रहती थी। घर के आदमी जब भोजन करते, तब वह बाहर निकलती और ढूँढ़ढूँढ़ कर दानें खाया करती थी। जब कभी बिल्ली

की आवाज़ सुनती तो कोठार ही में छिप जाती थी।

एक दिन वह चूही अपनी माँ के पास खेल रही थी। खेलते खेलते उससे बोली—माँ, देख, इस घर के लोग बड़े भले मानस हैं। मेरे लिए कोठार में एक छोटा सा अच्छा मकान बनवा दिया है। उसी में भोजन तैयार है। उसमें बिल्ली नहीं घुस सकती। मेरे पीछे बिल्ली भागती है, उससे बचाने के लिए यह मकान बनवाया होगा। माँ, चलो चलें, हम दोनों ही उसमें रहेंगे।

यह सुनकर चूही की माँ मुसकराकर बोली—तू भोली है। अच्छा हुआ, बिना कहे इस घर में नहीं घुसी। यह घर अपने नाश का घर है। लोग इसे 'चूहादानी' कहते हैं। इसमें एक बार घुसे, कि बस फिर नहीं निकल सकते। चूही डर गई। उसने मनमें सोचा—माता पिता से बिना पूछे कोई काम न करना चाहिये।

बालको! बताओ, अगर उसने अपनी माँ से सारा हाल न कहा होता तो उसका क्या हाल होता? तुम अपने माता पिता से पूछे बिना कोई काम मत करना।

# पाठ ६ ठा

## सबेरा।

उठो लाल! आँखों को खोलो।
पानी लाई हूं मुख धो लो ॥
बीती रात कमल सब फूले।
उनके ऊपर भौंरे भूले ॥
चिड़ियाँ चहक उठीं पेड़ों पर।
बहने लगी हवा अति सुन्दर॥
नभ में न्यारी लाली छाई।
धरती ने प्यारी छबि पाई ॥१॥
ऐसा सुन्दर समय न खोओ।
मेरे प्यारे अब मत सोओ॥
भोर हुआ सूरज उग आया।
जल में पड़ी सुनहली छाया॥
मिटा अँधेरा हुआ उजाला।
किरणों ने जीवन सा डाला॥

जाग, जगमगा उठा जगत सब।
मेरे लाल जाग तू भी अब ॥२॥
जागो प्यारे! हुआ सबेरा।
मैं देखूँ हँसता मुख तेरा॥
आखें खोल कमल विकसाओ।
होठ हिलाकर फूल खिलाओ॥
ठुमुक ठुमुक आँगन में डोलो।
किलक बोलियाँ मीठी बोलो॥
मुझे लुभालो जी उमगा कर।
रुनुक झुनुक पैजनी बजा कर॥३॥

# पाठ ७ वाँ

## हँसना।

भला, हँसना किसे अच्छा नहीं लगता। हर एक मनुष्य हँसमुख चेहरा देखना पसन्द करता है। चढ़ा हुआ मुँह कोई नहीं देखना चाहता। जो लोग सदा तन्दुरुस्त रहते हैं, वे ही हँसते हैं। बीमार और चिन्ता करने वालों को हँसी नसीब नहीं होती। उचित

समय पर हँसने से बहुत फ़ायदे होते हैं। एक विद्वान् कहता है—हँसने से खून गर्म रहता है, नाड़ी बराबर चलती है, रीढ़ हड्डी का कांठा मजबूत होता है और हिम्मत बढ़ती है। एक दूसरे विद्वान् ने यहां तक कहा है कि जिन्दगी के लिये खुराक की अपेक्षा हँसी ज्यादा काम की है।

बालकों को सदा हँसमुख और प्रसन्न रहना चाहिये। लेकिन यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिए कि मौके पर हँसना जितना अच्छा है; उससे ज्यादा बुरा बेमौके हँसना है। असमय में हँसने से बहुत बुरा फल होता है। यहां तक कि लड़ाई झगड़ा और सिरफुटौवल की नौबत आ पहुँचती है।

## पाठ ८ वाँ

### संगति का फल।

किसी जगह एक तोता रहता था। उसकी स्त्री के दो बच्चे हुए। जब तोता और तोती कहीं चुगने चले गये, तब एक व्याध वहां आया। उसने उन बच्चों को लेकर बेच दिया। एक किसी भील को बेचा और दूसरा

किसी ऋषि को। एक दिन कोई एक राजा जंगल में गया। वह घूमता घूमता उसी भील के झोंपड़े के पास जा पहुँचा, जहां वह तोता रहता था। राजा को देखकर तोता बोला— हे भील महाराज! कोई मनुष्य इस रास्ते से जा रहा है। इसे लूट खसोट डालिये। राजा सुनकर चला गया और ऋषि की कुटिया के पास पहुँचा। वहां वह दूसरा तोता रहता था। उस तोते ने राजा को देखकर कहा— हे ऋषि! वह राजा आ रहा है। उसका आदर-सत्कार कीजिये। ऋषि ने राजा का आदर-सत्कार किया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ। उसने तोते को हथेली पर रखकर कहा—हे शुक! मैं ने तुम्हारे और भील के तोते के बचन सुने हैं। तुम दोनों में इतना भेद कैसे होगया? तोता बोला—महाराज! यह सब दोष-गुण संगति का है। जो जैसी संगति करता है, वह वैसा ही हो जाता है।

बालको! तुम बुरे लड़कों का साथ कभी न करो। देखो दोनों तोते सगे भाई थे। लेकिन संगति के दोष से एक बुरा और दूसरा भला हो गया। कहा है—

संगति कीजे साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगति नीचकी, आठौं पहर उपाधि॥

# पाठ ९ वाँ

## धर्म।

भरतक्षेत्र में शुक्ति नामकी एक नगरी थी। उस नगरी के राजा का नाम शशि था। शशि के छोटे भाई का नाम सूर था। एक दिन सूर ने वन में मुनि को देखा। देखते ही उसने घोड़े से उतर कर वन्दना की और धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा धारण कर ली। सूर ने अपने भाई को बहुत समझाया बुझाया, पर उसने एक न मानी। वह बोला— " भाई! जो सुख हमें मिला है, उसे छोड़ देना अक्लमन्दी नहीं है "। यह कोरा उत्तर सुनकर मुनिराज चुप हो रहे। जब उन के स्वर्गवास का समय आया, तब आहार आदि का त्याग कर दिया। तप के प्रभाव से मुनि महाराज को स्वर्ग मिला।

स्वर्ग में जाकर उन्होंने जाना कि मेरा बड़ा भाई विषयों में मन लगा कर नरक गया है। यह जान कर वह अपने भाई से भेट करने चला। जब शशि ने अपने भाई को आया देखा तो वह गिड़गिड़ाकर बोला— " हे भाई! मैं बहुत दुखी हूँ। मेरा शरीर

अभी वहां ही पड़ा है। आप जाइये, और उससे धर्म कराइये। ऐसा करने से मैं यहां से निकलते ही सुखी हो सकूंगा"। यह सुन सूर ने कहा—"अरे भाई! शरीर धर्म नहीं कर सकता। यदि तू ने पहले धर्म किया होता तो ये दुख न भोगने पड़ते। अब समता से कर्मों का फल भोग"। इतना कह कर वह सूरदेव चला गया। क्योंकि वह और कुछ भी नहीं कर सकता था।

हे बालको! मनुष्य होकर धर्म का पालन ज़रूर करना चाहिये। जो मौज ही मौज में सारा जीवन खो देते हैं, उनकी दशा शशि के समान होती है। कहा है-

धरम करत संसार सुख, धरम करत निरवान।
धरम पंथ लागे विना, नर तिर्यंच समान ॥ १ ॥

# पाठ १० वाँ
## झूठी बड़ाई।

एक लोमड़ी बड़ी चालाक थी। उसे कई दिनों से भोजन नहीं मिला था। जब वह भोजन की तलाश में जा रही थी, तब एक पेड़ पर बैठा हुआ कौवा उसे

दिखाई दिया। उसकी चोंच में आधी रोटी थी। रोटी देखकर लोमड़ी ने सोचा — ऐसा कोई उपाय करना चाहिए, जिससे यह रोटी मुझे मिल जावे। यह सोचकर वह कौए के निकट गई, और बोली — महाराज! जयजिनेन्द्र। आप कुशल तो हैं? कल मैं ने आपका गाना सुना था। वह बहुत ही मनोहर था। आप अच्छे गवैया हैं। कृपा करके एक गीत आज भी सुनाइए।

कौवा अपनी प्रशंसा सुनकर फूला न समाया। रोटी का ख्याल छोड़ चटपट गाने लगा। कौवा गाना क्या जाने, काँव-काँव-काँव करने लगा। ज्यों ही उसने अपना मुँह खोला, त्यों ही रोटी नीचे आ गिरी। लोमड़ी ने उसे उठा लिया और बोली— महाराज! धन्य हो। आपने गाना भी सुनाया और खाना भी दिया। कौवा लोमड़ी की तरफ देखने लगा, लोमड़ी रोटी लेकर चलती बनी।

बालको! अपनी झूठी- सांची प्रशंसा सुनकर कुप्पा न हो जाया करो। बहुत से ठग ऐसा करते हैं। अगर कौवा ने इस शिक्षा का पालन किया होता, तो उसकी रोटी न जाती।

सुनकर झूठ बड़ाई जे, फूले नाहिं समायँ।
ते नर निरे गँवार हैं, अन्त समय पछतायँ॥

# पाठ ११ वाँ

## पढ़ना।

बालको! लिखना जितना कठिन है, उतना ही कठिन शुद्ध पढ़ना भी है। इसलिए इस पाठ में पढ़ने के कुछ नियम बताए जाते हैं। पढ़ते समय इन बातों का ख्याल रखना चाहिए—

पढ़ने में न बहुत जल्दी करनी चाहिए, और न बहुत देरी ही लगानी चाहिए। इसी प्रकार न बहुत ज़ोर से पढ़ना चाहिये और न बहुत धीरे ही। पढ़ते समय सब अक्षरों को खूब साफ़ बोलना चाहिये। कोई कोई लड़के पढ़ते समय गाने से लगते हैं। कोई कोई एक ही शब्द को दो दो तीन तीन बार बोलते हैं। यह सब दोष हैं। इनसे बचना चाहिए। पढ़ना भी एक तरह का बोलना है। इसलिए जैसे बोलते हैं, वैसे ही पढ़ना भी चाहिए। ह्रस्व दीर्घ अनुस्वार और अनुनासिक का ठीक ठीक उच्चारण करना चाहिए।

पढ़ते समय जहां (,) ऐसा चिह्न मिले, वहां थोड़ी देर ठहरना चाहिए। ऐसे चिह्न को अल्पविराम

या कॉमा कहते हैं। जहां (;) ऐसा चिह्न मिले, वहां पहले से कुछ अधिक ठहरना चाहिए इस चिह्न को सेमीकोलन कहते हैं। जहां (.) या (।) ऐसा चिह्न हो वहां और भी अधिक ठहरना चाहिए। इस चिह्न को पूर्णविराम कहते हैं। जहां कुछ पूछना हो, वहां (?) ऐसा चिह्न आता है। इसे प्रश्नविराम कहते हैं। और जहां कोई आश्चर्य की बात होती है या किसी को बुलाया जाता है, वहां (!) यह चिह्न रक्खा जाता है। इस चिह्न का नाम आश्चर्यविराम या संबोधनविराम है। जिस शब्द के आगे सम्बोधनविराम हो, उस पर कुछ ज़ोर देना चाहिये।

## पाठ १२ वाँ

### परोपकार।

लक्ष्मीदास नामक एक सेठ बड़े ही दयालु और परोपकारी थे। वह दुखी मनुष्यों और जानवरों की सेवा जी जान से करते थे। एक दिन सेठजी किसी

नदी में स्नान कर रहे थे। उस समय उन्हें एक बिच्छू पानी में उतराता हुआ दिखाई दिया। मछलियाँ उसे हैरान कर रही थीं। सेठजी को दया आ गई। उन्होंने अपने हाथ में बिच्छू को उठा लिया और किनारे की तरफ़ ले जाने लगे। बिच्छू सचेत हो गया। सचेत होते ही उसने सेठजी के हाथ में डंक मार दिया। बिच्छू फिर पानी में गिर गया। लक्ष्मीदास के हाथ में बहुत ही दुख हो रहा था। परन्तु उनसे फिर भी न रहा गया। उन्होंने बिच्छू को दूसरे हाथ में ले लिया। भला, बिच्छू कब छोड़ता था। उसने फिर डंक मारा और पानी में गिर गया। लक्ष्मीदास उदास न हुए, उन्होंने तीसरी बार हाथ में लेकर किनारे की तरफ़ फेंक दिया और उसके प्राण बचा दिये।

कुछ लोग किनारे पर बैठे बैठे यह तमाशा देख रहे थे। वे बोले—"सेठजी! तुम बड़े भोले आदमी हो। जब बिच्छू बार बार काटता है, तब क्यों उसे बचाते हो!" सेठजी बोले—"अरे भाई! बिच्छू का स्वभाव काटने का है, और मेरा धर्म बचाने का है। अगर वह अपनी आदत नहीं छोड़ता तो मैं अपना धर्म कैसे छोड़ दूं? इसके काटने से मैं मर

नहीं सकता लेकिन मैं इसे छोड़ दूं, तो यह जरूर मर जायगा।"

हे बालको! तुम जिसके साथ भलाई करते हो, वह अगर तुम्हारे साथ बुराई करे, तो भी तुम उसकी भलाई करो। दुष्ट यदि अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता तो तुम भी अपनी भलमनसई न छोड़ो।

मन से परहित सोचना, तन से सेवा सार।
धन से करना दान यह, प्यारे! परउपकार।

## पाठ १३ वाँ

### सचाई का फल।

किसी समय एक लकड़हारा, नदी के किनारे के वृक्ष पर चढ़कर लकड़ियाँ काट रहा था। भाग्य से उसकी कुल्हाड़ी हाथ से छूटकर पानी में जा गिरी। नदी में बहुत गहरा पानी था। लकड़हारे की हिम्मत उसमें घुसने की न पड़ी। लाचार हो वह किनारे पर बैठ, गिड़गिड़ा कर रोने लगा। दैवयोग से वहां एक देवता रहता था। लकड़हारे को रोते

देख, उसे दया आगई। मनुष्य का रूप धारण करके, उसने नदी में डुबकी लगाई और एक सोने की कुल्हाड़ी निकाली। निकालकर उसकी ईमानदारी की जाँच करने के लिये बोला क्या यही तेरी कुल्हाड़ी है ? लकड़हारेने उत्तर दिया-"नहीं, यह मेरी कुल्हाड़ी नहीं है"। यह सुन देव ने दूसरी डुबकी लगाई। अब की बार एक चांदी की कुल्हाड़ी निकाल कर पूछा-"क्या यही तेरी कुल्हाड़ी है"? लकड़हारे ने फिर जबाब दिया "नहीं यह भी मेरी नहीं है"। देव ने तीसरी डुबकी लगाई और लकड़हारे की असली लोहे की कुल्हाड़ी निकाल कर पूछा-"क्या यह तेरी है"? लकड़हारा बोला "जी हां, यही मेरी कुल्हाड़ी है।" देवता ने उसकी ईमानदारी से खुश होकर तीनों कुल्हाड़ियाँ उसे दे दीं।

प्यारे बालको! अगर वह लकड़हारा झूठ बोल कर सोना या चांदी की कुल्हाड़ी को अपनी बताता तो उसे एक भी न मिलती। और उल्टा सजा का भागी होता। सच है- सचाई का फल मीठा होता है। कहा भी है—

झूठ कबहुँ नहिं बोलिए, झूठ पाप का मूल।
झूठे की कोउ जगत में, करे प्रतीति न भूल॥ १॥

# पाठ १४ वाँ

## दया।

महाविदेह क्षेत्र में अक्षयभूमि नाम का एक नगर था। वहां मेघरथ नामक राजा राज्य करता था। वह बड़ा ही दयालु था। एक दिन इन्द्र उसकी दयालुता की बड़ाई कर रहा था। बड़ाई सुनकर दो देव उसकी परीक्षा करने चले। एक कबूतर बना दूसरा पारधी। कबूतर उड़ते उड़ते राजा के महल में आया। वह थर थर कांप रहा था। राजा ने उसकी पीठ पर हाथ फेर कर कहा—"बच्चे! डर मत। अब तुझे कोई भी नहीं मार सकता।"

इतने में पारधी भी आ पहुँचा। वह आते ही राजा से बोला—"महाराज! यह कबूतर मेरा है। इसे बड़ी कठिनाई से पकड़ पाया है। यहाँ उड़कर भाग आया है। मेरा बाज़ बहुत भूखा है। जल्दी लौटा दीजिये"। राजा ने कहा—"कबूतर मेरी शरण में आया है। मैं ने कह दिया है, उसे कोई नहीं मार सकता। मैं इसे तुम्हें न दूंगा। हाँ, इसके बदले में और जो कुछ तुम चाहो, सो दे दिया जाय"। पारधी ने कहा— "अगर आप इसे नहीं देते, तो इस कबूतर

की तोल का अपने शरीर का मांस निकाल कर दे दीजिये" । राजा ने उसका कहा मान लिया। उसने सोचा-आखिर शरीर कभी न कभी जुदा हो ही जायगा। यह हमेशा साथ नहीं रहेगा । नाश होने वाली चीज़ से ऐसा धर्म कमाना चाहिए जिसका कभी नाश नहीं होता। बस, फिर क्या था, उसने छुरी मंगा कर तराजू पर अपना मांस काट २ कर चढ़ाया। पर दैवयोग से तराजू का पलड़ा नीचा न हुआ, तब राजा आश्चर्य में आकर खुद पलड़े में बैठ गया । और बोला— "मैं भले ही मर जाऊं पर कबूतर को न मरने दूंगा" । उसकी ऐसी अटल धीरज देख दोनों देवता बहुत प्रसन्न हुए और राजा के चरणों में पड़ कर माफ़ी मांगने लगे । राजा इस महान् पुण्य के कारण दूसरे ही भव में शान्तिनाथ नामक तीर्थंकर हुए।

बालको ! हमें चाहिए कि अपनी जान देकर भी दूसरों का भला करें।

दया धर्म को मूल है, दया धर्म की खान ।
तातें सब सम्पति मिलें, अरु पावै निरवान।

# पाठ १५ वाँ

## राजा जितशत्रु।

भरतक्षेत्र में वसंतपुर नाम का एक शहर था। उस शहर का राजा जितशत्रु था। उसके मंत्री का नाम मतिसागर था। एक दिन राजा अपनी राजसभा में बैठा था। दरबान ने आकर कहा—महाराज! एक घोड़ों का व्यापारी आया है। उसके पास नाना देशों के नाना तरह के घोड़े मौजूद हैं। राजा ने व्यापारी को बुलाया और दो घोड़े खरीदे। शाम को राजा अपने मंत्री को साथ लेकर, घोड़े पर सवार होकर सैर करने चले। घोड़े अशिक्षित थे, इसलिए वे ऐसे भागे कि राजा और मंत्री दोनों ही निर्जन वन में जा पहुँचे। एकदम बहुत दौड़ने से घोड़े ठहरते ही मर गये। राजा और मंत्री भूखे थे। जंगल में घूमते घूमते उन्हें एक जलाशय मिल गया। वहां स्नान आदि करके जल पिया और कितने ही दिन भूखे पड़े रहे।

जब राजा शहर में लौटकर वापस नहीं आये, तो शहर में खलबली मच गई। कुछ सेना राजा को

खोजने के लिए रवाना हुई। सेना, खोजते खोजते आखिर वहीं जा पहुँची, जहाँ राजा भूखे पड़े थे। सेना ने महाराज को देखकर नमस्कार किया। राजा भूखा था। उसने हलवाई से अनेक पकवान तैयार करने को कहा। जब पकवान तैयार हुए, तो राजा उन पर ऐसे टूटा जैसे कबूतर पर बाज टूटता है। सब लोगों ने समझाया, पर उसने एक न मानी। वह तृष्णा के मारे खूब खा गया। फल यह हुआ कि राजा को अजीर्ण रोग हो गया और उसी से मरण भी हो गया। मंत्री बुद्धिमान् था। उसने इतना ज्यादा न खाया था इसलिये वह नीरोग रहा।

हे बालको! इस कहानी से हमें यह सीख लेनी चाहिए कि तृष्णा का कभी अन्त नहीं होता। वह समुद्र की तरह अथाह होती है। तृष्णावान् कभी सुखी नहीं हो सकता। इस कहानी से यह भी मालूम होता है कि अनजान जानवर का विश्वास न करना चाहिए। और हवस के मारे इतना ज्यादा न खाना चाहिए कि वह पच न सके।

तृष्णा मिटे सँतोषतें, सेयें अति बढ़ जाय।
तृन डारैं आग न बुझै, तृना रहित बुझ जाय॥

# पाठ १६ वाँ

## कभी न ।

कभी न रो रो आँख फुलाना ।
कभी न मन में क्रोध बढ़ाना ॥
कभी न दिल से दया भुलाना ।
कभी न सच्ची बात छिपाना ॥१॥

कभी न बातों में चिढ़ जाना ।
कभी न दुष्टों से भय खाना ॥
कभी न खाकर मित्र! बहाना ।
कभी न बासी खाना खाना ॥२॥

कभी न अति खा पेट फुलाना ।
कभी न खाते ही सो जाना ॥
कभी न पढ़ने से घबड़ाना ।
कभी न तन में आलस लाना ॥३॥

कभी न करना जरा बहाना ।
कभी न बढ़ने पर इतराना ॥
कभी न मन में लालच लाना ।
कभी न इतनी बात भुलाना ॥४॥

# पाठ १७वाँ

## क्षमा ।

सागरदत्त के भाई को उसके वैरी ने मार डाला। उसकी माता ने सागरदत्त से कहा— बेटा! जिसने तेरे भाई को मारा है, उसे तू भी मार डाल। तुझ में शक्ति है फिर क्यों चुपचाप बैठा है?

अपनी माता के वचन सुन कर सागरदत्त ने अपनी शक्ति से वैरी को पकड़ लिया। वह उसे अपनी माता के पास लाया और बोला— रे हत्यारे! यह तलवार तुझे कहां लगाऊँ?

सागरदत्त की तलवार से वैरी डर गया। वह भयभीत हो कर बोला—शरण में आया हुआ मनुष्य जिस तरह मारा जाता हो, उसी तरह मुझे मार डालिये। सागरदत्त के दिल में दया आगई। वह अपनी मां की ओर देखने लगा। माता भी इतनी निठुर न थी। उसके भी क्रोध को करुणा ने जीत लिया। इसलिये वह अपने पुत्र से कहने लगी—हे पुत्र! जो शरण में आया हो, उसे मारना न चाहिये।

सागरदत्त बोला—मेरा हृदय क्रोध से भर गया है, मैं इसे कैसे सफल करूं? माता ने कहा—बेटा! सब जगह क्रोध को सफल न करना चाहिये। माता का यह उपदेश सुनते ही सागरदत्त ने बन्दी को छोड़ दिया। वह अपराधी भी उन दोनों के पैरों में गिर पड़ा, और बार २ क्षमा मांगकर अपने घर चला गया।

प्यारे बालको! हमें चाहिये कि क्रोध को सदा दबाते रहें। क्रोध से बड़े २ अनर्थ होते देखे जाते हैं। क्रोधी को सुध बुध नहीं रहती। परिणामों को शान्त रखने से सुख होता है। कहा भी है—

निश्चय करि जानें सबै, क्रोध पाप को मूल।
है जाके आधीन नर, सहे महा दुख शूल।

# पाठ १८ वाँ

## समय।

किसी जगह एक तालाब था। वह खूब लम्बा चौड़ा था। उसमें बहुत से जलचर जानवर रहते थे।

उस तालाब के पानी के ऊपर काई ऐसी जम गई थी, जैसे किसी ने चमड़े से मढ़ दिया हो। तालाब में एक कछुआ रहता था। उसका बड़ा परिवार था। लड़के थे और लड़कों के लड़के भी। एक दिन वह अपनी गर्दन को ऊँचा करके चक्कर लगा रहा था। इतने ही में हवा चलने के कारण काई कुछ सिकुड़ गई और आकाश में चन्द्रमा और तारे दिखाई दिये। वे उसे बड़े अच्छे लगे। उसने सोचा—यह तमाशा अपने बाल बच्चों को भी दिखा दूं। यह सोचकर वह अपने कुटुम्ब वालों के पास गया और उन्हें बुला लाया। किन्तु इतने ही में काई फिर छा गई थी। कछुए ने बहुत यत्न किया कि वह तमाशा फिर एक बार दिखाई देवे, लेकिन फिर नज़र न आया। सच है—गया समय फिर हाथ नहीं आता।

बालको! जो समय चला जाता है वह फिर कभी वापस नहीं आता इसलिए अपना एक भी क्षण व्यर्थ न जाने देना चाहिए।

# पाठ १९ वाँ

## बेईमानी का धन।

किसी नगर में बहुतसे अंधे रहते थे। वे कभी २ इकट्ठे बैठते और गप्पें मारा करते थे। उसी नगर में सोने चाँदीका व्यापार करने वाला एक सेठ रहता था। एक दिन एक अन्धा उस सेठ की दुकान पर आया। वह सेठ से बोला—एक मोहर छूने के लिए दीजिये। मैं ने कभी मोहर नहीं छुई। सेठजी सरल स्वभाव के आदमी थे। अन्धों पर दया भी आ जाती है। सेठ ने एक मोहर उसके हाथ में दे दी। अन्धा चालाक था। मोहर अपने कपड़े में बांध ली, और उसे छिपा ली। जब थोड़ी देर हो गई, तब सेठ ने अपनी मोहर माँगी। अंधा बोला—"सेठजी! मैंने अपनी मोहर तुम्हें देखने के लिए दी थी। अब मैं ने उसे ले ली है। मैं आप को यह मोहर नहीं दूंगा, क्योंकि आजीविका के लिए मेरे पास सिर्फ यही पूंजी है। आप इसे गांठना चाहते हैं?। इतना कहकर अन्धा जोर २ से चिल्लाने लगा कि "यह सेठ मेरी मोहर लिए लेता है"। अन्धे की आवाज़ सुनकर कुछ लोग इकट्ठे हो गये और सेठ की निन्दा करने लगे। अन्धा वहां से चल दिया।

सेठजी बड़े उदास हुए। वह एक अनुभवी आदमी के पास गए और उससे सलाह पूछने लगे।

उस अनुभवी आदमीने कहा–रातके समय इस गाँव के सब अन्धे एक जगह इकट्ठे होते हैं। वे आपस में अपना कमाया हुआ धन एक दूसरे को दिखलाया करते हैं। तुम वहां जाना और जब वह अन्धा दूसरों को मोहर दिखावे, तब उसे उठा लेना। अन्धा समझेगा, दूसरे अन्धे ने मोहर उठाई है। तुम अपने घर चल देना। सेठ को यह सलाह पसन्द आई। उसने ऐसा ही किया।

किसी जगह सब अन्धे इकट्ठे होकर अपनी २ कमाई की बात कह रहे थे। मोहरवाला अन्धा अपनी चतुराई की बात कह कर, दूसरे अन्धे को मोहर दिखाने लगा। सेठ जी वहां ही खड़े थे। ज्यों ही अन्धे ने हाथ पसारा, त्यों ही सेठजी ने मोहर उठा ली। अन्धे ने समझा दूसरे अन्धे ने मोहर उठाई है। जब दूसरा अन्धा बोला– अपनी मोहर क्यों नहीं दिखाते हो? तब पहिले अन्धे को बड़ा गुस्सा आया वह बोला– अभी तुमने मेरे हाथ से मोहर उठा ली है, और कहते हो क्यों नहीं दिखाते? बस फिर क्या था,

दोनों में लड़ाई होने लगी। सेठजी मोहर लेकर नौ दो ग्यारह हुए।

बालको! बेईमानी से पैदा किया हुआ पैसा ज्यादा दिन नहीं ठहरता। वह तो चला ही जाता है, साथ में गांठ का भी ले जाता है।

धन कमाय अन्याय का, दस हि बरस ठहराय।
रहे कदा षोड़स बरस, तो समूल नसि जाय॥ १॥

# पाठ २० वाँ

## कर्त्तव्य।

लड़को! तुम पहले पढ़ चुके हो कि तीर्थंकर कठिन तपस्या करके सर्वज्ञ हो जाते हैं। जब वे सर्वज्ञ अर्थात् सब पदार्थों को एक साथ जानने वाले हो जाते हैं तब वे उपदेश देते हैं। आज हम उस में से कुछ बातें बताते हैं। जो गृहस्थों का धर्म होता है वह अणुव्रत कहलाता है। अणुव्रत पांच होते हैं—

१ अहिंसाणुव्रत (स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रत)–त्रस जीवों की हिंसा का त्याग करना और बिना

प्रयोजन स्थावर जीवों की हिंसा न करना, अहिंसा अणुव्रत कहलाता है। कहा भी है-

जीवों की करुणा मन धार।
यह सब धर्मों में है सार ॥

२ सत्याणुव्रत(स्थूल मृषावाद विरमणव्रत)-मोटा झूठ न बोलना, सत्याणुव्रत कहलाता है। कहा है—

झूठ वचन मुख पर मत लाव।
सांच वचन पर राखहु भाव ॥

३ अचौर्याणुव्रत(स्थूल अदत्तादान विरमणव्रत)-दण्डनीय चोरी न करना। कहा है-

मालिक की आज्ञा विन कोय।
चीज गहे सो चोरी होय॥
ताते आज्ञा विन मत गहो।
चोरी से नित डरते रहो॥

४ ब्रह्मचर्याणुव्रत-- परस्त्री का त्याग करना दूसरी स्त्रियों को माता बहिन और लड़की के समान समझना। इसे स्वदारसंतोषव्रत भी कहते हैं। कहा है-

पर दारा के नेह न लगो।
इससे तुम दूरहि ते भगो॥

५ परिग्रहपरिमाणव्रत-- धन वगैरह की बेहद लालसा नहीं रखना, और परिग्रह की मर्यादा कर लेना। कहा है--

धन गृहादि में मूर्छा हरो।
इसका अति संग्रह मत करो॥

हर एक जैनी को इन पांच नियमों का अवश्य पालन करना चाहिये। यह हमारा सबसे प्यारा कर्त्तव्य धर्म है। जो इन नियमों को पालन करते हैं, उन्हें रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिये। क्योंकि रात में चाहे जितना उजाला किया जाय, परन्तु छोटे छोटे जीव दिखाई नहीं देते। बिना छना पानी पीने से पाप तो लगता ही है, साथ ही साथ बीमारी भी हो जाती है। जलोदर और नहरुआ आदि रोग प्रायः पानी छान कर न पीने से ही होते हैं।

# पाठ २१ वाँ

## उत्तम उपदेश

दोहा।

लोभ पाप को बाप है, क्रोध क्रूर यमराज ।
माया विष की वेलरी, मान विषम गिरिराज ॥१॥
ना जानें कुल शील के ना कीजे विसवास ।
तात मात जाते दुखी, ताहि न रखिये पास॥ २ ॥
एकाक्षर दातार गुरु, जो न गिने विन ज्ञान ।
सो चँडाल भव को लहै, तथा होयगा श्वान॥ ३ ॥
तेता आरँभ ठानिये, जेता तन में जोर।
तेता पाँव पसारिये, जेतो लाँबो सोर ॥ ४ ॥
को स्वामी मम मित्र को, कहा देश में रीत।
खरच किता आमद किती, सदा चिंतवो मीत ॥५॥
जो कुदेव को पूजिकै चाहे शुभ का मेल ।
सो बालू को पेलिकै; काढ़्या चाहै तेल ॥ ६ ॥
कहे वचन फेर न फिरे, मूरख के मन टेक ।
अपने कहे सुधार लैं, जिन के हिये विवेक॥ ७॥
थोरा ही लेना भला, बुरा न लेना भोत ।

अपजस सुन जीना बुरा, तातैं आछी मौत ॥८॥
अवसर लखिके बोलिये, जथाजोगता बैन।
सावन भादों बरसते सबही पावे चैन ॥ ९ ॥

बाप—जनक, पिता। कूर—निर्दय। बेलरी—बेल। विषम—भयंकर। तेता—उतना। जेता—जितना। पसारिये—फैलाइए। सोर—रजाई। मीत—मित्र। मौत—बहुत, ज्यादा। बैन—बचन।

## पाठ २२ वाँ

### अविनीत बालक।

किसी जगह एक लड़का था। उसका नाम कुमारपाल था। उसे उसके माता पिता और गुरु ने बहुत समझाया, पर उसने विनय करना नहीं सीखा।

एक दिन गुरुजी के किसी पड़ोसी का मकान गिर गया। वह पड़ोसी गुरुजी के पास आया। आ कर गुरुजी से बोला—महाराज! मेरा घर अचानक गिर गया है। मैं फिर खड़ा करूंगा। परन्तु मुझे एक खंभे

की जरूरत है। यदि आपके पास हो, तो कृपा कर के दीजिये। गुरुजी कुमारपाल की तरफ़ इशारा कर के बोले- हमारे पास लकड़ी का खंभा तो नहीं है, पर इस लड़के को लेते जाओ। यह अविनीत है। इस लिए खंभे के ही समान है। गुरुजी की बात सुन कर कुमारपाल घबराया। उसने कहा- पण्डितजी! अब मैं कभी अविनय न करूंगा। विनय करना सीखूंगा। बताइये, विनय किसे कहते हैं?।

गुरुजी बोले- देव गुरु धर्म और आगमों की भक्ति करना, अपने से बड़े माता पिता और अध्यापक आदि का सन्मान करना, बराबरी वालों से भलमनसई का बर्ताव करना, यही सब विनय कहलाता है। कुमारपाल ने कहा- आज से ही मैं विनय करूंगा। गुरुजी खुश हुए और उससे बहुत प्रेम करने लगे।

लड़को! विनय हीन लड़का लक्कड़ के समान होता है। उसे न तो कभी सन्मान ही मिलता है, न कोई उसकी बड़ाई करता है। इस लिए सब को विनयी बनना चाहिये।

# पाठ २३ वाँ

## उपदेशी दोहे।

रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल ॥ १ ॥
जो पहले कीजे यतन, सो पाछे फलदाय।
आग लगे खोदे कुआ, कैसे आग बुझाय ॥ २ ॥
क्यों कीजे ऐसो यतन, जासों काज न होय।
परवत पै खोदै कुआ, कैसे निकसै तोय ॥ ३ ॥
कहै रसीली बात सो, बिगड़ी लेत सुधार।
सरस लवण की दाल में, ज्यों नींबू रस डार ॥ ४ ॥
उत्तम विद्या लीजिये, जदपि नीच पै होय।
पड़्यो अपावन ठौर में, कंचन तजत न कोय ॥ ५ ॥
शील रतन सब से बड़ो, सब रतनन की खान।
तीन लोक की सम्पदा, रही शील में आन ॥ ६ ॥
भली करत लागे बिलँब, बिलँब न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगैं, ढाहत लगत न वार ॥ ७ ॥
बहुत द्रव्य संचय जहां, चोर राज भय होय।
काँसे ऊपर बीजुली, परत कहत सब कोय ॥ ८ ॥

| | |
|---|---|
| समीप---पास | लवण---नमक |
| तोय--- पानी | कंचन---सोना |
| अपावन---अपवित्र | ठौर--- जगह |
| भवन---महल,मकान | ढाहत---गिराने में |

# पाठ २४ वाँ

## बन्दर की चतुराई।

किसी नगर में एक राजा था। उसका नाम चंद्र था। राजा चंद्र ने अपने लड़कों के खेल के लिए बहुत से बन्दर पाले। उनमें एक बूढ़ा बन्दर था। वह बहुत चतुर था। उसी राजा ने दो मेंढ़े छोटे छोटे बच्चों के बैठने के लिए पाले थे। उन दो मेंढ़ों में से एक मेंढ़ा, प्रतिदिन रसोईघर में जाता और बासनों में मुँह डाला करता। वह रसोइया की मार खाये बिना कभी बाहर निकलता ही न था। यह सब हाल उस बूढ़े बन्दर ने देखा और अपने साथियों से कहा-- रसोइया और मेंढ़े के झगड़े में हम लोग मारे जावेंगे। क्यों कि किसी समय यदि रसोइया को और कुछ न मिला,

तो वह लूआट[1] मेंढ़े को मारेगा। जलती लकड़ी मारने से उसकी ऊन जलने लगेगी। ऊन जलने से वह घबराकर अपने थान पर आयगा। वहां घास होगी तो घास में भी आग लग जायगी। घास में आग लगने से गोशाला में, और गोशाला में आग लगने से घुड़साल में आग लग जायगी। कितने ही घोड़े मर जायँगे और कितने ही भुँज जायँगे। राजा उन भुँजे हुए घोड़ों की दवा के लिये वैद्य को बुलावेगा और वैद्य आयुर्वेद के अनुसार बन्दर का तेल बतावेगा। तब हम लोगों की अवश्य मृत्यु होगी। इसलिए हमें यह स्थान छोड़कर, दूसरी जगह चल देना चाहिये। कहा भी है कि जहां रोज़ रोज़ कलह हो वह स्थान छोड़ देना चाहिये। बूढ़े बन्दर की बात सुनकर सब बन्दर कहने लगे— बाबाजी ! मालूम होता है आप को यह मौज अच्छी नहीं लगती। हम लोगों को जंगल में ले जाकर कडुवे और खट्टे फल खिलाना चाहते हो ! बूढ़ा बन्दर यह बात सुन बड़ा दुःखी हुआ। वह बोला—अरे मूर्खो! मेरी बात पीछे याद आवेगी, तब तुम अवश्य पछताओगे।

---

१ अधजली लकड़ी।

मैं अपने सामने कुटुम्ब का नाश नहीं देख सकता। इतना कहकर बूढ़ा बन्दर जंगल में चला गया। कुछ दिन बीतनेके बाद सचमुच वही जो बूढ़े बन्दरने कहा था। "जो न माने बड़ों की सीख, ठिकरा लेकर माँगे भीख"।

प्यारे बालको! इस कथा से हमें ये शिक्षाएँ लेनी चाहिये—

१ जिस जगह प्रतिदिन कलह हो वहां न रहे।

२ बड़े बूढ़ों की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये।

३ लालच बहुत बुरी बलाय है। लालची मनुष्य कभी सुख नहीं पाता। इसलिए लालच का त्याग करना चाहिये।

# पाठ २५ वाँ.

## अविचार से हानि।

किसी शहर में एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री से एक लड़का पैदा हुआ। वहीं एक नेवली भी रहती थी। उसने भी उसी दिन एक नेवला जना। उस नेवले के बच्चे को ब्राह्मणी ने अपने बच्चे की तरह पाला पोसा। किसी दिन ब्राह्मणी ने अपने लड़के के

साथ उस नेवले को सुला दिया और वह पानी भरने कुँए चल दी। ब्राह्मण घर पर था। वह भी किवाड़ खुले छोड़ किसी जजमान के यहां चला गया। घर सूना होगया। इतने ही में एक काला सांप छत से खाट पर आ गया। सांप को आया देख नेवला उससे लड़ा और अन्त में उसके टुकड़े २ कर डाले। उसका मुँह खून से भर गया था। वह अपनी बहादुरी बताने के लिए ऐसे ही दौड़कर ब्राह्मणी के पास पहुँचा। ब्राह्मणी ने खून भरा मुँह देख, सोचा- बेशक इस नेवले ने हमारे बच्चे को मार डाला होगा। उसने गुस्से में आकर पानी भरा हुआ घड़ा उसके ऊपर पटक दिया। इससे उसकी मृत्यु होगई। ब्राह्मणी ने घर आकर देखा— बालक आनन्द में सो रहा है और साँप के छोटे छोटे टुकड़े एक तरफ पड़े हुए हैं। यह देखकर वह रोने पीटने और अपने आप को कोसने लगी। लेकिन अब क्या हो सकता था? उस दिन से उसने निश्चय किया कि आगे कोई भी काम बिना विचारे कभी न करूंगी।

लड़को! हम मनुष्य हैं। मनुष्यों में विशेष ज्ञान होता है। ज्ञान का फल यही है कि हम हर एक कार्य

सोच विचार कर करें। विना विचारे काम करने वाला मनुष्य कोई काम पूरा नहीं कर सकता। अगर करे भी तो पीछे पछताना पड़ता है। कहा भी है—

विना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होत हँसाय॥

## पाठ २६ वाँ

### उपदेशी दोहे।

प्रातहिं उठि के नित्य नित, करिये प्रभु को ध्यान।
याते जग में होय सुख, अरु पावै निरवान॥१॥
काहू ते कडुवो वचन, कहौ न कबहूं जान।
तुरत मनुज के हृदय में, छेदत है जिमि बान॥२॥
पढ़िवे में कबहूँ नहीं, नागा करिये चूक।
कुपढ़ लोग माँगत फिरहिं, सहहिं निरादर भूक॥३॥
कबहुँ न चोरी कीजिये, यदपि मिले बहु वित्त।
नर फँस ताके फंद में, पावहिं लाज अमित्त॥४॥
सुनि के दुर्जन के वचन, हो रहिये चुपचाप।
करी जो समता तासु की, नीच कहावै आप॥५॥

विद्या सम गुण जगत में, और न दूजो कोय।
सीखे जे ताके सदा, अति अद्भुत सुख होय ॥६॥
करो न रिपुता काहु सों, सब के रहिये मीत।
जाते मन प्रमुदित रहे, होय न रिपु की भीत ॥७॥
रहौ जौन से देश में, तहँ के नृप की रीति।
देख चलो ता चाल को, यह चतुरन की रीति ॥८॥
सुनि के सब की बात को, प्रथमहिं ढूँढ़ो हेत।
फिर उत्तर मुख ते कहो, यहि विधि राखो चेत ॥९॥
बुद्धिमान नर के सबै, लक्षण कहौं बखान।
जो जग निंदा सों डरे, बुद्धिमान सो जान ॥१०॥
बड़ो कौन या जगत में, पूछौं मैं यह बात।
ढके दोष जो और के, सो जन बड़ो कहात ॥११॥
सज्जन जग में कौन है, कहु निश्चय करि मोहि।
राखि दया जग भल चहै, सज्जन जानो सोहि ॥१२॥
काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगा, बहुरि करेगा कब ॥१३॥

बान—बाण, तीर
निरवान—मोक्ष, मुक्ति
नागा—गैर हाज़िरी.
वित्त—धन, दौलत.
अमित—बेहद.
रिपुता—शत्रुता, वैर
प्रमुदित—खुश
भीत—डर
नृप—राजा
बहुरि—फिर

# गिनती

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ |
| एक | दो | तीन | चार | पांच | छै |
| ७ | ८ | ९ | १० | ११ | १२ |
| सात | आठ | नौ | दस | ग्यारह | बारह |
| १३ | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ |
| तेरह | चौदह | पन्द्रह | सोलह | सत्रह | अठारह |
| १९ | २० | २१ | २२ | २३ | २४ |
| उन्नीस | बीस | इक्कीस | बाईस | तेईस | चौबीस |
| २५ | २६ | २७ | २८ | २९ | ३० |
| पच्चीस | छब्बीस | सत्ताईस | अट्ठाईस | उनतीस | तीस |
| ३१ | ३२ | ३३ | ३४ | ३५ | ३६ |
| इकतीस | बत्तीस | तेतीस | चौतीस | पैंतीस | छत्तीस |
| ३७ | ३८ | ३९ | ४० | ४१ | ४२ |
| सैंतीस | अड़तीस | उनतालीस | चालीस | इकतालीस | बयालीस |
| ४३ | ४४ | ४५ | ४६ | ४७ | ४८ |
| तितालीस | चवालीस | पैंतालीस | छयालीस | सैंतालीस | अड़तालीस |
| ४९ | ५० | ५१ | ५२ | ५३ | ५४ |
| उनचास | पचास | इक्यावन | बावन | तिरपन | चौपन |
| ५५ | ५६ | ५७ | ५८ | ५९ | ६० |
| पचपन | छप्पन | सत्तावन | अट्ठावन | उनसठ | साठ |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ६१ | ६२ | ६३ | ६४ | ६५ | ६६ |
| इकसठ | बासठ | तिरसठ | चौसठ | पैंसठ | छ्यासठ |
| ६७ | ६८ | ६९ | ७० | ७१ | ७२ |
| सड़सठ | अड़सठ | उनत्तर | सत्तर | इकहत्तर | बहत्तर |
| ७३ | ७४ | ७५ | ७६ | ७७ | ७८ |
| तिहत्तर | चौहत्तर | पचहत्तर | छहत्तर | सतहत्तर | अठहत्तर |
| ७९ | ८० | ८१ | ८२ | ८३ | ८४ |
| उन्नासी | अस्सी | इक्यासी | बियासी | तिरासी | चौरासी |
| ८५ | ८६ | ८७ | ८८ | ८९ | ९० |
| पचासी | छ्यासी | सत्तासी | अट्ठासी | नवासी | नब्बे |
| ९१ | ९२ | ९३ | ९४ | ९५ | ९६ |
| इक्यानवे | बानवे | तिरानवे | चौरानवे | पच्चानवे | छ्यानवे |
| ९७ | ९८ | ९९ | १०० | | |
| सत्तानवे | अट्ठानवे | निन्यानवे | सौ ॥ | | |

## सदा

सदा सवेरे उठने वाला, होता फुर्तीला बलवान।
सदा सबेरे पढ़ने वाला, होता चतुर तथा विद्वान॥
सदा सबेरे सोने वाला, होता है आलसी महान।
सदा सबेरे रोते वाला, खिंचवाता है अपने कान॥

# पहाड़ा

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १० |
| २ | ४ | ६ | ८ | १० | १२ | १४ | १६ | १८ | २० |
| ३ | ६ | ९ | १२ | १५ | १८ | २१ | २४ | २७ | ३० |
| ४ | ८ | १२ | १६ | २० | २४ | २८ | ३२ | ३६ | ४० |
| ५ | १० | १५ | २० | २५ | ३० | ३५ | ४० | ४५ | ५० |
| ६ | १२ | १८ | २४ | ३० | ३६ | ४२ | ४८ | ५४ | ६० |
| ७ | १४ | २१ | २८ | ३५ | ४२ | ४९ | ५६ | ६३ | ७० |
| ८ | १६ | २४ | ३२ | ४० | ४८ | ५६ | ६४ | ७२ | ८० |
| ९ | १८ | २७ | ३६ | ४५ | ५४ | ६३ | ७२ | ८१ | ९० |
| १० | २० | ३० | ४० | ५० | ६० | ७० | ८० | ९० | १०० |

## पहाड़ा

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ११ | १२ | १३ | १४ | १५ | १६ | १७ | १८ | १९ | २० |
| २२ | २४ | २६ | २८ | ३० | ३२ | ३४ | ३६ | ३८ | ४० |
| ३३ | ३६ | ३९ | ४२ | ४५ | ४८ | ५१ | ५४ | ५७ | ६० |
| ४४ | ४८ | ५२ | ५६ | ६० | ६४ | ६८ | ७२ | ७६ | ८० |
| ५५ | ६० | ६५ | ७० | ७५ | ८० | ८५ | ९० | ९५ | १०० |
| ६६ | ७२ | ७८ | ८४ | ९० | ९६ | १०२ | १०८ | ११४ | १२० |
| ७७ | ८४ | ९१ | ९८ | १०५ | ११२ | ११९ | १२६ | १३३ | १४० |
| ८८ | ९६ | १०४ | ११२ | १२० | १२८ | १३६ | १४४ | १५२ | १६० |
| ९९ | १०८ | ११७ | १२६ | १३५ | १४४ | १५३ | १६२ | १७१ | १८० |
| ११० | १२० | १३० | १४० | १५० | १६० | १७० | १८० | १९० | २०० |

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| २१ | २२ | २३ | २४ | २५ | २६ | २७ | २८ | २९ | ३० |
| ४२ | ४४ | ४६ | ४८ | ५० | ५२ | ५४ | ५६ | ५८ | ६० |
| ६३ | ६६ | ६९ | ७२ | ७५ | ७८ | ८१ | ८४ | ८७ | ९० |
| ८४ | ८८ | ९२ | ९६ | १०० | १०४ | १०८ | ११२ | ११६ | १२० |
| १०५ | ११० | ११५ | १२० | १२५ | १३० | १३५ | १४० | १४५ | १५० |
| १२६ | १३२ | १३८ | १४४ | १५० | १५६ | १६२ | १६८ | १७४ | १८० |
| १४७ | १५४ | १६१ | १६८ | १७५ | १८२ | १८९ | १९६ | २०३ | २१० |
| १६८ | १७६ | १८४ | १९२ | २०० | २०८ | २१६ | २२४ | २३२ | २४० |
| १८९ | १९८ | २०७ | २१६ | २२५ | २३४ | २४३ | २५२ | २६१ | २७० |
| २१० | २२० | २३० | २४० | २५० | २६० | २७० | २८० | २९० | ३०० |

## पहाड़ा

| | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| ३१ | ३२ | ३३ | ३४ | ३५ | ३६ | ३७ | ३८ | ३९ | ४० |
| ६२ | ६४ | ६६ | ६८ | ७० | ७२ | ७४ | ७६ | ७८ | ८० |
| ९३ | ९६ | ९९ | १०२ | १०५ | १०८ | १११ | ११४ | ११७ | १२० |
| १२४ | १२८ | १३२ | १३६ | १४० | १४४ | १४८ | १५२ | १५६ | १६० |
| १५५ | १६० | १६५ | १७० | १७५ | १८० | १८५ | १९० | १९५ | २०० |
| १८६ | १९२ | १९८ | २०४ | २१० | २१६ | २२२ | २२८ | २३४ | २४० |
| २१७ | २२४ | २३१ | २३८ | २४५ | २५२ | २५९ | २६६ | २७३ | २८० |
| २४८ | २५६ | २६४ | २७२ | २८० | २८८ | २९६ | ३०४ | ३१२ | ३२० |
| २७९ | २८८ | २९७ | ३०६ | ३१५ | ३२४ | ३३३ | ३४२ | ३५१ | ३६० |
| ३१० | ३२० | ३३० | ३४० | ३५० | ३६० | ३७० | ३८० | ३९० | ४०० |

# कठिन शब्दों के अर्थ.

| शब्द | अर्थ | पृष्ठ |
|---|---|---|
| अक्लमंदी— | बुद्धिमानी | २१ |
| अटल— | पक्का | ३० |
| अथाह— | असीम, बेहद्द | ३२ |
| अनुभवी— | तज़र्बा वाला | ३८ |
| अविनीत— | विनय न करने वाला | ४४ |
| अशिक्षित— | बिना सिखाया | ३१ |
| असमय— | बेमौके | १९ |
| आजीविका— | निर्वाह, रोज़ी | ३७ |
| इतराना— | घमण्ड करना | ३३ |
| उतराता— | तैरता | २६ |
| उपाधि— | आफत | २० |
| ऋषि— | संन्यासी, साधु | २० |
| करुणा— | दया. | ३४ |
| काई— | सेवाल | ३६ |
| कांठा— | पार्श्व' बगल | १९ |
| कुटिया— | झोंपडी. | २० |
| कृषक— | खेती करने वाला | १४ |
| गांठना— | अपने अधिकार में करना | ३७ |
| गिड़गिड़ाकर— | दीनता दिखाकर | २१ |
| गोशाला— | गायों के बँधने का स्थान | ४७ |
| चहकना— | चहचहाना, चिड़ियों का बोलना | १७ |
| चालाक— | चलता पुर्जा | २२ |

जना— पैदा किया ४८
जलचर— जल में रहने वाले ३५
जलाशय—जल वाली जगह, तालाब वगैरह. ३१
त्रसजीव—चलने फिरने वाले जीव. ३६
तिर्यंच— पशु पक्षी २२
थान—स्थान, ढोर बंधने की जगह. ४७
दैवयोग— इत्तिफ़ाक़,संयोग. ३०
नभ— आकाश. १७
नमस्कार— प्रणाम, नमन. ३२
निठुर— कठोर ३४
निर्जन—एकान्त. ३१
निरवान— मोक्ष. २१
नीरोग— तन्दुरुस्त ३२
परदारा— दूसरे की स्त्री ४०
परिणाम—भाव ३५
नौ दो ग्यारह हुए—चल दिये,चम्पत हुए ३६
नौबत— अवसर,मौका. १६
पंथ— रास्ता २
परेशान—हैरान, तंग १३
परोपकार— दूसरे की भलाई २५
पसारा— फैलाया ३८
पारधी— शिकारी, चिड़ीमार २६
पूंजी— मूल धन ३७
पैजनी— बच्चों के पैर का गहना १८
प्रतीति— विश्वास २८

**प्रभाव**— प्रताप, शक्ति २१
**प्रयोजन**— मतलब, ४०
**प्रसन्न**— खुश ३०
**भयभीत**— डरा हुआ. ३४
**भोर**— सुबह १७
**मुसकराना**— थोड़ा हँसना, मुलकना. १६
**मूर्छा**— ममता ४१
**यत्न**— प्रयत्न, कोशिश. ३६
**यार**— मित्र १४
**लकड़हारा**— कठियारा २७
**लाल**— प्यारे १७
**लालसा**— इच्छा, तृष्णा. ४१
**विनय**— नम्रता. ४३
**व्याध**— चिड़ीमार १९
**शक्ति**— ताकत, सामर्थ्य ३४
**शिरफुटौवल**— माथा फोड़ी १६
**शीश**— मस्तक १
**शुक**— तोता सुआ. २०
**शूल**— कांटा ३५
**षोडस**— सोलह ३९
**संगति**— साथ, सोहबत. १६
**सचेत**— सावधान २६
**सफल**— कामयाब ३५
**सन्मान**— आदर ४४
**सुमति**— अच्छी बुद्धि १

| | | |
|---|---|---|
| **सुना—** | शून्य, निर्जन. | ४६ |
| **स्थावर जीव—** | एक इन्द्रिय वाले जीव. | ४० |
| **स्वभाव—** | आदत | २६ |
| **स्वर्गवास—** | देहान्त, मृत्यु | २१ |
| **हैरान—** | तंग. | २६ |
| **रीढ़हड्डी—** | पीठ की हड्डी | १९ |
| **निरे—** | पूरे | २८ |
| **हवस—** | इच्छा | ३२ |
| **सेयें—** | सेवन करने से | ३२ |
| **इतराना—** | घमण्ड करना | ३३ |

# शिक्षकों से निवेदन

१ शिक्षक का पद धार्मिक, नैतिक या सामाजिक दृष्टि से-प्रत्येक दृष्टि से--अत्यन्त गौरवशाली अतएव उत्तरदायित्व पूर्ण है। वे विद्यार्थियों की जीवननौका के कर्णधार हैं। वे चाहें तो वह सफलता पूर्वक किनारे लग सकती है, न चाहें तो मँझधार में डूब जायगी। इसलिए शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि केवल पुस्तकें पढ़ना या पठित पाठ को लिख लेना ही न समझ कर प्रत्येक पाठ को हृदय(तात्पर्य)को बच्चों के हृदय में मिला दें--एकमेक करदें।

२ क्रूर व्यवहार से जो सदाचार की शिक्षा बच्चों को दी जाती है, उसका असर अस्थाई होता है। वे जब तक आँखों के सामने रहते हैं, डर के मारे सदाचारी से बने रहते हैं। पीठ पीछे उसकी पर्वा नहीं करते। आवश्यकता इस बात की है कि बच्चे अपना कर्त्तव्य समझकर सदाचार का पालन करें, इस प्रकार प्रेम से उन्हें शिक्षा दी जाय।

३ जब एक पाठ पढ़ावें तो उससे सम्बन्ध रखने वाले भिन्न२ उदाहरणों से वह पाठ अच्छा रोचक बना देवें, जिससे शिष्य का जी बरम्बार पाठ की ओर आकर्षित होवे।

४ पुस्तक में संयुक्त अक्षरों के एक २ दो २ नमूने मात्र हैं। शिक्षक महोदय का कर्त्तव्य है कि उनके अतिरिक्त दूसरे २ अक्षर भी साथ साथ बताते जावें, जिससे शिष्यों की योग्यता बढ़े और आगे के लिए सरलता हो जावे।

५ पुस्तक की कविताएँ प्रायः सभी कण्ठ करने योग्य हैं। किन्तु कण्ठ करना अनिवार्य नहीं है। पात्र देखकर अध्यापक का कर्त्तव्य है कि कण्ठ करने न करने का निर्णय कर लेवें।

पुस्तक मिलने का पता—

**अगरचन्द भैरोंदान सेठिया**

जैन लाइब्रेरी (शास्त्रभण्डार)

**बीकानेर** [राजपूताना]

सेठिया जैन प्रींटिंग प्रेस द्वारा मुद्रित 21—11—27

सेठिया जैन ग्रन्थमाला, पुष्प नं० ६२

* श्री वीतरागाय नमः *

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## तीसरा भाग

प्रकाशक—

**भैरोंदान जेठमल सेठिया**
**बीकानेर**

| | | |
|---|---|---|
| वीर सं २४५२ | प्रथमावृत्ति | न्योछावर =) |
| विक्रम सं १९८३ | २००० | तीन आना |

दी सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस बीकानेर में मुद्रित.

ज्ञानपाल सेठिया.

*Gyanpal Sethia*

# विषयानुक्रम.


| पाठ | विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|
| १ | महावीराष्टक ( परवारबन्धु मासिकसे ) | १ |
| २ | नारायण की परीक्षा ( १ ) ... ... ... | ४ |
| ३ | दो मित्र और खजाना ... ... ... | ६ |
| ४ | धूर्तता का फल ... ... ... | ६ |
| ५ | बुढ़िया की बात ... ... ... | ११ |
| ६ | सागरदत्त और सोमक ... ... ... | १३ |
| ७ | अकबर ... ... ... | १७ |
| ८ | सात कुव्यसन ... ... ... | १६ |
| ९ | श्रेष्ठ मनुष्य ... ... ... | २२ |
| १० | दामन्नक की कथा ... ... ... | २४ |
| ११ | सच बोलना ... ... ... | २६ |
| १२ | असत्य का फल ... ... ... | ३२ |
| १३ | अदत्तादान का फल ... ... ... | ३५ |
| १४ | घमण्डी का सिर नीचा ... ... ... | ३८ |
| १५ | अहंकार और मायाचार ... ... ... | ४० |
| १६ | लोभी की दुर्दशा ... ... ... | ४२ |
| १७ | धन ... ... ... | ४६ |
| १८ | बारह भावनाएँ ... ... ... | ४६ |
| १९ | नारायण की परीक्षा (२) ... ... ... | ५१ |
| २० | संगति ... ... ... | ५४ |
| २१ | चुम्बक ... ... ... | ५७ |

| पाठ | विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|
| २२ | रेशम ... ... ... | ५९ |
| २३ | बनावटी काठ ... ... ... | ६२ |
| २४ | भारतवर्ष के देशी राज्य ... ... ... | ६३ |
| २५ | काश्मीर की सैर ... ... ... | ६६ |
| २६ | हैज़ा ... ... ... | ६९ |
| २७ | नीति के दोहे ... ... ... | ७१ |
| २८ | उपदेशी दोहे ... ... ... | ७३ |
| २९ | गिरिधर की कुण्डलियाँ ... ... ... | ७४ |
| ३० | कर्त्तव्य-शिक्षा, यज्ञ में हिंसानिषेध, संसार का स्वरूप, सच्चे देव का स्वरूप, मीठे बचन (कविवर भूधरदासजी रचित पद्य) | ७६ |
| ३१ | पुस्तक का सारांश ... ... ... | ७९ |

ॐ

# हिन्दी-बाल-शिक्षा.

## (तीसरा भाग)

## पाठ पहला।

### महावीराष्टक.

( १ )

है श्रेष्ठतर कुण्डलपुरी अमरावती से भी कहीं,
कुण्डलपुरी के साथ से बड़भागिनी यह है मही।
जिनवर जहां प्रकटे स्वयं वन्दित न हो कैसे वही,
क्या स्पर्श पारस का मिले तो स्वर्ण हो लोहा नहीं॥

( २ )

त्रिशला सती वन्दित न हो किस भांति इस संसार में,
त्रैलोक्य वन्दित आ बसा जिसके उदर-आगार में।
यद्यपि जगत सुरभित हुआ है मलय के गुणग्राम से
पर कौन परिचित है नहीं मलयाद्रि के शुभ नाम से॥

( ३ )

अभिमत फलों का आप जिनवर! दान देते थे सदा,
अज्ञानियों को मान-पूर्वक ज्ञान देते थे सदा।
क्या कल्पतरु या कामधुक से ज्ञान मिलता है कहीं,
इस हेतु दानी आपके सम विश्व में कोई नहीं ॥

( ४ )

लख ध्यान में स्थित आप पर छोड़े खलों ने श्वान भी,
थे काट कर वे आपका करते रुधिर का पान भी।
फिर नोन छिड़का आपके क्षत पर यवन-गण ने विभो
तो भी न छूटा ध्यान प्रभु का जय महावीर प्रभो!।

( ५ )

समता सुगमता से सभी को साथ रखते आप थे,
सब को दया-दृग से सदा जिनदेव! लखते आप थे।
*त्रय-ताप से संतप्त जन सुखिया किए प्रभु आपने*
करके कृपा सब को स्वयं अपना लिये प्रभु आपने॥

( ६ )

सर्वत्र हत्याकाण्ड का ताण्डव यहां होता रहा,
आलस्य मद से मत्त हो भारत पड़ा सोता रहा।
हत्या उपद्रव को मिटाया आपने आकर यहां,
तन्द्रा मिटी प्रभु! आपके आदेश को पाकर यहां॥

( ७ )

जिनदेव! म्लेच्छप्रवर भी धार्मिक मही पर हो गए,
हृत्ताप हिंसा-जनित बहुविधि भूमितल के खो गए।
देकर स्वदर्शन पतित-पावन जग उबारा आपने,
बन कर सुधर्मादर्श हम सबको सुधारा आपने॥

( ८ )

हिंसा-निरत जन थे यहाँ मिटता दया का नाम था,
द्वेषाग्नि से जलना यहाँ के मानवों का काम था।
उस काल में प्रभु! आपने सब को दयामय कर दिया,
सबके हृदयमें ऐक्य के पीयूष-रसको भर दिया॥

पं० रामचरित उपाध्याय.

---

श्रेष्ठतर–बहुत उत्तम.
मही–पृथ्वी.
सुरभित–सुगंधित.
मलयाद्रि–मलय पर्वत.
कल्पतरु–कल्पवृक्ष.
विश्व–संसार.
श्वान–कुत्ता.
क्षत–घाव.
दयादृग–कृपा-दृष्टि

अमरावती–इन्द्र की नगरी.
उदर-आगार–पेट रूपी घर.
मलय–चन्दन.
गुण-ग्राम–गुणों का समूह.
कामधुक–कामधेनु.
खल–दुष्ट.
नोन–नमक.
यवन-गण–म्लेच्छोंका समुदाय.
त्रय-ताप–तीन ताप

# पाठ दूसरा

## नारायण की परीक्षा (१)

पहले स्वर्ग में बत्तीस लाख विमान हैं। उसमें सुधर्मा नाम की एक सभा भी है। इससे वह स्वर्ग सौधर्म स्वर्ग और वहां का इन्द्र सौधर्म इन्द्र कहलाता है। एक दिन सौधर्म इन्द्र सभा में बैठा था। देव लोग उसकी सेवा चाकरी बजा रहे थे। इसी समय पुरुषों की समालोचना शुरू हुई। इन्द्र बोले—"श्री-कृष्ण महाराज बहुत दोषों वाली वस्तु के भी गुण ही ग्रहण करते हैं। दोषों पर लेश मात्र भी ध्यान नहीं देते"। इन्द्र द्वारा की हुई श्रीकृष्ण की प्रशंसा एक देव को सहन नहीं हुई। वह उनकी परीक्षा करने चला। जिस

---

हत्याकाण्ड—हत्याएँ.

ताण्डव—नाच.

तन्द्रा—ऊंघ

(आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक अथवा शारीरिक मानसिक और बाह्य कारणों से पैदा होने वाला)

हृत्ताप—हृदय का संताप.

पीयूष—अमृत.

रास्ते श्रीकृष्ण, भगवान नेमिनाथ की वन्दना करने जाने वाले थे, वह उसी रास्ते में अधमरे कुत्ते का रूप धारण करके पड़ रहा। उसके मुंह से बहुत ही दुर्गन्ध निकल रही थी। फटे हुए काले मुंह से सफ़ेद दांत निकले हुए बहुत ही डरावने मालूम होते थे।

श्रीकृष्ण उसी रास्ते से चले। रास्ते में उनके आगे आगे चलने वाले पैदल सिपाहियों को वह दुर्गन्ध सहय न हुई। इसलिए वे अपनी अपनी नाक से कपड़ा लगाकर इधर उधर होने लगे। जब केशव ने नाक मूंदने का कारण पूछा, तो किसी ने कहा—"देव! एक बदबूदार कुत्ता मरा पड़ा है"। नारायण उसके पास गये। उसे देख कर वे बोले—"आह! इसके काले रंग के शरीर में सफ़ेद दांत ऐसे सुन्दर मालूम होते हैं, जैसे अच्छे मरकत मणि के भाजन में मोतियों की पंक्ति बनाई गई हो! इस प्रशंसा को सुनकर देव सोचने लगा— इन्द्र महाराज का कहना बिलकुल सच है। बालको! महात्मा लोग कभी किसी के अवगुणों पर नज़र नहीं डालते, वे गुणों को ही ग्रहण करते हैं। तुम कभी किसी के अवगुणों को न देखकर गुणग्रहण करना सीखो।

**प्रश्नावलि।**

पहले स्वर्ग में कितने विमान हैं? पहले स्वर्ग की सभा का क्या नाम है? श्री कृष्ण में कौन सा गुण था? तुम्हें क्या करना चाहिए?

# पाठ तीसरा

## दो मित्र और ख़ज़ाना.

किसी जगह दो आदमी रहते थे। उनकी परस्पर में घनिष्ठ मित्रता थी। किसी समय उन्हें एक ख़ज़ाना मिला। उन दोनोंमें एक कपटी था। वह बोला-कल अच्छा मुहूर्त है। कल ही इसे खोदेंगें। दूसरा सरल चित्त का था; इसलिए उसने यह बात स्वीकार कर ली। उस मायावी ने रात्रि के समय ख़ज़ाने का तमाम धन निकाल कर, उसमें कोयले भर दिये। दूसरे दिन, दोनों दोस्त साथ २ ख़ज़ाने के पास आये। आकर देखते क्या हैं कि ख़ज़ाने में कोयले भरे पड़े हैं। यह देख वह मायावी ज़ोर ज़ोर से रोने लगा; और बोला— हाय; हम लोग बड़े अभागे हैं। दैव ने आखें

देकर फिर फाड़ डालीं— खज़ाना बताकर कोयले दिखलाए। इस प्रकार चिल्ला २ कर दूसरे के मुँह की ओर ताकने लगा। वह भी उसके कपटाचार को ताड़ गया। वह ऊपर फट्टी बोला--मित्र! खेद न करो, खेद करने से खज़ाना वापस नहीं आ सकता। इसके अनन्तर दोनों दोस्त अपने२ घर चले गये।

कुछ दिन पश्चात् उसने मायाचारी मित्र की एक मूर्त्ति बनवाई तथा दो बन्दर पाले। वह मूर्ति साक्षात् मूर्तिमान ही थी। उसने मूर्ति की गोद में हाथों में शिर पर और इधर उधर कुछ खाना बिखेर दिया। बंदर भूखे थे, झटपट लपके और सारा खाना खागये। इस प्रकार वह प्रतिदिन करता था: इससे बन्दरों को आदत पड़ गई थी। इसके अनन्तर किसी त्योहार के दिन उसने मायावी के दोनों लड़कों को भोजन के लिए निमंत्रित किया। दोनों लड़के भोजन के समय आये। उन्हें खूब आदर सत्कार से भोजन कराया। भोजन कराने के बाद किसी आरामकी जगह उन्हें छिपा दिया। जब कुछ दिन बीत गये, तब उसका मित्र अपने लड़कों को लिवाने आया। दूसरा उससे बोला–"मित्र! तुम्हारे दोनों लड़के बन्दर हो गये हैं। यह सुनकर वह खिन्न

और चकित होकर घरमें घुसा। उस मित्रने मूर्तिको उठा कर, उसकी जगह मायावी मित्र को बैठाकर बन्दरों को छोड़ दिया। बन्दर उस आये हुए आदमी को मूर्ति समझ, सदा की भांति उसके ऊपर कूदने लगे। तब वह बोला – मित्र! यही दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। देखो तुम से कैसा अपनापन दिखलाते हैं। मायावी बोला-मित्र! मनुष्य अचानक ही क्या बन्दर हो जाते हैं? वह बोला–"हां आपके दुर्भाग्य से! नहीं तो क्या सोना कोयला हो सकता है?" मित्र! अपने दुर्भाग्यसे जब सोना कोयला होगया तो मनुष्य बन्दर क्यों नहीं हो सकता? मायावी ने सोचा– अवश्य ही इसने हमारी सब कार्यवाही जान ली है। यह सोचकर उसने राज-दण्ड के भय से सब बातें कह सुनाई और आधा हिस्सा दे दिया। दूसरे ने भी उसके लड़के उसे लौटा दिये।

बालको! हमें चाहिए कि हम कभी इस प्रकार की बेईमानी न करें। यदि वह मायावी अन्त तक सच हाल न कहता तो शायद उसके लड़के उसे न मिलते। तथा दंड भोगता, मित्रको खो देता और बद-नाम होता।

### प्रश्नावलि।

दूसरा आदमी मूर्ति पर खाना रोज़ क्यों बिखेरता था? मनुष्य बन्दर हो सकता है या नहीं? मायाचारी के ऊपर बन्दर क्यों कूदने लगे? इस कहानी से तुम क्या सीखे ?

# पाठ चौथा.

## धूर्तता का फल

एक ग्रामीण आदमी ककड़ी बेचने बाज़ार जा-रहा था। शहर के फ़ाटक पर किसी नागरिक ने कहा "यदि मैं तुम्हारी तमाम ककड़ियाँ खालूं, तो मुझे क्या दोगे"?ग्रामीण बोला—" इतना बड़ा लड्डू दूंगा जो कि इस फ़ाटक में न आवे"। इस प्रकार दोनों ने शर्त लगाई तथा शहर के अन्य लोगों को साक्षी बनाया। नागरिक बड़ा चालाक था। उसने थोड़ी २ सब ककड़ियाँ खाकर फेंक दीं और ग्रामीण से बोला—"मैंने सब ककड़ियाँ खाली हैं, मुझे लड्डू देकर अपनी प्रतिज्ञा का पालन करो"। ग्रामीण बोला—"तुमने मेरी सब ककड़ियाँ नहीं खाई हैं,लड्डू कैसे दे दूं ? नागरिक बोला—-अच्छा, चलो तुम्हें

विश्वास कराता हूं" । ग्रामीण ने यह बात स्वीकार कर ली।

दोनों ने मिलकर वे ककड़ियाँ बाज़ार में बेचने रक्खीं । लोग ख़रीदने आये । किन्तु उन ककड़ियों को देख, सब कहने लगे--तेरी सब ककड़ियाँ खाई हुई हैं, इन्हें कैसे ख़रीदें । यह सुनकर ग्रामीण को विश्वास होगया ।

उसके हृदय में खलबली मच गई कि—हाय! इतना बड़ा लड्डू कैसे दूंगा? । वह मारे डर के थर थर कांपने लगा। उसने एक रुपया देना चाहा,परन्तु नागरिक ने स्वीकार न किया । इस तरह उसने सौ रुपये तक देना चाहा पर नागरिक मंजूर ही न करता था । अब ग्रामीण ने सोचा—हाथी का सामना हाथी ही करता है । इस धूर्त ने मुझे छल लिया है । इसे छकाने के लिए दूसरा धूर्त खोजना चाहिए । निदान उसने एक धूर्त खोजा और उसने उसे उपाय बता दिया । इसलिये ग्रामीण ने किसी दूकान से एक छोटा सा लड्डू खरीद कर अपने प्रतिद्वन्द्वी को बुलाया। साथ ही सब साक्षियों को भी बुलाया। बुलाकर उस लड्डूको देहली पर रखकर बोला— हे लड्डू आओ ! आओ !! पर लड्डू न आया।

तब वह साक्षियों से बोला — मैंने कहा था ऐसा लड्डू दूंगा जो फाटक में न आवे, यह लड्डू भी फाटक में नहीं आता; इसलिए इसे ले लीजिये। यह सुन सब लोग निरुत्तर हो गये। वह नागरिक धूर्त बहुत लज्जित हुआ। सच है- धूर्तता अच्छी नहीं होती।

### प्रश्नावलि।

इन शब्दोंका अर्थ बताओ—नागरिक, ग्रामीण, साक्षी, प्रतिद्वन्द्वी, धूर्त। इस पाठ से तुम क्या सीखे हो?

## पाठ पाँचवाँ

### बुढ़िया की बात

एक दिन राजा भोज और माघ पंडित शहर से थोड़ी दूरी पर एक बाग़ में गये। बाग़ की सैर करके वापिस आते समय रास्ता भूल गये। राजा भोज माघ से बोले—पंडितजी! हम लोग रास्ता भूल गये हैं।

माघ ने कहा - पृथिवीनाथ! वहां एक डोकरी गेहूँ का खेत रखा रही है। उस से पूछ कर ठीक

कर लेना चाहिये। दोनों सवार बुढ़िया के पास गये।

दोनों—माताराम! राम राम।

बुढ़िया—आओ भाई! राम राम। आप कौन हैं?

भोज—हम दोनों बटोही हैं।

बुढ़िया—बटोही दो होते हैं-चांद और सूरज। इन दोनों में आप कौन हैं?

भोज—हम दोनों पाहुने हैं।

बुढ़िया—पाहुने दो होते हैं-एक धन, दूसरा जवानी। इस में से आप कौन हैं?

भोज—हम राजा हैं।

बुढ़िया—राजा दो होते हैं-चन्द्र और यम। इन दोनों में आप कौन हैं?

भोज—हम साधु हैं।

बुढ़िया—साधु दो होते हैं-शीलवान और संतोषी। इन दोनों में आप कौन हैं?

भोज—हम निर्मल हैं।

बुढ़िया—निर्मल दो होते हैं। एक साधु, दूसरा पानी। इन दोनों में आप कौन हैं?

भोज—हम परदेशी हैं।

बुढ़िया-परदेशी भी दो होते हैं-जीव और पवन। इन दोनों में आप कौन हैं?

भोज—मातारास! हमारी तो नाक में दम आगई। हम ग़रीब हैं।

बुढ़िया—ग़रीब भी दो होते हैं। मेमना और मंगता। आप कौन हैं?

भोज—हम चतुर हैं।

बुढ़िया—चतुर दो होते हैं। एक अन्न, दूसरा जल। सच कहो, कौन हो?

भोज—मातारास! रास्ता बताना हो, तो बतादो। हम हारे।

बुढ़िया—हारे दो होते हैं। एक बेटीका बाप, दूसरा क़र्ज़दार। बताइये तो आप कौन हैं?

भोज चुप रह गये। बुढ़ियाने कहा-हां, अब जान पाई। आप राजा भोज और दूसरे माघ पण्डित हैं।

## पाठ छठा.

### सागरदत्त और सोमक.

किसी समय कौशाम्बी नगरी में जयपाल नामके

राजा हो गये हैं। उसी नगरी में एक समुद्रदत्त सेठ था। उसकी स्त्री का नाम समुद्रदत्ता और पुत्र का नाम सागरदत्त था। सागरदत्त बहुत ही सुन्दर था। उसे देखते ही, खेलाने को जी चाहता था। उसकी उमर चार वर्ष की थी। समुद्रदत्त का गोपायन नामक एक पड़ोसी था। वह पाप कर्म के उदय से बहुत दरिद्र था। उसकी स्त्री का नाम सोमा और पुत्र का नाम सोमक था। सोमक धीरे धीरे बढ़ कर अपनी तोतली बोली से माता पिता को आनन्दित करने लगा। अब वह तीन वर्ष का होगया था।

एक दिन सागरदत्त और सोमक, गोपायन के घर खेल रहे थे। सागरदत्त की मूर्ख माता ने उसे बहुत से गहने पहना रक्खे थे। सागरदत्त उन गहनों को पहिने ही गोपायनके घर चला गया। जब दोनों बालक खेल रहे थे, उसी समय गोपायन अपने घर आया। सागरदत्त के गहने देख कर उसका मन हाथ से निकल गया। घर का दर्वाज़ा बन्द करके, सागरदत्त को एक कमरे में ले गया। साथ में सोमक भी चला गया था। कमरे में ले जाकर पापी गोपायन ने सागरदत्त की गर्दन छुरी से काट ली, और वहीं गड्ढा खोद कर गाड़ दिया।

सागरदत्त के माता पिता कोशिश करके थक गये, परन्तु जब पता न लगा सके, तो यह सोच कर कि किसी पापी ने गहनों के लोभ से उसे मार डाला होगा, शान्त हो रहे। उन्हें अपने प्यारे बेटे की मृत्यु से कितना दुःख हुआ ? इसका अनुमान वे ही कर सकते हैं, जिन्हें कभी ऐसा दुष्ट दैवी प्रसंग आया हो। आखिर बेचारे मन मसोस कर रह गये और अपनी भूल पर पश्चात्ताप करने लगे।

कुछ दिन बीते। एक दिन बालक सोमक समुद्रदत्त के घर के आंगन में खेल रहा था। समुद्रदत्ता के दिल में न जाने क्या बुद्धि उत्पन्न हुई, कि उसने सोमक को प्यार से पुचकार कर अपने पास बुलाया और बोली- भैया! बता तो सही 'तेरा साथी सागरदत्त कहां है? तू ने उसे देखा है' ?

सोमक बालक था और बाल-स्वभाव के अनुसार स्वच्छ हृदय वाला भी था। उसने झटपट कह दिया-वह तो मेरे घर में एक गड्ढे में गड़ा है। बेचारी समुद्रदत्ता अपने बच्चे की दुर्दशा सुनते ही धड़ाम से धरती पर गिरपड़ी। इतने में समुद्रदत्त भी वहाँ आ पहुँचा। उसने होश में लाकर, मूर्छित होने का कारण पूछा।

समुद्रदत्त ने सोमक का कहा हुआ, सारा हाल कह सुनाया। समुद्रदत्त ने दौड़ कर पुलिस में रिपोर्ट कर दी। पुलिस ने आकर मृत बच्चे की सड़ी हुई लाश सहित गोपायन को गिरफ्तार किया। मुक़दमा राजा के पास गया, और गोपायन को पाप के अनुसार प्राणदण्ड दिया।

पापी लोग कितना ही छिप कर पाप क्यों न करें, परन्तु वह छिपता नहीं है। कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है और उसके फल स्वरूप इस लोक और परलोक में अनन्त दुःख भोगने पड़ते हैं। अतः सुख चाहने वालों को क्रोध मान माया लोभ आदि के वशीभूत हो कर हिंसा, झूठ चोरी कुशील आदि पापों को छोड़कर अहिंसा आदि पांच व्रतों को धारण करना चाहिए।

इस कहानी से बालकों को यह शिक्षा लेनी चाहिये कि जब तक वे अपने गहनों की आप ही रक्षा न कर सकें, तब तक कोई गहना न पहनें। विद्या सब से बढ़िया गहना है। उसे रात दिन मन लगा कर पढ़ना चाहिये।

## प्रश्नावलि

किताब बिना देखे कथा का सारांश कहो? गहना पहनने की हानियाँ बताओ?

# पाठ सातवाँ

## अकबर

प्रसिद्ध अबुल मुज़फ्फ़र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर हुमायूँ बादशाह का बेटा था। वह ईस्वी सन् १५४२ में जन्मा और साढ़े तेरह वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठा था। यह बादशाह और और मुसलमान बादशाहों की तरह धर्मान्ध नहीं, किन्तु उदार हृदय था। कहते हैं उसने सब धर्मों को जाना और जांचा था। किन्तु जैनधर्म से उसे बहुत प्रेम था। "अहिंसा धर्म" उसकी रग रग में व्याप्त था। वह जैनाचार्य जगद्गुरु श्री हीरविजय को अपना गुरु समझता था। उसी ने उन्हें 'जगद्गुरु' की उपाधि प्रदान की थी। एक बार बादशाह लाहोर में था। जैन मुनि शान्तिचन्द्र जी भी लाहोर में थे। ईद से एक दिन पहले उन्होंने कहा-"आज मैं यहां से जाऊंगा"। बादशाह उनका बहुत सत्कार सन्मान करता था। उसने कारण पूछा तो उन्होंने कहा—"कल हज़ारों ही नहीं, बल्कि लाखों जीवों का बध होने वाला है। इससे मेरा अन्तःकरण दुखी होता है"। फिर उन्होंने मुसलमानों के धर्म-ग्रन्थ कुरानशरीफ़ की आयतों से यह बताया कि

रोटी और शाक खाने से ही रोज़े क़बूल होजाते हैं। क़ुरानशरीफ़ यह भी आज्ञा देता है कि हर एक प्राणी पर दया रखनी चाहिए। इस पर बादशाह ने मुसलमानों के मान्य ग्रन्थ बहुत से उमरावों के सामने पढ़वाये और उनके दिल में भी इसकी सचाई जमा दी। पश्चात् उसने ढिंढोरा पिटवा दिया कि कल ईद के दिन कोई किसी जीव को न मारे।

आइने अकबरी नामकी किताब में लिखा है—"बादशाह कहा करता था, कि मेरे लिए कितने सुख की बात होती, यदि मेरा शरीर इतना बड़ा होता कि मांसाहारी लोग केवल मेरे शरीर ही को खा कर संतुष्ट हो जाते और दूसरों का भक्षण न करते। अथवा मेरे शरीर का एक अंश काट कर मांसाहारियों को खिला देने के बाद यदि वह अंश वापस प्राप्त हो जाता, तो भी मैं बहुत प्रसन्न होता- मैं अपने ही शरीर द्वारा मांसाहारियों को तृप्त कर सकता"। इन सब बातों से मालूम होता है कि अकबर बादशाह बड़ा ही दयालु और दयाधर्म पर पक्का विश्वास रखने वाला था। श्रीहीरविजय सूरि के उपदेश से उसने पक्षियों को पींजरों से छुड़वाया था, मच्छीमारों को

मछलियाँ मारने से रोका था, जैनियों के पर्यूषण पर्व के मौके पर सारे देश में जीवहिंसा होने की सख्त मनाईका हुक्म निकाला था। इस प्रकारके आचरणसे मालूम होता है कि सम्राट् अकबरका जैनधर्म से कितना अधिक सम्बन्ध था। अकबर के समय के एक पोर्चुगीज़ पादरी ने अपने पत्र में लिखा भी था, कि "अकबर जैन धर्म का अनुयायी है"।

## पाठ आठवाँ.

### सात कुव्यसन.

गुरु जी— लड़को! तुम यह जानते हो कि हम लोग जैन कहलाते हैं। हर एक जैनी को सात कुव्यसनों का त्याग करना चाहिये।

एक लड़का— गुरु जी! व्यसन किसे कहते हैं? हम लोग तो जानते ही नहीं हैं।

गुरु जी— तुम्हें जो बात नहीं मालूम, वह मुझ से क्यों नहीं पूछा करते। अच्छा सुनो—

व्यसन आदत को कहते हैं। बुरी आदत को कुव्यसन कहते हैं। कुव्यसन सात होते हैं। जैसे—१ जूआ खेलना, २ मांस खाना, ३ मदिरा पान करना, ४

शिकार खेलना, ५ वेश्या गमन, ६ परस्त्री सेवन, ७ चोरी करना ।

१ रुपये पैसे और कौड़ियों वगैरह से मूठ खेलना, हार जीत के ख़याल से शर्त लगा कर कोई भी काम करना, अफ़ीम या रुई के नीलाम के अंकों पर शर्त लगाना या रुपये पैसे रखना आदि जूआ कहलाता है। जूआ खेलने वाले जुआरी कहलाते हैं। उनका कोई विश्वास नहीं करता। क्योंकि जुए में हार होने से बेईमानी और चोरी करनी पड़ती है। जुआरी की सब निन्दा करते हैं। वे जाति के मुखिया और राजा से दण्ड पाते हैं। तास गंजीफा आदि जुए में ही शामिल हैं।

२ मरे हुए या मार करके त्रस जीव के कलेवर का खाना मांस खाना कहलाता है। मांस खाने वाले निर्दयी हिंसक या हत्यारे कहलाते हैं।

३ शराब भंग चरस गांजा वगैरह नशीली चीजों का सेवन करना मदिरा पान कहलाता है। इनका सेवन करने वाला शराबी भंगड़ी गंजेड़ी आदि बुरे शब्दों से पुकारे जाते हैं। शराबी लोगों को किसी पाप का डर नहीं लगता। उनकी बुद्धि नष्ट होजाती है। घर के लोग भी उन पर विश्वास नहीं करते। उनकी पर लोक में बहुत दुर्दशा होती है।

४ शेर चीता रीछ हिरण सुअर तथा और और पशु पक्षियों को तलवार बन्दूक भाले तीर या पत्थर वगैरह से मार डालने को शिकार खेलना कहते हैं। शिकार खेलना घोर पाप है। इन पापी लोगों को देख कर ही जंगली जानवर भयभीत हो जाते हैं।

५ वेश्या में रमना, उसके घर जाना, उसका नाच देखना वेश्या गमन कहलाता है। वेश्या-गमन करने वाले की सब लोग निन्दा करते हैं। उनका कोई विश्वास नहीं करता। और पर-भव में उन्हें नरक के असह्य दुख भोगने पड़ते हैं।

६ अपनी स्त्री के सिवाय अन्य स्त्रियों से किसी प्रकार का अनुचित सम्बन्ध रखना परस्त्री-सेवन कहा जाता है। पर स्त्री-सेवन करने वालों को इस लोक और परलोक दोनों में ही दण्ड मिलता है। इसलिए अपने से छोटी स्त्री को लड़की, बराबर वाली को बहिन और बड़ी को माता के समान समझना चाहिए।

७ बिना पूछे किसी की चीज़ उठा लेना चोरी है। चोरी करने वाले को सरकार से सज़ा तो मिलती ही है, साथ ही सब लोग घृणा करते हैं। कोई विश्वास नहीं करता। तथा नरक में जाकर दुष्फल भोगना पड़ता है। इसलिए किसी ने कहा है—

**जुवा खेलना मांस मद, वेश्या व्यसन शिकार।**
**चोरी पर रमणी रमण, सातों व्यसन निवार॥**

**प्रश्नावली**

कुव्यसन किसे कहते हैं? कुव्यसन कितने होते है? सातों के स्वरूप बताओ? नीचे का दोहा पढ़ो?

# पाठ नववाँ

## श्रेष्ठ मनुष्य

(१)

पर दारा की ओर जो न भ्रम से भी दृष्टि उठाते हैं।
शत्रु समक्ष न पीठ दिखाते चाहे कट मर जाते हैं॥
कभी दीन जन जिनके घर से विमुख न होकर जाते हैं।
वीर पुरुष इस धरणी तल पर धन्य वही कहलाते हैं॥

(२)

जननी जन्मभूमि हित अपना तन मन अर्पण करते हैं।
न्याय-विहित सत्कर्म मार्ग में तनिक न मन में डरते हैं॥
जाति देश दुखियों के दुख के सागर में नित तरते हैं।
अचला-रत्न वही निज यश से जग को उज्वल करते हैं॥

(३)

पहले मन में निर्णय करके जिसे शुरू कर देते हैं।
फिर उसको मरके या पूरा करके ही दम लेते हैं॥

बाहु-दण्ड से विचलित नौका निर्बल नर की खेते हैं।
दुर्लभ व्यक्ति वही अवनी के आतप हर सुख देते हैं॥

( ४ )

आने पर अवकाश कहीं जो सुख से कभी न सोते हैं।
वसुधा भर में बीज प्रेम का प्रमुदित होकर बोते हैं॥
निज पर के झंझट में पड़कर काल न अपना खोते हैं।
उन्नति शील वही जन जग के नागर नेता होते हैं॥

( ५ )

परम पिता परमेश्वर ही के गुणगण केवल गाते हैं।
माता पिता बन्धु भगिनी के गिनते झूठे नाते हैं॥
भ्रातृ-भाव से मनुज मात्र को सरल सुपन्थ दिखाते हैं।
वे ही विज्ञ भक्त ईश्वर के पुण्य परम पद पाते हैं॥

( पद्यप्रदीप )

---

परदारा-- परस्त्री
धरणी--पृथ्वी
सागर-- समुद्र
अचला--पृथ्वी
नेता--मुखिया.

बाहुदण्ड--भुजदण्ड, भुजा रूपी डंडा
अवनी--पृथ्वी
अवकाश--फुर्सत, छुट्टी
वसुधा--पृथ्वी
प्रमुदित--प्रसन्न, खुश.

# पाठ दसवाँ.

## दामन्नक की कथा ।

गजपुर नगर में सुनन्द नामक कुलपति रहता था। वह एकवार अपने मित्र जिनदास के साथ जंगल की सैर करने गया । वहां उसे धर्माचार्य के दर्शन हुए। उस ने उन्हें वन्दना की। धर्माचार्य ने अहिंसा धर्म का उपदेश दिया। उसे सुनकर सुनन्द बोला- मैं हिंसाका त्याग तो कर दूं, पर कुलधर्म कैसे छोड़ सकता हूं ? आचार्य ने कहा- "धर्म का ही आचार सचा आचार है, धर्माचार के सामने कुलाचार की कुछ भी क़ीमत नहीं है। कुलाचार या रूढ़ियों का पालन करने के लिये धर्माचार में बाधा नहीं देनी चाहिए। मतलब यह है कि धर्म विरुद्ध व्यवहार का त्याग करना आवश्यक है"। आचार्य का उपदेश सुनकर सुनन्द ने लौकिक आचार की परवाह न कर अहिंसा-धर्म को ग्रहण कर लिया।

दुर्भाग्य से देश में दुष्काल पड़ा। अन्न के लाले पड़ गये। सुनन्द की स्त्री ने मछलियाँ मार कर लाने को कहा, पर सुनन्द न माना। अन्त में उसकी स्त्री

और मित्रों ने बहुत आग्रह किया, और उसे लाचार होना पड़ा। सुनन्द गया. उसने पानी में जाल भी डाला, मगर जितनी मछलियाँ जाल में फँसी, सब छोड़ दीं। आखिर शाम को खाली हाथ घर आगया। दूसरे दिन भी स्त्री की प्रेरणा से गया. और उसी तरह वापिस लौट आया। तीसरे दिन मछली का एक पांव टूट गया। सुनन्द को बहुत पश्चात्ताप हुआ। अन्त में उसने अनशन किया और मरण पाकर राज-गृही नगरी में मणिधार सेठ के घर जन्म लिया। उसका नाम दामन्नक रक्खा गया।

जब दामन्नक आठ वर्ष का हुआ, तो महामारी का भयंकर प्रकोप हुआ। दामन्नक का सारा कुटुम्ब महा-मारी का शिकार हो गया। दामन्नक दर दर का भिखारी हो गया। वह एक दिन सागरसेठ के घर भिक्षा माँगने गया था। वहाँ साधुजी भी आहार के लिये पधारे थे। दामन्नक को मुनि ने देख कर कहा–"यह भिखारी इस सेठ के घर का स्वामी होगा" सागर ने यह बात सुन ली। उसने किसी उपाय से भिखारी को मरवा डालने का निश्चय करके एक चाण्डाल को बहुत सा द्रव्य देकर मार डालने के लिए कहा।

लोभी चाण्डाल दामन्नकको लड्डूका लालच देकर जंगल में ले गया। वहां, उस दीन हीन गरीब बालक को देखकर चाण्डाल का दिल मोम हो गया। उसने सोचा—"इस बेचारे ने सेठ का क्या अपराध किया होगा? मैं अत्यन्त पातकी हूं, कि इस बालक की हत्या करना चाहता हूं" यह सोचकर उसने बालक से कहा—"मूर्ख! तू यहाँ से भाग जा। अगर यहां रहेगा, तो सागर सेठ तुझे मार डालेगा" दामन्नक डर के मारे भाग गया। चाण्डाल ने उसकी अंगुली काटकर सेठ को दिखा दी। कटी हुई अंगुली वाला दामन्नक भागता हुआ सागर सेठ ही के गोकुल में पहुँचा। गोकुलपति के कोई सन्तान न थी, उसने उसे निज के लड़के की तरह पाला। दामन्नक अब युवक होगया।

एक दिन सागर सेठ अपने गोकुल में आया। उसने दामन्नक को देखकर नंद गोकुलपति से पूछा—यह कौन है? गोकुलपति ने आदि से अन्त तक का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सागर सेठ विचारमें पड़ गया। उसने सोचा—कदाचित् साधु का वचन मिथ्या न हो। यह सोच यकायक घर लौटने लगा। नन्द ने

पूछा- "इतने जल्दी वापिस क्यों जाते हैं"? सेठ बोला-"आवश्यक कार्य है"। गोकुलपति नन्द ने कहा, मेरे लड़के को घर भेज दीजिये। वह आपका कार्य कर लावेगा। सागर सेठ ने अपने लड़के के नाम एक पत्र लिखकर दामन्नक को दे दिया, दामन्नक कागज़ ले कर चल दिया।

दामन्नक चलते चलते थक गया। रास्ते में एक कामदेव का मन्दिर था। वह उसीमें लेट गया और थकावट के मारे सो गया। उसी समय सागर सेठ की विषा नाम की कन्या कामदेव की पूजा करने आई थी। वह दामन्नक की अँगरखी में बंधा हुआ पत्र देख कर बांचने लगी उस में लिखा था "आते ही दामन्नक को शीघ्र विष दे देना। इस विषय में विचार न करना"। पत्र पढ़ने से विषा के हृदय में भारी धक्का लगा। उसने सोचा- पिता पत्र लिखते समय एक काना लगाना भूल गए हैं। उसने आंख का काजल निकाल कर सलाई से काना लगा दिया। अब विषके स्थान पर विषा हो गया। विषा कामदेव की पूजा करके वापिस घर चली आई।

दामन्नक पत्र लेकर घर पहुंचा। सागरदत्त के लड़के ने महोत्सव पूर्वक विषा के साथ दामन्नक का विवाह कर

दिया। सागर कुछ दिनों बाद घर आया, और ब्याह का समाचार सुन बहुत दुःखी हुआ। वह चांडालके घर गया और उससे बोला—"हे पापी! तूने यह क्या किया कि दामन्नक को जीता छोड़ दिया। अगर अब भी मेरा काम करेगा, तो मन चाहा द्रव्य दूंगा। चाण्डाल बोला—"मालिक! अब आप जैसा कहेंगे, वैसा ही करूंगा"। सेठ ने संकेत करके कहा "मैं आज सन्ध्या समय देवी के मंदिर में जिसे भेजूं उसे मार डालना"।

सेठ घर आकर बनावटी नाराज़गी दिखाकर बोला अरे मूर्खो! अब तक देवी की पूजा नहीं की ?" यह कह कर पूजनकी सामग्री तैयार करके दामादको पूजन के लिये भेज दिया। राह में दामन्नक को उसका साला मिल गया। वह बहिनोईसे सब सामग्री लेकर स्वयं पूजन करने चला गया। चाण्डाल पहले ही से वहाँ मौजूद था। सागर के लड़के के पहुँचते ही उसने तलवार से उसका काम तमाम कर दिया। जब सागर को यह समाचार मालूम हुआ तो वह बहुत दुखी और अन्त में पुत्र-शोक से शोकित होकर चल बसा। दामन्नक राजाज्ञा से घर का मालिक हुआ।

सच है—अहिंसाधर्म का माहात्म्य अपरंपार है।

उससे पैदा हुआ पुण्य जिसकी सहायता करता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सका। इस कथा से यह भी मालूम होता है कि सच्चे महात्माओं के वचन कभी मिथ्या नहीं होते। इसलिये उन पर अविश्वास न करना चाहिये। दूसरे—जो किसी प्रकार के स्वार्थ की साधना के लिये कुत्सित प्रयास करते हैं, वे कभी सफल नहीं हो सकते। बालकों को यह भी समझना चाहिये कि अच्छी या बुरी घटना महात्मा पुरुषों के कहने से नहीं होती, पर जो घटना होने वाली होती है, उसकी वे कभी कभी सूचना कर देते हैं।

प्रश्नावली—

कुलाचार और धर्माचार में कौन और क्या प्रधान है? कुलाचार और धर्माचार से क्या समझे? दानवक की रक्षा क्यों हुई?

# पाठ ग्यारहवाँ.

## सच बोलना.

जो बात जैसी सुनी हो, कही हो, अथवा जिस कार्य को किया हो या दूसरों को करते हुए देखा हो, उसको

वैसा ही कह देना सच बोलना कहलाता है । लेकिन जिस सत्य बचन से किसी दूसरे पर भारी विपत्ति आ पड़े ऐसे सत्य को महापुरुष असत्य कहते हैं। हां, उस में यदि जरा भी स्वार्थ या मोह का अंश हो तो वह सत्य नहीं असत्य ही है । सदा सच बोलने वाले बालक को माता पिता गुरु भाईबन्द सब प्यार करते हैं। जो एक भी वार असत्य बोलते हैं उनकी साख चली जाती है । फिर उनकी सच्ची बात का भी कोई विश्वास नहीं करता। बहुतसे लड़के हँसी मज़ाकमें झूठ बोलना एक साधारण बात समझते हैं। पर यह उनकी निरी भूल है । उस समय झूठ बोलने से भी न जाने क्या अनर्थ हो जाय? कई लोग किसी खास मौके पर झूठ बोलने में अपनी बड़ाई समझते हैं। परन्तु समझदार लोग– चाहे उसके प्रेमी ही क्यों न हों– उन्हें बुरा ही समझते हैं। झूठ कब तक छिपाया जा सकता है? कभी न कभी अवश्य ही भेद खुल जायगा, और तब उन्हें लज्जित होना पड़ेगा । झूठ बोलनेकी अपेक्षा चुप रहना अच्छा है । इस के सिवाय दो अर्थ वाला या संशय उत्पन्न करने वाला सत्य वचन बोलना भी बुरा है । श्रीहेमचन्द्राचार्य ने कहा है– "झूठ बोलने

से मनुष्य हलका पड़ता है, उसकी निन्दा होती है, उसका पतन होता है। इसलिए झूठ बोलना छोड़ देना चाहिये।

भले मनुष्य को चाहिए कि कभी झूठ न बोले, चाहे कैसी ही मामूली या हँसी की बात क्यों न हो। आंधी से जिस प्रकार बड़े बड़े वृक्ष उखड़ कर गिर जाते हैं, उसी तरह झूठ से समस्त पुण्यों का नाश हो जाता है। जैसे बदपरहेज़ी करने से रोग उभड़ आता है वैसे ही झूठ बोलने से वैर झगड़े अविश्वास आदि दोष फूट निकलते हैं।

डर से अथवा दूसरे को खुश करने के लिये कभी झूठ न बोलना चाहिए। सचाई, सम्यग्ज्ञान और सम्यक चारित्र की नींव है। इसलिये जो सत्य बोलते हैं, उनके चरणों की रज से पृथ्वी पवित्र होजाती है"।

सच्चा मनुष्य सदा निडर प्रसन्न और सुखी रहता है। कहावत भी है— "सांच को आंच नहीं"। इसके विपरीत, झूठे मनुष्य के दिल में सदा धुकपुक लगी रहती है, वह प्रसन्न नहीं रह सकता, और सदा दुखी रहता है। इसलिये हमें चाहिये कि हम सदा

सत्य बोलें, कभी असत्य न बोलें; और असत्य बोलने वालों की संगति न करें। कहा है—

सांचे आप न लागहीं, सांचे काल न खाय।
सांचे को सांचा मिले, सांचे मांहि समाय॥

# पाठ बारहवाँ

## असत्य का फल.

बालको! तुम पढ़ चुके हो कि हर एक को सदा सत्य बोलना चाहिये। इस समय तुम्हें बताया जाता है कि झूठ बोलने से क्या हानि होती है।

शुक्तिनाम की नगरी में अभिचंद्र राजा था। उसके बेटे का नाम वसु था। वह छुटपन से ही सच बोलता था। उसी नगरी में क्षीरकदम्बक उपाध्याय रहता था। उसके लड़के का नाम पर्वत था। पर्वत स्वभाव से ही कुटिल था। एक वसु दूसरा पर्वत और तीसरा नारद ये तीनों क्षीरकदम्बक उपाध्याय के पास पढ़ते थे। किसी समय क्षीरकदम्बक छत पर बैठा था। तीनों शिष्य वहीं सोरहे थे। उसी समय दो चारण मुनि आकाश-मार्ग में बातें करते हुए निकले। उनमें से एक ने कहा— "इन तीनों में एक तो स्वर्गगामी है, और

दो नरकगामी हैं''। मुनि की यह बात सुन कर उपाध्याय को बड़ा उद्वेग हुआ। उसने परीक्षा करने की ठानी कि कौन स्वर्गगामी और कौन नरकगामी है?

निदान उसने आटे के तीन मुर्गे बनाये और तीनों शिष्यों को देकर कहा—जाओ, जहां कोई न देख सके वहीं इन्हें नष्ट कर आओ। वसु और पर्वत किसी निर्जन स्थान में जाकर मुर्गों को नष्ट कर आये। नारद इधर उधर घूमा, पर मुर्गे को वापस ले आया। क्षीरकदम्बक ने पूछा—''क्यों नारद! तू वापस क्यों ले आया'' ?

नारद—'' गुरु महाराज! देव दानव और सर्वज्ञ सब जगह देख रहे हैं। ऐसी कोई जगह नहीं मिली, जहां कोई न देखता हो। इसलिये मैं ने आपकी आज्ञा भंग नहीं की'' नारद का उचित उत्तर सुन कर उपाध्याय क्षीरकदम्बकको निश्चय होगया कि यही स्वर्गगामी जीव है। कुछ दिन बाद उपाध्याय का शरीरान्त हो गया। पर्वत उसकी गद्दी पर बैठा। वसु राजा हो गया। नारद अपने गाँव चला गया।

एक दिन नारद पर्वत से मिलने आया। पर्वत अपने शिष्यों को पाठ पढ़ा रहा था। पढ़ाते समय उ-

सने अज शब्द का अर्थ बकरा किया। और कहा—यज्ञ में बकरे का होम करना चाहिये। यह सुन नारद ने कहा— "गुरुजी ने तीन साल का पुराना धान अर्थ बताया था"। नारदको भी असली अर्थ याद आ गया, परन्तु अपमानके डरसे हठ न छोड़ा। इस तरह दोनों में मतभेद हो गया और राजा वसु को निपटारे के लिये चुना। शर्त यह रक्खी गई कि जिसका कहना असत्य हो, उसकी जीभ काट ली जाय।

यह शर्त पर्वत की माता को मालूम हुई, तो उसने वसु के पास जाकर पुत्र-भिक्षा मांग ली। नारद और पर्वत भी वहीं पहुँचे। बात तो नारद की सच्ची थी, पर पुत्र-भिक्षा दे देने के कारण वसु ठीक बात न कह सका। इसलिये उसने कहा—"अज के दोनों अर्थ होते हैं—"धान अर्थ भी हो सकता है और बकरा भी"। यह सुनते ही देवता ने फौरन ठोकर लगा कर आसन से गिरा कर मार डाला। वह मर कर नारकी हुआ। पर्वत भी पीछे मरा और वह भी नरक में गया।

प्यारे बालको! इस कथा से तुम्हें यह मालूम हो गया होगा कि झूठ बोलने से कितने अनर्थ होते हैं। अगर राजा वसु झूठ न बोलता तो वह नरक के डरावने दुःख न सहता। और लाखों पशुओं की हत्या

जो कि यज्ञों में तब से चालू हो गई, न होती। इस लिए समझ बूझ कर सदा सत्य ही बोलना चाहिये।

प्रश्नावली—

सत्य किसे कहते है ? अर्द्ध-सत्य का एक उदाहरण बताओ? "अज के दोनों अर्थ होते हैं-धान अर्थ भी हो सकता है और बकरा भी" इस प्रसंग में वसु का कहना कौनसा असत्य है?

# पाठ तेरहवाँ

## अदत्तादान का फल

लोक तीन हैं। एक अधोलोक दूसरा मध्यलोक और तीसरा ऊर्ध्वलोक। मध्यलोक में असंख्यात द्वीप हैं। उन सब के बीच में जंबूद्वीप है। जंबूद्वीप में सात क्षेत्र हैं। हम लोग जिस क्षेत्र में रहते हैं, वह भरत क्षेत्र कहलाता है। इसी भरत क्षेत्र में बनारस नामकी नगरी है। इस नगरी में किसी समय धनदत्त नाम का एक सेठ रहता था। उसके लड़के का नाम नागदत्त था। वह बहुत गुणी था। उसके दिल में निरन्तर दया का वास रहता था।

उसी बनारस नगरी में एक प्रियमित्र नामक

सेठ रहता था। उसकी बेटी का नाम नागवसु था।

किसी समय नागवसु ने नागदत्त को देख कर सोचा- इन्द्र के समान पराक्रम वाला यह कौन होगा? ऐसे गुणी और सुन्दर पति के विना स्त्री का जीवन बकरी के गलेके स्तन के समान व्यर्थ है। इस लिये इस जिन्दगी में इस को ही पति बनाऊंगी, अन्य किसी को नहीं। अगर ऐसा न होसका तो दीक्षा ले लूंगी। इस प्रकार मन में दृढ़ निश्चय करके वह घर आई, परन्तु उसका जी किसी काम में न लगा। उसे न भोजन की सुध थी न निद्रा की परवाह-- रात दिन नागदत्त ही की चिन्ता में मग्न रहने लगी। जब उसके माता पिता को उसकी दशा का ज्ञान हुआ तो वे बड़े दुखी हुए। आखिर उनके अत्यन्त आग्रह करने पर नागवसु की सखी ने बताया कि यह नागदत्त के साथ पाणिग्रहण करने की प्रार्थना करती है। पिता ने पुत्री का अभिप्राय जानकर नागदत्त के पिता से प्रार्थना की और कहा-"नागवसु और नागदत्त की अच्छी जोड़ी है, इस सम्बन्ध को आप स्वीकार करें"।

एक दिन किसी कोटपाल ने नागवसु को देखा, वह उस पर मोहित होगया। कोटपाल ने नागवसु

के पिता से मंगनी की किन्तु उसने उत्तर में कहा- नागवसु नागदत्त में अनुरक्त है, इस लिये उसे दे दी है। कोटपाल नागदत्त के छिद्र देखने लगा। सच है दुष्ट लोग अकारण ही वैरी बन जाते हैं।

किसी समय राजा का रत्नों से जड़ा हुआ कुंडल खो गया। वह कुंडल कोटपाल को मिल गया। उसने रात के समय नागदत्त के घर जाकर, उसके कान में वही कुंडल पहना दिया। प्रातःकाल होते ही नागदत्त को गिरफ्तार करके राजा के पास ले गया। राजाने चोरी के अपराध में उसे सूली पर चढ़ने की सज़ा दी। कोतवाल सूली चढ़ाने की जगह ले गया। किन्तु ज्यों ही नागदत्त को सूलीपर चढ़ाया, त्योंही सूली टुकड़े टुकड़े होगई। कोटपाल ने जल्लादों को तलवार से शिर उतार लेने की आज्ञा दी, किन्तु पुण्य जिसकी सहायता करता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। नागदत्त को वह तलवार फूल-माला सी लगी। जल्लाद यह अचम्भा देखकर चकित होगये और राजाके पास जाकर हाथ जोड़कर सब हाल कह सुनाया। यह हाल सुनकर राजा अपनी भूल पर पछताया और नागदत्त के निकट जाकर सत्कार

पूर्वक ले आया। अन्त में राजा ने असलियत को जान कर कोटपाल को देश निकाला दिया, और सर्वस्व हरण कर लिया। सच है-पाप का फल शीघ्र ही भोगना पड़ता है।

**प्रश्नावली—**

लोक कितने हैं? भरतक्षेत्र कौन कहलाता है? जम्बूद्वीप में कितने क्षेत्र हैं? नागदत्त का सूली और तलवार से प्राणान्त क्यों नहीं हुआ?

# पाठ चौदहवाँ.

## घमण्डी का सिर नीचा.

किसी नगर में एक संन्यासी रहता था। उसकी स्मरणशक्ति बहुत तेज़ थी। वह एक वार जो बात सुन पाता, उसे याद कर लेता था। उसके पास खोरक नामक एक चांदी का वर्तन था। एक दिन अपनी बुद्धि के घमण्ड में आकर उसने प्रतिज्ञा की—"जो कोई मुझे नई बात सुनावेगा, उसे यह वर्तन देदूंगा"। परन्तु उसे कोई भी नई बात नहीं सुना सका। क्योंकि जो कोई नई बात सुनाता वही उसे याद हो

जाती थी। और फिर वह उसे सुना देता और कहता- मैंने यह तो पहले भी सुनी है। अगर न सुनी होती तो जैसीकी तैसी कैसे सुना सकता?। इस तरह उसकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई। इसी समय में किसी दूसरे साधु ने उसकी प्रतिज्ञा का हाल सुना। उसने सन्यासी के पास आकर कहा—मैं नई बात सुनाऊंगा। सब लोग इकट्ठे होकर राजसभा में गये। होड़ बदी गई। होड़ के अनुसार साधु ने पढ़ा—

मेरा पिता, पिता तेरे से; मुद्रा मांगे पूरी लाख।
पहले अगर सुना तो देदे, नहिं तो खोरक आगे राख॥१॥

यह सुन कर सन्यासी चुप हो रहा, कुछ भी न बोल सका। आखिर सब के सामने उसे लज्जित होना पड़ा।

बालको, तुम यदि बुद्धिमान् हो तो बुद्धि का अभिमान न करो। अभिमानी का अभिमान सदा नहीं टिक सकता। आखिर लज्जित होता ही है।

# पाठ पन्द्रहवाँ.

## अहंकार और मायाचार।

अहंकार पर्वत के समान है। जैसे पर्वत से नदियां निकलती हैं, वैसे ही घमण्ड से विपत्ति रूपी नदियों का उद्‌गम होता है। पर्वत पर दावाग्नि और दावाग्नि से धुंआ होता है, और घमण्ड में भी क्रोध रूपी अग्नि, और उससे होने वाला हिंसा रूपी धुंआ होता है। घमण्डी में नाममात्र भी कोमलता नहीं होती। इसलिये विनीत आचरण करो और अहंकार को छोड़ो।

मदोन्मत्त पुरुष क्या २ अनर्थ नहीं करते? वे अपनी और दूसरों की शान्ति को भंग करते हैं, अपनी सुबुद्धि की पर्वाह नहीं करते, दुर्वचन बोलते हैं, शास्त्रों के अंकुश को नहीं गिनते, स्वेच्छाचारी हो जाते हैं और विनय को ताख में रख देते हैं। इसलिये अहंकार को छोड़ देना चाहिये।

अहंकार धर्म अर्थ और काम को नष्ट कर डालता है। वायु जैसे मेघों का नाश करता है, वैसे ही अहंकार उचित आचारण का नाश कर देता है। इससे जीवन बिगड़ जाता है और संसार में अपयश होता है। अत-

ज्ञान प्रतिष्ठा तपस्या ऋद्धि जाति कुल ऐश्वर्य बल, इन आठ में से किसी का अभिमान न करो।

## मायाचार

छल कपट करने को मायाचार कहते हैं। मायाचारी को मायावी कहते हैं। मायावी की सच्ची बात का भी कोई विश्वास नहीं करता। शास्त्रों में लिखा है कि मायावी मनुष्य मर कर पशु पक्षियों में पैदा होता है। पशुओं को कैसे कैसे भयानक कष्ट सहने पड़ते हैं, यह बात तो हम आंखों देखते हैं। यह सब प्रायः पहले जन्म के मायाचार ही का फल है। जहां माया है, वहां कुशल नहीं। माया, सत्य रूपी सूर्य को अस्त करने के लिये सन्ध्या के समान है। वह दुर्गति में ले जाती है और चित्त की शान्ति तथा सरलता को हर लेती है। इसलिये माया को दूर ही से हाथ जोड़ना चाहिये। जो लोग बड़ी बड़ी कोशिशें करके मायाचार से दूसरों को ठगते हैं, वे दूसरों ही को नहीं ठगते, अपने आपको भी ठगते हैं; क्योंकि वे अपने आपको स्वर्गीय सुखों से और मुक्ति से वंचित करते हैं। अर्थात् जो लोग मायाचार से दूसरों को ठगते हैं, उन्हें न तो मुक्ति मिलती है न स्वर्गीय आनन्द।

जैसे बिल्ली दूध पीते समय, डंडे की ओर नहीं देखती वैसे ही मायाचारी जीव धन की लालसा के वश होकर आने वाले कष्टों को नहीं देखता, इसलिये सुख चाहने वालों को माया का त्याग कर देना चाहिये।

## प्रश्नावलि.

मद कितने और कौन२ हैं? अहंकार और मायाचार करनेसे क्या हानि है?

# पाठ सोलहवाँ.

## लोभी की दुर्दशा.

जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन का है। उस एक लाख योजन विस्तार वाले जम्बूद्वीप में, भरतक्षेत्र में पद्मपुर नामका एक नगर है। उसमें सागर नामक एक धनाढ्य सेठ रहता था। वह जूठे हाथ से कौआ भी न उड़ाता था। उसकी स्त्री का नाम गुणवती था। गुणवती 'यथा नाम तथा गुण' वाली कहावत को चरितार्थ करती थी। उसके चार पुत्र थे।

एक समय सागर सेठ के चारों पुत्र, उससे आज्ञा लेकर व्यापार के लिये किसी दूसरे देश गये। वह अपने बेटों की बहुओं से सदा सशंक रहता था।

इसलिये उसने घर के सामने अपना आसन जमाया। एक बार रत्नों की परीक्षा के लिये राजा ने सागर सेठ को बुलाया। इतने में एक फ़क़ीर उसके घर आया और बेटों की बहुओं ने भोजन देकर उसे संतुष्ट किया। फ़क़ीर बहुत प्रसन्न हुआ।

उसने स्त्रियों को एक मन्त्र बताया और कहा—यह मंत्र पढ़ कर, किसी काठ पर उड़द फेंक कर उससे कहना "अमुक जगह पहुँचा दे" तो वह काठ मंत्र की शक्ति से वहीं पहुँचा देगा। इतना कह कर फ़क़ीर चला गया। चारों स्त्रियों ने मिल कर एक मोटासा लक्कड़ मकान में रख छोड़ा। सागर सेठ को इस प्रपंच की ज़रा भी ख़बर न पड़ी।

एक नाई सागर सेठ की चरणचंपी करने के लिये सदा आया करता था। एक दिन उसने उस मोटे और भारी लक्कड़ को देख कर सोचा—यह भारी लक्कड़ यहां कैसे आया होगा? हो न हो, इस में कोई गुप्त रहस्य अवश्य है। यह सोच वह नाई रात को वहीं छिप गया। जब रात हो गई और सेठ निद्रा में मग्न हो गया, तो चारों स्त्रियां लक्कड़ पर सवार हो कर मन्त्र के ज़ोर से रत्नद्वीप पहुँचीं और अपना मनोरथ

पूर्ण करके लौट आईं। नाई यह देख कर सोचने लगा, अरे! ये स्त्रियां कितनी निडर हैं! इनका साहस कैसा विचित्र है! दूसरे दिन जब सेठ सो गया तो नाई उस लक्कड़ की पोलमें घुस रहा। सदा की भांति स्त्रियां रत्नद्वीप पहुँचीं। नाई ने भी जाकर वहां से कुछ रत्न बटोरे और स्त्रियों का हाल मालूम करके पहले ही आकर लक्कड़ की पोल में घुस गया। पश्चात् स्त्रियां लक्कड़ पर सवार हुईं और घर आ पहुँचीं।

नाई ने जो रत्न उठाये थे, वे बहुत क़ीमती थे। उसके पास बहुत धन होगया; इसलिए उसने आकर रोज़ २ सागर सेठ की चाकरी करना छोड़ दिया। एक दिन नाई आया। सेठ ने बहुत दिनों बाद आया देख उसे उलाहना दिया। लेकिन नाई लोग तो पहले नम्बरके धूर्त होते हैं–कुछ बहाना बनाकर उसने अपना रत्न दिखाया। सेठ रत्न देख कर बोला– मूर्ख! तू ने यह रत्न कहां पाया? नाई ने उत्तर में आदि से लेकर अन्त तक का सब वृत्तान्त कह सुनाया। सेठ लोभी था, इस कारण पतोहों की उच्छृंखल प्रवृत्ति से उसे दुख न हुआ, पर रत्न पाने की तीव्र लालसा उसके मन में जाग उठी। दूसरे दिन वह नाई की नाईं पोल

में घुस कर रत्नद्वीप गया और लौटते समय अपनी कृपणताके अनुसार बहुत से रत्नों की एक गठड़ी बांधी। बोझ बहुत हो गया था, इस कारण लक्कड़ तेजी से न चल कर नीचे उतरने लगा। आज लक्कड़ की यह दशा देख कर सब आपस में कहने लगीं- यदि घर पहुंचने में देर होगी, तो श्वसुर नाराज़ होगा। अब क्या उपाय करना चाहिए? सेठ यह बात सुन कर बोला-"डरो मत। तुम्हें जिसका डर है, वही तुम्हारा श्वसुर मैं हूं"। स्त्रियाँ सेठकी बात सुन कर अकचका गई। आखिर उन्होंने निश्चय किया कि इसे समुद्र में पटक देना चाहिये। यदि ऐसा न किया, तो अवश्य ही यह अपने गुप्त आचरण का भंडाफोड़ कर देगा। यह निश्चय करके उन्होंने श्वसुर को रत्नों की गठड़ी सहित समुद्र में पटक दिया।

प्यारे बालको! लोभका आकर्षण बहुत तीव्र होता है। लोभी हिताहित का विचार नहीं करता। जिससे अहित हो, यहां तक कि जान जाय, ऐसे लोभ से लाभ क्या? अगर सागर में लोभ न होता, या लोभ की मात्रा कम होती, तो क्या उसकी इस प्रकार दयनीय दुर्दशा होती? कदापि नहीं। इसलिये हमें मन को वश में रखना चाहिये। लालसाओं के हाथका कठपुतला

न धन कर उन पर विजय प्राप्त करना मानव-कर्त्तव्य का सर्वोच्च आदर्श है।

**प्रश्नावलि—**

इस कथा से क्या सीखना चाहिये? सागर सेठ ने पतोहों का अनाचार नाई से सुनकर क्यों उसका प्रतिवाद नहीं किया? "जूठे हाथ से कौआ न उड़ाता था" इसका क्या मतलब है?

# पाठ सत्तरहवाँ.

## धन

यह सब लोग जानते हैं कि कोई भी सांसारिक कार्य विना धन के नहीं होते। हर एक कार्य में धन की आवश्यकता होती है। किन्तु खर्च करने से पहले यह विचार करना चाहिये कि धन क्या वस्तु है? कैसे पैदा होता है? वह किन २ कामों में आसकता है? धन वह उत्तम बलवान् और मोहक पदार्थ है, जिसके लिए लोग कठिन से कठिन और कलंकित से कलंकित कार्य करते भी नहीं हिचकते। सिपाही धन ही के लिये युद्ध में लड़ते और प्राण दे देते हैं। उच्च कुलों के बहुत से लोग नीच कुलों की सेवा करते

और उनके दुर्वचन सहते हैं। बहुत से लोग चोरी डाकेज़नी और हत्याएँ करके क़ैद भोगते और फाँसी पर लटकते हैं। धन ही के लोभ से बहुतेरे लोग अपने प्राणों से प्यारे बालकों को बेच डालते हैं। कोई २ निर्दयी लोग अपनी छोटी कन्याओं को अधमरे बूढ़ों के साथ ब्याह कर उन्हें सारी ज़िन्दगी दुखी करके पाप की पोटली बांधते हैं। खटीक कसाई चिड़ीमार धीवर आदि जान बूझकर भी, कि यह महापाप है. धन के लिये हिंसा करते हैं। बहुतेरे भूखों मरने पर वैरागी सन्यासी आदि बनते हैं, जटा बढ़ाते हैं, किन्तु पीछे लक्ष्मी के दास बन कर गली २ भटकते और धन-संग्रह करते हैं।

यद्यपि यह ठीक है कि मोक्षाभिलाषियों को धन विष के समान है, किन्तु संसार के कामों के लिये, तो वह सब से बड़ा सहायक है। जिसके पास धन है, जो श्रीमान् है उसका सर्वत्र ही सत्कार होता है। उसके उच्छृंखल बर्ताव के लिये, जाति के साधारण पुरुष यहां तक कि पंच लोग भी अंगुली नहीं उठा सकते। इसीसे अनेक पुरुष धन के लालच से व्यापार में झूठ बोलते, छल कपट करते, और बात कह कर मुकर जाते हैं । तात्पर्य यह है कि

जगत्में जितने अत्याचार जितने अन्याय और जितने पाप होते हैं, उन सब का प्रायः धन से सम्बन्ध होता है। परन्तु जो आत्म-हितैषी चतुर और उदार होते हैं, वे भयानक आपत्तियों का सामना करते हुए भी अन्याय से धनोपार्जन नहीं करते। बल्कि न्याय से जितना धन कमाते, उसीसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर लेते हैं। जो लोग व्यर्थ-व्यय नहीं करते वे थोड़े धन से भी अपनी गृहस्थी बखूबी चला सकते हैं।

बुद्धिमानों को चाहिए कि अनेक कठिनाइयों से अर्जन किये हुए धन को, यों ही न उड़ा दें। लेकिन ऐसे कामों में खर्च करें, जिससे बहुत जीवों को बहुत दिनों तक लाभ मिल सके और पुण्य तथा यश की वृद्धि हो। जैसे—विद्या की वृद्धि के लिये विद्यालय खुलवाना या उनको सहायता करना, पुस्तकें दान देना, कठिन शास्त्रोंको सरल कराकर सब के पढ़ने योग्य बनाना, रोगियों के लिये औषधालय खोलना, या औषधालयों में सहायता देना। आज कल बेचारी विधवाओं की बहुत दुर्दशा हो रही है। लोग उनकी शिक्षा दीक्षा की परवाह कम करते हैं। उनके उपकार के लिये विधवा-आश्रम खोलना या

दूसरी तरह सहायता पहुँचाना, अनाथ बालकोंको सहारा देना आदि कार्य करना चाहिए। इस प्रकार धन का सदुपयोग करने से धन की यश की और पुण्य की वृद्धि होती है। जो लोग लाखों करोड़ों रुपयों की चिन्ता में रहते हैं, पर पुण्य धर्म कुछ भी नहीं करते, उनका धन व्यर्थ और पाप ही का कारण है।

### प्रश्नावलि

धन का सदुपयोग कैसे हो सकता है? धन के लाभ और हानि बताओ?

## पाठ अठारहवाँ

### बारह भावनाएँ

१ राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सब को एक दिन, अपनी अपनी बार॥१॥
२ दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोइ न राखन हार॥२॥
३ दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान॥३॥
४ आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूं या जीवको, साथी सगा न कोय॥४॥

५ जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥ ५ ॥
६ दिपै चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिन गेह ॥ ६ ॥

सोरठा

७ मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटें सुधि नहीं ॥७॥
८ सतगुरु देय जगाय, मोह नींद जब उपशमे।
तब कछु बनै उपाय, कर्म चोर आवत रुकें ॥८॥
९ ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर सोधैं भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर ॥९॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार ॥१०॥
१० चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान ॥
तामें जीव अनादितें, भरमत है बिन ज्ञान ॥११॥
११ धन तन कंचन राज सुख, सबहि सुलभ कर जान
दुर्लभ है संसार में, एक यथारथ ज्ञान ॥१२॥
१२ जांचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिन्तारैन।
बिन जाचे बिन चिंतए, धर्म सकल सुख दैन ॥१३॥

# पाठ उन्नीसवाँ

## नारायण की परीक्षा।

### (२)

बालको! तुमने पहले पाठ में कृष्ण की गुणग्रहण करने की आदत के विषय में पढ़ा है। इस पाठ में उनके नीच युद्ध न करने का हाल बताया जाता है।

श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् को वन्दना करके अपने घर आ गये। इधर वह देव कुत्ते का रूप बिगाड़ कर, कृष्ण की घुड़साल में आया और सबके सामने एक उत्तम घोड़ा खोल कर चल दिया। सैनिकों ने उसका पीछा किया। इसलिए वहां बहुत कोलाहल मच गया। यह सब समाचार केशव ने सुना। सभी कुमार चारों ओर दौड़े, किन्तु वह देव दैवी शक्ति से सबको सहज ही परास्त करके धीरे धीरे चलने लगा। इतने में केशव आ पहुँचे। वे आकर बोले—क्या तू मेरा घोड़ा चुरा ले जायगा? देव बोला—हां, मैं घोड़ा हरने को समर्थ हूँ। अगर तुम में दम है तो मुझे पराजित करके घोड़ा लौटा लो। केशव उसके पौरुष पर प्रसन्न होकर बोले—हे महापुरुष! तू जो युद्ध करना चाहे, वही कर। ऐसा कहकर उन्होंने युद्धों के नाम गिनाना शुरू

किया। पर वह सब के लिये मनाई करता गया। अन्त में श्रीकृष्ण खिसियाकर बोले- तू ही बता, मैं कौन सा युद्ध करूँ? देव बोला–मैं चूतड़ भिड़ाकर युद्ध (चूतड़ युद्ध) करना चाहता हूँ। देव की बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत खिन्न हुए और कानों पर हाथ धर कर बोले–जा,घोड़े को ले जा, मैं नीचयुद्ध नहीं करूँगा। यह बात सुन देव बहुत प्रसन्न हुआ, और मन में सोचने लगा–अहो! नारायण धन्य हैं, जिनकी इन्द्र महाराज भी प्रशंसा करते हैं! यह सोच कर वह बोला- हे केशव! मैं आपके अश्व को अपहरण नहीं करना चाहता, किन्तु मैं आपके गुणोंकी परीक्षा करना चाहता था।यह कह कर इन्द्र की प्रशंसा से लेकर अन्त तक का सब हाल सुना दिया। श्रीकृष्णने आत्मप्रशंसा सुनकर,सिर नीचा कर लिया। देव बोला—हे महा- पुरुष! लोक में प्रसिद्धि है, कि देवता का दर्शन वृथा नहीं जाता। इसलिए मुझ से कुछ वर माँगिये। मैं वही वरदान दूँगा। श्रीकृष्ण बोले— द्वारका नगरी में इस समय बीमारी फैली है, उसे बन्द कर दो। देव ने एक भेरी देकर बतलाया कि इस भेरी को छह छह महीने बाद बजवाना। इसका शब्द बारह योजन की

दूरी तक सुनाई पड़ता है। जो इसका शब्द सुनेगा उसकी बीमारी मिट जायगी, और जो बीमारी होने वाली होगी, वह छह महीने तक न होगी। इतना कह कर देवता अपनी जगह चला गया। वासुदेव ने वह भेरी भेरीकार (भेरी बजाने वाले) को सौंप दी। तथा कह दिया कि इसे छह छह महीने बाद बजाना और इसकी रक्षा करना। यह आज्ञा देकर वासुदेव अपने महल में चले गये। दूसरा दिन हुआ। अनेक राजा-ओं के समक्ष वासुदेवने भेरी बजवाई। भेरी का बजा-ना था, कि तमाम रोग मिट गया।

दूर देश में रहने वाला एक धनिक रोगी भेरी के माहात्म्य को सुनकर द्वारका की ओर आ रहा था। दुर्भाग्य से वह इतना दूर रह गया कि भेरी के शब्द को न सुन सका। जब वह पीछे द्वारका में आया, तो सोचने लगा—अब क्या होगा? भेरी छह महीने बाद बजेगी और तब तक मेरा जीवित रहना कठिन है।

इस प्रकार सोचते विचारते, उसे एक उपाय सूझा। उसे ख्याल आया—जब भेरीके शब्द सुनने मात्र से रोग नष्ट होजाते हैं, तब उसके चमड़े को घिसकर पी जाने से रोग क्यों नष्ट नहीं होंगे? इसलिये भेरी वाले

को प्रलोभन देना चाहिये। निदान उसने भेरी वाले को धन देकर एक टुकड़ा मोल ले लिया। भेरी वाले ने उस टुकड़े के स्थान पर दूसरा टुकड़ा जोड़ दिया। इसी प्रकार एक २ करके भेरी का तमाम चमड़ा निकाल कर बेच दिया, और उनकी जगह थेगलियाँ जोड़ दीं। छह महीने बीते, बीमारीका उपद्रव प्रारम्भ हुआ, भेरी बजवाई गई। किन्तु अब की बार न तो बीमारी मिटी न उतना शब्द ही हुआ। श्रीकृष्ण ने भेरी को देखा तो उसमें थेगलियाँ ही थेगलियाँ लगी हुई नज़र आईं। यह देख कृष्णजी बहुत गुस्सा हुए और भेरी बजाने वाले को फाँसी की सज़ा दी।

बालको! इस कथा से हमें सीखना चाहिये, कि कभी कोई नीच काम न करें। कभी बेईमानी न करें। भेरी वाला अगर बेईमानी न करता तो क्यों फाँसी पर लटकता?

# पाठ बीसवाँ.

## संगति।

बच्चा जब उत्पन्न होता है, तब बहुत ही भोला-भाला होता है। न सदाचार की बात समझता है न

दुराचार की। किन्तु पीछे जैसी संगति में रहता है वैसा हो जाता है। संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अगर हम धर्मात्मा सदाचारी या विद्वान के साथ रहेंगे तो धर्मात्मा सदाचारी या विद्वान ही बनेंगे। यदि मूर्ख और दुराचारी की संगति करेंगे तो वैसे ही हो जावेंगे।

आचार्य सोमप्रभ ने कहा है— जैसे निर्दयी व्यक्ति धर्म और पुण्य नहीं कमा सकता, अन्यायी यश नहीं पा सकता, आलसी धनोपार्जन नहीं कर सकता, मूर्ख काव्यों की रचना नहीं कर सकता, दया रहित मनुष्य तप नहीं कर सकता, थोड़ी बुद्धि वाला गूढ़ शास्त्र नहीं पढ़ सकता, अन्धा वस्तुओं को नहीं देख सकता, चंचल चित्त वाला ध्यान नहीं कर सकता, वैसे ही सत्संगति से रहित मनुष्य अपना कल्याण नहीं कर सकता।

सत्संगति से सब अभीष्ट सिद्ध होते हैं। सत्संगति से सुबुद्धि पैदा होती है, अज्ञान का नाश होता है, और गुणवानों में श्रेष्ठ हो जाता है। सत्संगति से सद्गुणों की बढ़ती होती है। सत्संगति नरक गति और तिर्यंच गति में जाने से बचाती है।

अगर तुम विद्या बुद्धि चाहते हो, निरन्तर निडर रहना चाहते हो, न्याय-मार्ग में चलना चाहते हो, दुर्जनता छोड़ना चाहते हो, पुण्यवान् होना चाहते हो, अशुभ कर्मों को रोकना चाहते हो, यहां तक कि मुक्ति चाहते हो, तो गुणी सज्जनों का संग करो। खराब आदमियों का संग छोड़ो। कहा है—

सज्जनसंगति के किये, उन्नत है सब लोय।
कमलपत्र पर जल कणा, मुक्ताफल सम होय ॥१॥
चंदन शीतल जगत में, तातें शीतल चंद।
चंदन चंदा तें अधिक, साधु-संग सुख कंद ॥२॥
तेजस्वी के संग तें, क्षुद्र तेज युत होय।
ज्यों दर्पन रवि किरन तें, दहन शक्ति अवलोय ॥३॥
साध्य करै दुःसाध्यको, सत्संगति वश मंद।
पुष्प संग शिव सिर चढ़ी, चिउंटी चूमें चंद ॥४॥
जो सत्संगति करत है, सो है अति मतिमान।
मान प्रतिष्ठा यश लहै, करहि सकल कल्याण ॥५॥
*सत्संगति के योगतें, खल सज्जन हो जाय।*
ज्यों पय के संयोग जल, पय सम उज्वल थाय ॥६॥
सज्जन की संगति किये, मूढ़ होय गुण धाम।
स्वाति बिन्दु सीपहिं परे, मुक्ताफल परिणाम ॥७॥

### कुंडलिया

सज्जन संगति के किये, मूढ़ होय विद्वान् ।
सत्य वचन नित उच्चरै, बढ़ै जगत में मान ॥
बढ़ै जगत में मान, पापको दूर विसारहिं ।
होय प्रफुल्लित चित्त, दशों दिश यश विस्तारहिं ॥
कहै सुकवि 'गोपाल', नाश कर दुख की पंगति ।
होय सदा नर सुखी, करै जो सज्जन संगति ॥८॥

### दोहा

तातें छोरि कुसंगको, सत्संगति चित धार ।
करहु सफल नर जन्मको, यही जगत में सार॥९॥

—श्री पं० गोपालदास जी बरैया

### प्रश्नावलि

सत्संगति से क्या लाभ होता है ? सत्संगति क्यों करनी चाहिए ? ऊपर की कुंडलिया पढ़ कर उसका अर्थ बताओ ?

# पाठ इक्कीसवाँ.

## चुम्बक

पृथ्वी पर सैकड़ों जगह और हिन्दुस्तान में कहीं कहीं, खास कर ग्वालियर राज्य में, एक प्रकार का

काला पत्थर मिलता है। उस पत्थर में ऐसी शक्ति होती है कि वह लोहे को अपनी तरफ खींच लेता है। जिस लोहे को पत्थर खींचता है, वह उससे चिपट जाता है। उसे छुड़ाने से मालूम हो जाता है कि पत्थर अपनी ओर खींच रहा है। ऐसे काले पत्थर को चुम्बक या लोहचुगा कहते हैं।

संसार के लोग कब से चुम्बक को जानते और काम में लाते हैं? यह बात विद्वानों को अब तक निश्चित रूप से मालूम नहीं हुई। लेकिन, कहते हैं- प्राचीन काल में गुजरात देश में एक मन्दिर था। उस में एक प्रतिमा अधर लटकी हुई थी। जब मन्दिर पर आघात हुआ, और मन्दिर तोड़ने की इच्छा से चार कोनों में से एक कोना गिराया गया, तो मूर्ति भी गिर गई। इसके सिवा संस्कृत भाषा के प्राचीन ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। इससे सिद्ध होता है कि उस समय भारतवर्ष के लोग चुम्बक का उपयोग करना भली भांति जानते थे। उस समय भारतवर्षियों का चुम्बक सम्बन्धी ज्ञान ऊंचे दर्जे का था। उस समय से लगा कर अब तक यदि उस की उन्नति होती रहती, तो न जाने इस समय वह कितनी उन्नत दशा में होता।

आज कल बहुत से लड़के एक सुई को थाली में रखकर एक छोटा सा चुम्बक अंगुलियों में छिपा कर, थाली के नीचे इधर उधर घुमाते हैं। ऐसा करने से सुई भी इधर उधर चलने लगती है। वास्तव में वह चुम्बक के कारण ही घूमती है। कहते हैं अब से पाँच हजार वर्ष पहले चीन देश के लोग चुम्बक को काम में लाते थे। वे दिशा का पता इसी से लगाते थे। आज कल भी पानी के अन्दर जहाजों में इसी से दिशा का पता लगता है। जैसे चुम्बक लोहे को अपनी ओर खींचता है, वैसे ही लोहा भी चुम्बक को अपनी ओर खींचता है। पर दोनों में जो बलवान होता है वह दूसरे को अपनी ओर खींच लेता है।

### प्रश्नावलि—

चुम्बक किसे कहते हैं? वह अकसर कहां पाया जाता है? चुम्बक किस काम आता है?

# पाठ बाईसवाँ.

## रेशम.

शायद ऐसा कोई भी लड़का न होगा, जिसने रेशम के कपड़े न देखे हों। रेशम से अच्छे अच्छे

चमकीले वस्त्र बनते हैं। पर ऐसे बहुत कम लड़के होंगे, जो रेशम के बनने की रीति जानते हों। इस पाठ में वही रीति बताई जायगी।

रेशम एक प्रकार के कीड़े से निकलता है। ये कीड़े प्रायः भारतवर्ष, चीन और यूरप के बहुत से देशों में होते हैं। ये कीड़े शहतूत और रेंड़ के पत्ते खाते हैं। जो लोग इन कीड़ों को पालते हैं, वे शहतूत और रेंड़ के पेड़ लगाते हैं। जो कीड़े शहतूत के पत्ते खाते हैं, उनसे बारीक और अच्छा रेशम निकलता है। परन्तु जो रेंड़ के पत्ते खाते हैं, उनसे मोटा झोंटा और भद्दा रेशम निकलता है। रेशम के कीड़े पहले पहल अंडे की तरह होते हैं। फिर उनसे कीड़े निकलते हैं। इसके बाद जब कीड़ा बड़ा हो जाता है, तो अपने बचाव के लिये वह एक ढक्कन सा बनाता है। इसी ढक्कने से रेशम बनता है। ढक्कन कबूतर के अंडे जितना बड़ा होता है। इस के पश्चात् वह कीड़ा तितली सरीखा बन जाता है, तब वह अंडा देता है। जब वे अंडे फूटने वाले होते हैं, तब उन्हें बड़े२ तख्तों पर फैला देते हैं। और ऊपर तथा नीचे शहतूत या रेंड़ की पत्तियों की कतली भुरक देते हैं। कीड़े अंडों से निकलते ही पत्तियां खाने लगते हैं। रोज़ रोज़

ताज़े पत्ते खिलाने से कीड़े दिन दूने रात चौगुने बढ़ते हैं। कीड़ों के होठों में दो छेद होते हैं। वह इन छेदों में से सूत निकाल कर, हज़ारों बार अपने चारों तरफ लपेटता है। लपेटते लपेटते जब एक लच्छा सा बन जाता है, तब कीड़ों को उबलते हुए पानी में डालकर मार डालते और रेशम निकाल लेते हैं। इसी रेशम से ये चमकीले वस्त्र बनते हैं।

बालको! इससे तुम जान सकते हो, कि रेशम कितनी अपवित्र चीज़ है? जब कि रेशम के बनाने में असंख्यात त्रस जीवों का घात होता है, तो अहिंसा को परम धर्म मानने वाले मनुष्यों को कभी भी न पहनना चाहिये। क्योंकि वह एक प्रकार से त्रस जीवों का कलेवर ही है। कपड़े शरीर की रक्षा के लिये पहने जाते हैं। शरीर की रक्षा सूती आदि कपड़ों से भी हो सकती है। फिर कोरे दिखावे के लिये या शौक़ के लिये अगणित त्रस जीवों की हिंसा का बोझ शिर पर लादना कोई बुद्धिमानी नहीं है।

प्रश्नावलि—

रेशम कैसे बनता है? इसे क्यों नहीं पहनना चाहिये?
रेशम के कीड़े कहां होते हैं?

# पाठ तेईसवाँ.

## बनावटी काठ ।

जिस प्रकार कृत्रिम हाथीदांत, आबनूस तथा चमड़ा बनाया जाता है, उसी प्रकार छोटी छोटी और हलकी वस्तुओं के बनाने तथा काठकी वस्तुओं पर नाना प्रकारकी जाली फूल बूंटे आदि के काम करने के लिये कृत्रिम काठ भी बनाया जाता है। परन्तु कृत्रिम हाथीदांत और चमड़े में हाथीदांत और असली चमड़ा नहीं होता, वरन् और और ही पदार्थों के योग से बनाते हैं, परन्तु कृत्रिम लकड़ी बनाने में और पदार्थों को छोड़ केवल काठ के बुरादे छीलन तथा बनस्पति से उत्पन्न पदार्थ ही काम में लाये जाते हैं।

लकड़ी का बुरादा, नारियल के छिलकों को कूट पीस कर बनाया हुआ चूर्ण, सुपारी और बादामके छिलकों का चूर्ण, कहवे का फोक तथा नाज की भुसी वगैरह कृत्रिम काठ बनाने में काम आते हैं। कहवे के फोक और नाज की भुसी का चूर्ण बहुत हलके तथा नाजुक काम के योग्य होता है। कृत्रिम काठ को तैयार करने के लिये सरेस तथा गोंद आदि चिपकनी वस्तु की भी आवश्यकता होती है।

काष्ठ का चूर्ण चालनियों से छाना जाता है। चूर्ण छानने के लिये कई प्रकार की चालनियों की जरूरत होती है। जिनमें महीन से महीन और मोटा चूर्ण भी छाना जा सके। चूर्ण पीसने के लिये साधारण खरल और ओखली काम में लाई जा सकती है। सरेस को बाजार से खरीद कर उचित रीति से तैयार करके फिर चूर्ण में मिलाते हैं, तब उसका काठ बनता है। उसमें असली काठ की तरह जाली का काम किया जा सकता है। यदि चूर्ण में तेल और मिला दिया जाय तो खुदाई और भी अच्छी तरह की जा सकती है। इन्हीं बनावटी लकड़ियों से जाली फूल और तरह तरह के बूटे बनाये जाते हैं।

# पाठ चौबीसवाँ.

## भारतवर्ष के देशी राज्य।

इस समय हिन्दुस्थान में मुख्य राज्य अंगरेज़ों का है। परन्तु बहुत से हिन्दू मुसलमान राजा भी अंगरेज़ों की अधीनता में राज्य करते हैं।

उत्तर में नैपाल और भूटान दो राज्य स्वतंत्र हैं।

उनका अंगरेज़ों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। नेपाल की राजधानी काठमंडू और भूटान की तासीसूदन है। उत्तर में एक रक्षित राज्य शिकम है, जिसकी राजधानी तुमलांग है। दूसरा काश्मीर है, उसकी राजधानी श्रीनगर है। तीसरा जींद, चौथा नाभा, पाँचवाँ कलशिया, छट्ठा कपूरथला, सातवाँ भावलपुर, आठवाँ चम्पा, नववाँ पटियाला है। इन में से शिकम बंगाल के लेफ्टनेंट गवर्नर की रक्षामें और बाकी आठ पंजाबगवर्नर के आधीन हैं।

पूर्वमें कूचबिहार, मणीपुर, टिपरा हैं। इनकी राजधानीके नाम भी यही हैं। ये भी बंगाल के गवर्नर की रक्षा में हैं। मध्यभारत के रजवाड़े— रीवाँ, उँचहरा, मैहर, नागोद, पन्ना, टिहरी, दतिया, छतरपुर, अजयगढ़, चरखारी, बिजावर, उरछा। इन सब की राजधानी इन्हीं नामों से प्रख्यात है। सेंधिया की राजधानी ग्वालियर और होल्करकी राजधानी इन्दौर है। भोपाल, धार, देवास, बड़वानी, इन चारों की राजधानियों के नाम ये ही हैं, जो राज्यों के हैं। ये सब रजवाड़े रेज़ीडेंट एजण्ट की रक्षा में हैं।

राजपूताने के रजवाड़े— बीकानेर, जैसलमेर,

किशनगढ़, करौली, अलवर, टोंक, धौलपुर, उदयपुर जयपुर, जोधपुर, भरतपुर, कोटा, झालावाड़, बूंदी, डूंगरपुर, प्रतापगढ़, और सिरोही । इन की राजधानियों के नाम भी ये ही हैं । ये सब राज्य गवर्नर जनरल के आधीन हैं ।

गुजरात काठियावाड़— गायकवाड़ की राजधानी बड़ोदा है। काठियावाड़ में ओकमंडल, नवागढ़, जूनागढ़, भावनगर आदि छोटे रजवाड़े हैं। इन के सिवाय पालनपुर, महीकांठा, और रेवाकांठा की राजधानियाँ ये ही हैं । कोण में सावंतवाडी, कोल्हापुर, सिंध में खैरपुर, कच्छ की राजधानी भुज है । ये सब रजवाड़े बम्बई के गवर्नर की रक्षा में हैं । हैदराबाद निजाम, त्रावणकोर की त्रिवेंद्रम्, मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन, पुदुकोटा और कोचीन की राजधानी मंचर है। ये सब मद्रास के गवर्नर की रक्षा में हैं । रुहेलखण्ड में रामपुर है, वह पश्चिमोत्तर देश के लेफ्टनेंट गवर्नर के आधीन है और कमाऊं की राजधानी टिहरी है ।

भारतवर्ष के इन मुख्य रजवाड़ों के सिवाय और भी छोटे२ रजवाड़े हैं । इनके सिवाय फरांसीसियों के चन्द्रनगर, गोदावरी पांडुचेरी कारीकाल और माही हैं । तथा पोर्चुगीजों के पंजुम(गोवा) दमन डायू वा ड्यू हैं ।

# पाठ पच्चीसवाँ.

## काश्मीर की सैर।

पहले बतलाया जा चुका है कि काश्मीर भारतवर्ष के प्रसिद्ध रजवाड़ों में से एक है। परन्तु काश्मीर का महत्व वहां की प्राकृतिक सुन्दरता के कारण है। सच तो यह है कि काश्मीर, अपने सौन्दर्य के लिहाज़ से भारतवर्ष का मुकुट है। काश्मीर के पर्वतों की सफेद चोटियाँ, प्रातःकालीन सूर्य, बर्फीले मैदान, चलते फिरते खेत, झील के चारों ओर की बस्ती देखने से वह मध्य लोक का स्वर्ग सा मालूम होता है।

काश्मीर में प्रसिद्ध नगर श्रीनगर है। श्रीनगर के निवासियों की संख्या एक लाख पैंसठ हजार के लगभग है। यह स्थान रावलपिण्डी से १९८ मील दूर है। रावलपिण्डी से श्रीनगर जाने वाले यात्रियों के लिये मोटर, लोरी, तांगा आदि सवारियाँ मिलती हैं। श्रीनगर में बिजली नल डाकखाना और डाक्टर आदि सब मिलते हैं। वहां काठ और चांदी की कोरनी का कार्य अच्छा होता है। किन्तु पश्मीना

शाल लोई पट्टू चकमा और ऊनी वस्त्र बहुत बढ़िया बनते हैं। केशर और कागज़ तो काश्मीरी कागज़ और काश्मीरी केशर ही के नाम से प्रसिद्ध हैं। काश्मीर में *श्रीनगर* के सिवाय कोहमरी या मरी, कोहाला, बारामूला, चश्मेशाही, इस्मानाबाद (अनन्तनाग) मटन (मार्त्तण्ड कुण्ड) अछबल, शालामार, निसात बाग, गन्धर्वल, खीरभवानी, और पापर दर्शनीय हैं।

इनमें से कोहमरी रावलपिण्डी से तीस मील की दूरी पर धरती से आठ हजार फुट ऊंचा स्थान है। यहां पर भी तार ऑफिस, पोष्ट ऑफिस, डाक्टर और अस्पताल आदि हैं। यहाँ के बाज़ार में सब चीज़ें अच्छी मिलती हैं। लेकिन यहां और श्रीनगर में आटा ख़राब मिलता है। कोहमरी और श्रीनगर में सफेदा और चुनार नाम के वृक्ष, सड़कों के दोनों ओर बड़े मनोहर जान पड़ते हैं।

चश्मेशाही का पानी ठण्डा होता है। इस पानी में यही विशेषता है। अनन्तनाग में ऊनी आसन, अछबल का स्वास्थ्यकर जल, शालामार और निसात-बाग के फूल फुलवाड़ी और जल प्रपात, गन्धर्वल में सिन्धु नदी का सौन्दर्य और फलों की बहार,

और खीरभवानी के उत्तमोत्तम दृश्य तथा पापर में पीली मिट्टी, खूब ठंड और जल के संयोग से पैदा होने वाली केशर के खेत अतिशय दर्शनीय हैं। कहते हैं काश्मीर के निवासी शरीर से तो सुन्दर होते हैं, पर उनके कार्य प्रायः घृणित होते हैं। उन में से झूठ, निर्लज्जता और गंदगी आदि दोष मुख्य हैं। यहां बहुत से लोग पहाड़ों में निवास करते हैं। वहां के लोग जो भाषा बोलते हैं, वह पञ्जाबी से कुछ २ मिलती जुलती है, परन्तु उस में बहुत सी विशेषताएं भी हैं। वहां की लिपि काश्मीरी लिपि कहलाती है। आज कल काश्मीर के नरेश महाराज सर हरिसिंहजी बहादुर हैं। काश्मीर स्वास्थ्य-सुधार के लिये बहुत उत्तम स्थान है। इसलिये भारतवर्ष के बहुत से धनिक और अंग्रेज गर्मी के दिनों में कुछ दिनों तक वहाँ ही रहते हैं। जल वायु परिवर्तन के लिये यह एक बहुत उत्तम स्थान है।

# पाठ छब्बीसवाँ

## हैज़ा

संसार में ज्यों ज्यों पापों की वृद्धि हो रही है, त्यों त्यों उसके फल भी हाथोंहाथ मिल रहे हैं। आये दिन नई नई होने वाली बीमारियां इस कथन की सत्यता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। बहुत सी बीमारियाँ ऐसी होती हैं कि उत्पन्न होते ही हवा के साथ सर्वत्र फैल जाती हैं। जब ऐसी बीमारी होती है, तो देश में हाहाकार मच जाता है। घर के घर और कुटुम्ब के कुटुम्ब सफ़ाया होजाते हैं। हैज़ा इसी प्रकार की बीमारी है। इसे अंग्रज़ीमें कॉलेरा कहते हैं। जब हैज़ा होता है तो लोग समझते हैं कि किसी देवी देवता का कोप हो गया है। इसीलिये अज्ञानी जीव देवी देवतों की मानता मनाते हैं। किन्तु जब उससे कुछ फल नहीं होता, तो हाथ मलते रह जाते और भाग्य को कोसने लगते हैं। उन्हें बीमारी होने के असली कारण का ज्ञान नहीं होता। कभी कभी बीमारी शान्त होने के लिये देवतों को हवन करते हैं। लेकिन हवन करने का असली उद्देश्य वायु शुद्ध

करना है। क्योंकि डाक्टरों का विश्वास है कि इस बीमारी के कीटाणु हवा के कणों में उड़ते रहते हैं, और वे ही भोजन पान के साथ शरीर में प्रविष्ट होकर बीमारी पैदा करते हैं। इस बीमारी में पहले पहल दस्त होते और फिर तुरंत कै शुरू हो जाती है। हाथ पांवों में ऐंठन और शरीर में चक्कर आने लगते हैं। पश्चात् चावल के मांड जैसे सफ़ेद दस्त होने लगते हैं। प्यास और गर्मी अधिक प्रतीत होती, शरीर ठण्डा पड़ जाता और अन्त में, अगर उचित चिकित्सा न की जाय, तो रोगी बेहोश होकर मर जाता है। जहां तक होसके इस रोग की चिकित्सा शीघ्र ही करनी चाहिये।

इस बीमारी से बचने का उपाय स्वच्छता है। जब किसी को दुर्भाग्य से इसका शिकार होना पड़े, तो उसे गाँव बाहर रखना चाहिए। ऐसा न करने से बीमारी के कीटाणु, रोगी की कै और दस्त में से मक्खियों द्वारा इधर उधर फैला दिये जाते हैं। जिस जगह बीमार रहे, वह हवादार हो स्वच्छ हो और उसके पास ज्यादा भीड़ भड़क्का न हो। उसकी कै और दस्त राख डाले हुए बर्तन में लेना चाहिए। और गाँवके बाहर गड्ढा खोदकर गाड़ देना चाहिए। यदि सावधानी

रखने पर भी छींटे गिर जायँ, तो उस स्थान को खूब साफ़ करना चाहिए। जहां तक हो सके, रोगी के समीप बहुत कम आवागमन रखना चाहिए। क्योंकि यह बीमारी छूत से ही हो जाती है। किसी रिश्तेदार के घर जाना पड़े, तो यथासंभव उसके संसर्ग से बचना चाहिए—कपड़े लत्तों को दूर रखना चाहिए।

जब बीमारी का प्रकोप हो, तो गरिष्ठ भोजन, बज़ारू दूध और अन्य भोजन फल तथा हरा शाक न खाना चाहिए। कच्चा पानी भी हानिकारक है, इसलिए बिना गर्म किया हुआ न पीना चाहिए। कपूर आदि सुगंधित वस्तुएँ पास रखना विशेष लाभप्रद है। कहते हैं—इस बीमारी की अच्छी दवा कपूर का अर्क है। इसे सदा पास रखना उचित है।

# पाठ सत्ताईसवाँ

## नीति के दोहे

बड़े बड़ाई नहिं तजैं, लघु रहीम इतराइ।
राइ करौंदा होत है, कटहर होत न राइ ॥१॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय ॥२॥

रहिमन उजलो प्रकृत को, नहीं नीच का संग।
करिया बासन कर गहे, कालिख लागत अंग ॥३॥

रहिमन निज मन की बिथा, मन ही राखो गोय।
सुनि अठिलै हैं लोग सब, बाँटि न सक हैं कोय ॥४॥

रहिमन बिपदा हू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत में, जानि परत सब कोय ॥५॥

रहिमन वे नर मर चुके, जो कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुए, जिन मुख निकसत 'नाहिं' ॥६॥

कहु रहीम कैसे निभै, बे' केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥७॥

रहिमन ओछे नरन सों, बैर भलो ना प्रीति।
काटे चाटे स्वान के, दोउ भांति विपरीति ॥८॥

रहिमन तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचानि।
पर बस परे परोस बस, परे मामल जानि ॥९॥

खीरा सिर से काटिये, मलिये नमक लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत यही सजाय ॥१०॥

अमी पियावत मान बिन, रहिमन मोहि न सुहाय।
प्रेम सहित मरिबो भलो, जो बिष देय बुलाय ॥११॥

इतराइ— इठलाय, अकड़ै. गोय— छुपा कर.

राइ— एक प्रकार का मसाला. मुए— मरे.

कगिया— काला. निभै— बनै, पार पड़ै.

बासन— बर्तन स्वान— कुत्ता.

अमी—अमृत मान-आदर, सन्मान

# पाठ अट्ठाईसवाँ.

## उपदेशी दोहे

जो तोकूं काँटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल ।
तोहिं फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल ॥१॥
दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाय ।
मुई खाल की सांस ते, सार भसम हो जाय ॥२॥
या दुनियाँ में आय के छाँड़ि देय तू ऐंठ ।
लेना है सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥ ३ ॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥४॥
साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप ।
जाके हिरदै सांच है, ताके हिरदै आप ॥५॥
बुरा जो देखन में चला, बुरा न दीखे कोय ।
जो दिल खोजों आपना, मुझ सा बुरा न कोय ॥६॥

दुख में सुमिरन सब करें, सुख में करें न कोय।
सुख में जो सुमिरन करें, दुख काहे को होय ॥७॥
एकहि साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।
जो तू सींचे मूल को, फूलै फलै अघाय ॥८॥
का मुख ले बिनती करौं, लाज लगत है मोहिं।
तुम देखत औगुन किये, कैसे भाऊं तोहिं ॥९॥

---

सार—लोहा
पैंठ—बाजार
अघाय—पूरी तरह
ऐंठ—घमण्ड, अकड़
साहब—मालिक, परमेश्वर
भाऊं—अच्छा लगूं या ध्याऊं

# पाठ उनतीसवाँ.

## गिरिधर की कुण्डलियाँ

बीती ताहि बिसारिदे, आगे की सुधि लेइ।
जो बन आवै सहज में, ताही में चित देइ ॥
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसे न कोइ, चित्त में खेद न पावै ॥
कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती ॥
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती ॥

साँई अपने चित्त की, भूलि न कहिये कोइ ।
तब लग मन में राखिये, जब लग कारज होइ ॥
जब लग कारज होय, भूलि कबहूँ नहिं कहिये ।
दुर्जन हँसे न कोय, आप सियरे ह्वै रहिये ॥
कह गिरिधर कविराय बात चतुरन की तांई ।
करतूती कहि देत, आप कहिये नहिं सांई ॥
सांई अपने भ्रात को, कबहुँ न दीजे त्रास ।
पलक दूर नहिं कीजिये, सदा राखिये पास ॥
सदा राखिये पास, त्रास कबहूँ नहिं दीजे ।
त्रास दियो लंकेश, ताहि की गति सुन लीजे ॥
कह गिरिधर कविराय, राम सों मिलि जो जाई ।
पाय विभीषण राज्य, लंकपति बाज्यौ साँई ॥

---

विसारिदे—भुला दे.

सुधि—चिन्ता, विचार.

परतीती—विश्वास.

तब लग—तब तक.

सियरे—शान्त.

त्रास—दुःख, तकलीफ.

पलक—पल भर भी.

लंकेश—लंका का राजा, रावण.

बाज्यौ—प्रसिद्ध हुआ, कहलाया.

# पाठ तीसवाँ.

## कर्तव्य-शिक्षा.

(मनहर छंद)

देव गुरु सांचे मान सांचो धर्म हिये आन, सांचो ही बखान सुनि सांचे पंथ आव रे। जीवन की दया पाल झूठ तजि चोरी टाल, देख ना विरानी-बाल तिसना घटाव रे॥ अपनी बड़ाई परनिंदा मत करै भाई, यही चतुराई मद मांसकौं बचाव रे। साध खट कर्म साध संगति में बैठ वीर, जो है धर्म-साधन कौ तेरे चित चाव रे॥१॥

## यज्ञ में हिंसानिषेध—

कहै पशु दीन सुन यज्ञ के करैया मोहिं, होमत हुताशन में कौनसी बड़ाई है। स्वर्गसुख मैं न चहौं "देहु मुझे" यों न कहौं, घास खाय रहौं मेरे यही मन भाई है॥ जो तू यह जानत है वेद यों बखानत है, जग्य जलौ जीव पावै स्वर्ग सुखदाई है। डारै क्यों न वीर यामें अपने कुटुंब ही कौं, मोहि जिन जारै "जगदीस की दुहाई है" ॥२॥

## संसार का स्वरूप.

काहू घर पुत्र जायो काहू के बियोग आयो, काहू राग रंग काहू रोआ रोई करी है। जहां भान ऊगत उछाह गीत गान देखे, सांझ समै ताही थान हाय हाय परी है॥ ऐसी जगरीत को न देखि भयभीत होय, हा हा नर मूढ़ तेरी मति कौने हरी है। मानुष जनम पाय सोवत विहाय जाय, खोवत करोरन की एक एक घरी है ॥३॥

## सोरठा.

कर कर जिनगुण पाठ, जात अकारथ रे जिया।
आठ पहर में साठ, घरीं घनेरे मोलकीं ॥४॥
कानी कौड़ी काज, कोरिन को लिख देत खत।
ऐसे मूरखराज, जगवासी जिय देखिये ॥५॥

## सच्चे देव का स्वरूप.

(छप्पय छंद)

जो जगवस्तु समस्त, हस्ततल जेम निहारै।
जगजन को संसार-सिंधु के पार उतारै॥
आदि अंत अविरोधि, वचन सबको सुखदानी।
गुन अनंत जिहँ माहिं. रोग की नाहिं निशानी॥

माधव महेश ब्रह्मा किधौं, वर्धमान कै बुद्ध यह ।
ये चिह्न जान जाके चरन, नमो नमो मम देव वह ॥६॥

## मीठे वचन.

काहेको बोलत बोल बुरे नर, नाहक क्यों जस धर्म गमावै । कोमल बैन चवै किन ऐन लगै कछु है न सबै मन भावै । तालु छिदै रसना न भिदै, न घटै कछु अंक दरिद्र न आवै । जीभ कहै जिय हानि नहीं तुझ, जी सब जीवन को सुख पावै ॥७॥

---

| | |
|---|---|
| विरानीबाल—परस्त्री· | चाव—उत्कंठा, इच्छा. |
| हुताशन—अग्नि | जग्य—यज्ञ. |
| जिन—मत, नहीं | दुहाई--शपथ, कसम. |
| भान ऊगत--सुबह में | घरीं--घड़ियां. |
| अकारथ--व्यर्थ | घनेरे—बहुत. |
| खत--पत्र, चिट्ठी. | हस्ततल--हथेली. |
| नाहक—वृथा. | चवै—बोले. |
| किन—क्यों नहीं. | ऐन—अच्छे |

# पाठ इकतीसवाँ.

## पुस्तक का सारांश.

१ किसी कार्य को प्रारम्भ करने से पहले परमेश्वर का स्मरण स्तवन नमन या ध्यान करना चाहिए।

२ कोई भी संसारी आत्मा सर्वथा निर्गुण नहीं है। किसी में कम गुण हैं किसी में ज्यादा। तुम उनके सद्गुणों को ग्रहण करो, दोषों को नहीं।

३ हृदयों की एकता ही सच्ची मित्रता है। जिसे एक बार परीक्षा करके मित्र बना लिया, उसके साथ द्विधा न करो।

४ धूर्तता, नीचता है। धूर्त व्यक्ति यदि तिरस्कृत हो, तो क्या आश्चर्य है?

५ मैले कुचैले टूटे फूटे घरों में और खेतों में रह कर हल जोतने वाले बहुत से किसान भी बुद्धि-शून्य नहीं होते। उनका सत्कार करो। कदाचित् वे सभ्यता के ठेकेदार शिक्षितों से भी अधिक बुद्धि-शाली हो सकते हैं।

६ बच्चों को गहना पहनाना उनकी जान को खतरे में डाल देना है। मनुष्यों की शोभा पौद्गलिक अलंकारों से नहीं, सद्गुणों से होती है।

७ नीचकुलमें पैदा होने ही से नहीं, किन्तु कर्त्तव्य-भ्रष्ट होने से हर एक व्यक्ति घृणास्पद होता है। अकबर मुसलमान था, पर था अहिंसाधर्म का अनुयायी।

८ कुटेवें जीवन को बर्बाद कर देती हैं। जो एक बार जिस कुटेव का शिकार हो जाता है, उसका उस से बड़ी कठिनाई से पिण्ड छूटता है। सब से अच्छा यही है कि हम किसी आदत के वश-वर्ती न बनें।

९ नेता बनने के लिये ब्रह्मचर्य, वीरता, आत्म-त्याग, कर्तव्यनिष्ठा, सहानुभूति, दृढ़ता, निर्बल-सहाय, सतत-उद्योग, प्रेम-प्रचार, समय का सदुपयोग, ईश्वरभक्ति, निर्मोहिता और बन्धुभाव की बहुत आवश्यकता है।

१० अहिंसा वीर का भूषण है। धर्म का मुकुट है। उसे कायरता की निशानी कहना नादानी है, और धर्मविषयक अनभिज्ञता की निशानी है। इन्द्रियों के गुलाम पामर प्राणी अहिंसा का महत्व क्या जानें!

११ मिथ्या भाषण करना मानों अपनी प्रतीति न करने के लिये कहना है। क्योंकि निश्चय से असत्यवादी का कोई विश्वास नहीं करता।

१२ चोर कभी सुख सन्तोष नहीं पाता। उसके

हृदय में निरन्तर धुकपुकी लगी रहती है। जब चोरी प्रकट होजाती है, तब उसकी दुर्दशा का क्या पूछना।

१३ अभिमान मनुष्य मात्र का शत्रु है। क्योंकि वह उन्नत नहीं होने देता, गुणग्रहण नहीं करने देता और असली बात का विचार नहीं करने देता।

१४ मायाचार मनुष्य को दुर्गति में ढकेलता है।

१५ गृहस्थ-जीवन को सुखपूर्ण बनाने के लिये आवश्यक धनादि वस्तुओं का संग्रह करना एक बात है और लोभ करना दूसरी बात है। आवश्यक-संचय सुखदायी होता है, किन्तु लोभ से, सिवाय दुख के सुख नाम मात्र को भी नहीं मिलता।

१६ विवाह में, जीमन में, या अन्य किसी उत्सव में, हैसियत से ज्यादा खर्च करना और दूसरी तरह धन का दुरुपयोग करना जीवन को कण्टकाकीर्ण बनाना है। श्रीमान् यदि ऐसा खर्च करता है, तो वह समाज और देश के साथ अत्याचार करता है। इसलिये धनका सदुपयोग करना चाहिए।

१७ बारम्बार चिन्तन करने को भावना कहते हैं। धार्मिक भावनाओं से आत्मबल बढ़ता है।

१८ उच्चकुल में पैदा होकर भी नीच कार्य

करने वाला नीच है। उच्च बनने के लिये नीच कार्यों को छोड़ना इतना आवश्यक है, जितना भूख मिटाने के लिये भोजन करना।

१९ तुम्हें जैसा बनना हो, वैसी संगति करो। मूर्खों दुराचारियों और अधार्मिकों की संगति करके क्या मूर्ख दुराचारी और पापी बनना है? नहीं, तो विद्वानों सदाचारियों और धर्मात्माओं का संग करो।

२० इस बात का सदैव ध्यान रक्खो, कि तुम्हारी किसी भी प्रवृत्ति से दूसरों को दुख न हो।

२१ धर्म संसार के भीषण दुःखों से छुड़ाने वाला है। धर्म के लिये यदि सर्वस्व- अर्पण करना पड़े, तो प्रसन्नता से करो, पर उसका परित्याग न करो। संसार में बहुत धर्म प्रचलित हैं, उन में से सच्चे धर्म की जांच करने के लिये अहिंसा अचूक कसौटी है। परीक्षा कर देखो।

॥इति॥

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचंद भैरोंदान सेठिया

जैन लाइब्रेरी (शास्त्रभण्डार)

बीकानेर

*Printed at the Sethia Jain Printing Press,*

BIKANER Rajputana

सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ६७

* श्रीवीतरागाय नमः *

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## चौथा भाग.

प्रकाशक—

भैरोंदान जेठमल सेठिया

बीकानेर

वीर सं० १९८३ पहली बार न्योछावर ≡||)

सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस बीकानेर. (राजपूताना) ता० २६-२-२७-२०००

# प्रस्तावना ।

हिन्दीबाल-शिक्षा सीरीज़ के तीन भाग पहले प्रकाशित हो चुके हैं, चौथा भाग आप के सामने है। इसमें नैतिक, व्यावहारिक, शारीरिक और ऐतिहासिक विषयों की शिक्षा दीगई है। परन्तु नैतिक विषयों पर खास ध्यान रक्खा गया है । इस का एक कारण तो यह है कि हमारा गार्हस्थ्य जीवन अत्यन्त विकृतसा हो रहा है । जब तक उसका सुधार न किया जायगा, तब तक सामुदायिक उन्नति होना असंभव है और बालकों के सरल कोमल हृदय-क्षेत्र में नीति का बीज बोना ही गृहस्थ-जीवन के सुधार का एक मात्र उपाय है । क्योंकि बालक ही भावी सामाजिक जीवन के स्तम्भ हैं। दूसरा कारण यह है कि शिक्षा का उद्देश्य जैसे ऐहलौकिक सुधार है वैसे पारलौकिक सुधार भी । और वह तब ही हो सकता है, जब बालकों को पहले से ही नीति के नियमों से जानकारी हो और साथ ही साथ उसके प्रति अनुराग भी हो ।

पुस्तकें, बालकों के हृदय में नीति के प्रति अनुराग पैदा करने में कितनी सफल होतीहैं ? यह एक गम्भीर प्रश्न है । हम इस सम्बन्ध में यही कहना आवश्यक समझते हैं कि पुस्तकें किसी भी विषय की ओर आकृष्ट करने का साधन हैं। विशेष जिम्मेदारी तो अध्यापकों पर है । विद्यार्थियों की जीवन-नौका के वे ही कर्णधार हैं,अतः अध्यापकों का कर्त्तव्य है जिस पाठ को वे पढ़ावें, उसका तत्त्व विद्यार्थियों की नस नस में व्याप्त करदें । ऐसा हुआ तो बालक आदर्शचरित्र, व्यवहारविज्ञ और नीतिनिपुण होंगे ।

पाँचवें भाग का कार्य प्रारम्भ हो चुका है। उसमें जैन इतिहास आदि विषयों के साथ २ तत्त्वज्ञान, कर्मसिद्धान्त और आत्मा परमात्मा सम्बन्धी विषयों का विवेचन होगा। आशा है वह भी यथा संभव शीघ्र प्रकाश में आवेगा।

चौथेभाग का संशोधन श्रीमान् उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज ने कृपा करके किया है। अतः हम उन का सादर आभार मानते हैं।

इसके सिवा अनेक मासिक पत्रों और पुस्तकों से सहायता ली गई है उनके कर्त्ताओं का आभार मानते हैं। इत्यलम्।

बीकानेर
२३-२-२७ ई.

निवेदक—
भैरोंदान जेठमल सेठिया

# विषयानुक्रम ।


| पाठ विषय | पृष्ठाङ्क |
|---|---|
| १ मेरी भावना … … … | १ |
| २ विनय … … … | ४ |
| ३ माता पिता की सेवा … … … | ६ |
| ४ अतिथिसत्कार … … … | ९ |
| ५ दूसरे की गुप्त बात प्रगट न करना … … | १० |
| ६ भ्रातृप्रेम … … … | १२ |
| ७ स्वास्थ्यरक्षा (१) … … … | १५ |
| ८ केशरी चोर … … … | १७ |
| ९ शीलसन्नाह … … … | २० |
| १० सामायिक … … … | २३ |
| ११ देशाटन (यात्रा) … … … | २५ |
| १२ भगवान् महावीर (१) … … … | २९ |
| १३ सब से अच्छा काम (शिशु से) … … | ३३ |
| १४ स्वास्थ्यरक्षा (२) … … … | ३५ |
| १५ प्रतिक्रमण … … … | ३७ |
| १६ व्यापार (१) … … … | ३९ |
| १७ निर्गुण मनुष्य … … … | ४२ |
| १८ भगवान् महावीर (२) … … … | ४५ |
| १९ स्वास्थ्यरक्षा (३) … … … | ५० |
| २० व्यापार (२) … … … | ५३ |
| २१ अपनी भूल स्वीकार करना … … | ५५ |
| २२ स्वास्थ्यरक्षा (४) … … | ५८ |
| २३ विचारभेद … … … | ६० |
| २४ भगवान् महावीर (३) … … … | ६३ |

# पद्यभाग ।


२५ बुधजन सतसई के दोहे(मित्रता) ... ... ६६
२६ ग्राम्यजीवन ... ... ... ६७
२७ नीति संग्रह ... ... ... ६९
२८ परोपकार ... ... ... ७१
२९ प्रकीर्णकपद्य ... ... ... ७४
३० पार्श्वनाथ स्तुति ... ... ... ७६
३१ गिरधर की कुण्डलियाँ ... ... ७९

युगराज सेठिया.

*Yugraj Sethia*

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## चौथा भाग.

### पहला पाठ.

मेरी भावना.

(१)

जिसने राग द्वेष कामादिक, जीते सब जग जान लिया;
सब जीवों को मोक्षमार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया ।
बुद्ध वीर जिन हरि हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो;
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो ॥

(२)

विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्यभाव धन रखते हैं;
निज--पर के हित--साधन में जो, निश दिन तत्पर रहते हैं ।
स्वार्थत्याग की कठिन तपस्या, विना खेद जो करते हैं;
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख--समूह को हरते हैं ॥

(३)

रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे;
उनही जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे।
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूं;
पर धन पर त्रिय पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूं॥

(४)

अहंकार का भाव न रक्खूं, नहीं किसी पर क्रोध करूं;
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्षा भाव धरूं।
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूं;
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूं॥

(५)

मैत्री--भाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे;
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा-स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे;
साम्यभाव रक्खूं मैं उन पर, ऐसी परिणति हो जावे॥

(६)

गुणी जनों को देख हृदय में मेरे प्रेम उमड़ आवे;
बने जहां तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे।
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे;
गुण--ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥

(७)

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे;
लाखों वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आजावे।
अथवा कोई कैसा ही भय, या लालच देने आवे;
तो भी न्याय-मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥

(८)

होकर सुख में मग्न न फूलें, दुख में कभी न घबरावें;
पर्वत नदी श्मशान भयानक अटवी से नहिं भय खावें।
रहें अडोल अकंप निरन्तर, यह मन दृढ़तर हो जावे;
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावें॥

(९)

सुखी रहें सब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे;
वैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे।
घर घर चर्चा रहे धर्म की दुष्कृत दुष्कर हो जावें;
ज्ञान चरित उन्नत कर अपना मनुज—जन्म-फल सब पावें॥

(१०)

ईति भीति व्यापे नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे;
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे।
रोग मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शान्ति से जिया करे;
परम अहिंसा-धर्म जगत में, फैल सर्वहित किया करे॥

(११)

फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर सब रहा करे;
अप्रिय कटुक कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे।
बन कर सब 'युग-वीर' हृदय से देशोन्नति रत रहा करें;
वस्तु-स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें॥

—पं० जुगलकिशोर मुख्त्यार।

# पाठ २

## विनय.

मगधदेश में राजगृह नामक एक नगर है। किसी समय वहां श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम चेलना था। उसी नगर में एक चाराडाल रहता था। एक समय उसकी गर्भिणी स्त्री को आम खाने की साध हुई। उसने अपने पति से आम लाने को कहा। चाराडाल ने कहा—"इस ऋतु में आम नहीं मिल सकते, कहां से लाऊं"। चाराडाली ने उत्तर दिया- "चेलना महारानी के उद्यान में सब ऋतुओं के फल फूल मौजूद हैं"। चाराडाल ने कहा—"वहां बड़ा कड़ा प्रबन्ध रहता है। फिर भी लाने का यत्न करूंगा"।

इस के अनन्तर चाराडाल रात के समय उद्यान में गया। उसे अवनामिनी और उन्नामिनी दो विद्याएं सिद्ध थीं। बस, उसने प्राकार के बाहर खड़े होकर अवनामिनी विद्या द्वारा आम के वृक्षों की डालियां नीचे झुका लीं और आम तोडकर चलता बना। जाते समय उन्नामिनी विद्या से डालियां ज्यों की त्यों ऊपर कर दीं। इस प्रकार उसने अपनी पत्नी की इच्छा पूरी की।

दूसरे दिन उद्यानरक्षक आम के पेड़ों को विना फल का देख राजा के पास गया और सारा वृतान्त कह सुनाया। राजा ने अपने मंत्री अभयकुमार को बुलाया और सब वृत्तान्त समझाकर कहा—"जिसमें ऐसी शक्ति है, वह रनवास में भी बेरोकटोक घुस सकता है। अतः एक सप्ताह के भीतर उसे पकड़ लाओ। नहीं तो चोर की तरह तुम्हें दराड दिया जायगा"। राजा की यह भीषण आज्ञा सुन अभयकुमार को रात दिन नगर में चक्कर काटते

काटते छह दिन व्यतीत होगये, परन्तु चोर हाथ न आया। आखिर सातवीं रात्रि में बड़ी सावधानी से अभयकुमार ने चोर पकड़ पाया। उसने दबाव डालकर अपराध स्वीकार भी करा लिया। बाद में अभय उसे राजा के पास लेगया। राजा ने आदि से अन्त तक सब हाल सुन शूली का दण्ड दिया। अभयकुमार ने कहा—"महाराज! इसे शूली देने से पहले, दोनों विद्याएं सीख लेनी चाहिए। क्योंकि नीति में कहा है कि—

उत्तम विद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय।
परौ अपावन ठौर में, कंचन तजै न कोय ॥१॥

अभयकुमार की बात श्रेणिक को जँच गई। वह सिंहासन पर बैठा २ चाण्डाल को नीचे बैठाकर विद्या सीखने लगा। चाण्डाल और श्रेणिक दोनों ने ही जी तोड़ श्रम किया, पर न तो वह समझा सका न श्रेणिक समझ सका। तब राजा ने कड़क कर कहा—"ऐ चाण्डाल! मुझे विद्या सिखाने में भी तू कपट करता है"? राजा को इस प्रकार चाण्डाल का तिरस्कार करते देख अभयकुमार ने कहा—"महाराज! विनय के विना विद्या नहीं आती। यदि आपको विद्या सीखना है तो इसे सिंहासन पर बैठाइये और आप नीचे बैठिये, तब ही विद्या आयगी। जैसे पानी ऊपर से नीचे को बहता है, वैसे विद्या भी उसे ही आती है जो गुरु को ऊंचा और अपने को नीचा समझता है। इसलिये आप विनीत बनेंगे तो विद्या सीख सकेंगे"। मंत्री की बात सुनकर श्रेणिक ने अपने विद्यागुरु को आसन पर बिठलाया और आप नीचे बैठा। ऐसा करते ही दोनों विद्याएं राजा की समझ में आगईं। इस के बाद अभयकुमार ने विद्यागुरु होने से उसे विना दण्ड मुक्त करा दिया।

बालको! विनय का माहात्म्य अपरम्पार है। इस बात का विचार करो कि कहां तो मगधदेश के विशाल साम्राज्य का अधिपति श्रेणिक और कहां शूद्रजातीय चाण्डाल। परन्तु विद्या पढ़ने के लिये श्रेणिक को भी चाण्डाल का विनय करना पड़ा। इससे हमें यह सीखना चाहिए कि हम गुरुओं का विनय करें। एक जगह लिखा है कि विनयी विद्यार्थी को गुरु की भक्ति करनी चाहिए। गुरुभक्ति से विद्या आती है। विद्या से चालचलन सुधरता है। चालचलन सुधरने से बुरे कर्म नहीं आते और क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है। ठीक ही है विनय से क्या २ नहीं मिलता अर्थात् सब कुछ मिल सकता है। जो विनयी होता है वह सब का प्रेमपात्र हो जाता है। विनय सब गुणों में मुख्य है। विनय के बिना तुम कोई गुण नहीं प्राप्त कर सकते और यदि प्राप्त कर भी लो तो उनकी कीमत नहीं होती। देखो, जब आंधी आती है, तब बेंत का वृक्ष, जो कि नम्रता धारण कर लेता है, सकुशल खड़ा रहता है, किन्तु सागौन आदि के वृक्ष जो ज्यों के त्यों ऊंचा सिर किये हुए खड़े रहते हैं, वे उखड़कर गिरजाते हैं। इस से यही आशय निकलता है कि बड़ों के सामने नम्रता धारण करना चाहिए। अतएव माता पिता विद्यागुरु आदि जो कोई तुम से बड़े हों, उनका विनय करो। विनय सब सुखों का बीज है।

## पाठ ३

## माता पिता की सेवा.

संसार में जितने सम्बन्ध हैं, उन सब में माता पिता और पुत्र का सम्बन्ध सब से ऊंचा, सब से पवित्र और सब से अधिक

भाव-मय है। पुत्र पर माता पिता का सब से अधिक उपकार है- इतना अधिक कि पुत्र उससे कभी उऋण नहीं होसकता। जिन्होंने हमें जन्म दिया है, उनके उपकार का बदला चुकाने का विचार ही कैसे किया जा सकता है। इसीलिए समझदार लोग माता पिता को देवता तुल्य समझकर उनकी सेवा करते हैं- उनकी आज्ञा मानते हैं। चाहे कितना ही कष्ट क्यों न उठाना पड़े परन्तु वे माता-पिता की भक्ति अवश्य करते हैं। इस भक्ति में प्रायः चार बातों का समावेश होता है। (१) सन्मान (२) प्रेम (३) सेवा और (४) आज्ञापालन।

( १ ) सन्मान— मन में माता-पिता के लिये सन्मान होना चाहिए अर्थात् उनके बारे में कभी कोई अनुचित विचार न करना और उनके दोषों को मन में स्थान न देना चाहिए। सदा ध्यान रखना चाहिए कि बड़े हर समय और हर हालत में हम से बड़े ही हैं। माता पिता के साथ बातचीत करते समय एक भी शब्द मूर्खता का कठोरपन का या असन्मान भरा न निकलने पावे। उनके सामने जो कुछ कहा जाय वह ढिठाई से न कहा जाय किन्तु सभ्यता और विनय से। माता पिता जब पास ही खड़े हों तो बैठना उठना आदि क्रियाएँ भी विनय के साथ करनी चाहिए। जैसे — जब वे हमारे सामने खड़े हों, तो हम बैठे न रहें, बैठे रहने से उनके प्रति आदर के भाव नहीं जाहिर होते।

(२) प्रेम- यदि हृदय में प्रेम न हो, तो सत्कार सूखा और व्यर्थ है। माता-पिता, पुत्रों के लिये अथक परिश्रम करते हैं किन्तु पुत्र यदि प्रेम से उनकी सेवा करें तो उन्हें वह परिश्रम नहीं सालता है। जब कभी वे विपत्ति में पड़े हों, दुःख का कोई उपाय न हो, तब भी पुत्र का प्रेम देखकर उनकी आत्मा को बड़ी शान्ति और सुख मिलता है।

(३) सेवा—इस बात का विचार करो कि छुटपन में तुम्हारे लिये माता-पिता ने क्या २ कष्ट नहीं सहे। पुत्र आजीवन कष्ट सहकर सेवा करे तो भी उनके कष्टों का बदला नहीं चुका सकता फिर उन्होंने तो हमें जन्म दिया है, उस अलौकिक उपकार का कहना ही क्या है! इसलिये पुत्र का कर्त्तव्य है कि उनकी चिन्ता सदा रक्खे, हृदय से सेवा करे और सदा प्रसन्न रक्खे।

(४) आज्ञापालन — बालकों को अपने मा - बाप की आज्ञा माननी चाहिए और तुरन्त माननी चाहिए। इस बात का विचार मत करो कि आज्ञा मानने से क्या २ कष्ट भोगने पड़ेंगे माँ-बाप स्वभाव से ही तुम्हारा भला चाहते हैं। वे कभी ऐसी आज्ञा देवेंगे ही नहीं कि जिससे तुम्हें कष्ट सहना पड़े। दृढ़ विश्वास रक्खो कि उनकी आज्ञा मानने से हमारा हित ही होगा। देखो, रामचन्द्रजी ने पिता की आज्ञा मानकर वनवास स्वीकार किया था। अगर वे ऐसा न करते तो क्या कोई उनकी बड़ाई करता? कभी नहीं। इसलिये बालको! माता-पिता को किसी प्रकार दुःखित न करना चाहिए; उन्हें सब से अधिक प्रिय जानना, क्योंकि जान माल आदि सब पदार्थ तुम्हें इनसे ही मिले हैं। यह मत समझो कि माता--पिता का भरण-पोषण कर देने में ही तुम्हारा कर्त्तव्य समाप्त होगया। क्योंकि भरण-पोषण जानवरों का भी किया जाता है, फिर भक्ति विना दोनों में अन्तर ही क्या रहा? विना भक्ति भरण-पोषण सच्ची सेवा नहीं कहलाती। इसलिये माँ-बाप के मन की बात ताड़कर काम करे वही उत्तम पुत्र है। जो माता पिता के कहने से काम करे, वह मध्यम पुत्र है। श्रद्धा विना जो काम करे, वह अधम है और माता-पिता के कहने पर भी जो कभी न करे वह अधमाधम अर्थात् अत्यन्त नीच है। हर एक बालक

को उत्तम बनाना चाहिए। जो माँ-बाप को देवता समान समझकर उनकी सेवा करते हैं, उनका जीवन पूर्ण सुखमय व्यतीत होता है।

## पाठ ४

### अतिथिसत्कार।

बालको! भारतवर्ष की अनेक विशेषताओं में से अतिथिसत्कार की प्रवृत्ति भी मुख्य है। अतिथिसत्कार भारतीय सभ्यता का प्राण है। प्राचीन काल में अतिथियों का सत्कार करने के लिये लोग लालायित रहते थे। वे सत्कार का अवसर पाते ही अपने को धन्य मानते थे। वास्तव में अतिथिसत्कार करना मनुष्य-मात्र का कर्त्तव्य है। इसमें प्रेम सेवा सहानुभूति और कर्त्तव्यपालन का रहस्य कूट कूटकर भरा है। बिना प्रेम अतिथियों का सत्कार नहीं होता, इसलिए अतिथिसत्कार करने वाले में प्रेम होता ही है या होना ही चाहिए।

यदि कोई निस्सहाय व्यक्ति भूला-भटका संकटों का मारा तुम्हारे घर आ पहुंचे, तो उसका स्वागत करो। मीठे वचन बोलो। बैठने को स्थान दो। अपनी हैसियत के अनुसार उसकी आवश्यकताओं को पूरी करदो, सभ्यता से बर्ताव करो। प्रेमभाव दिखलाओ। अहा! वह कितना प्रसन्न होगा? उसे अपार आनन्द होगा और तुम्हें सच्चे हृदय से आशीष देगा। यही उसके प्रति तुम्हारी सेवा है। देखो अतिथिसत्कार और सेवा में कितना अधिक सम्बन्ध है! इसी तरह सहानुभूति और कर्त्तव्यपालन गुण भी अतिथिसेवक में होने चाहिए।

यदि कोई शत्रु तुम्हारे घर आवे, तो उसका भी स्वागत करो। यदि कोई तुम से बड़ा है, तो "आइये, पधारिये" कहकर, आसन से उठो और ऊँचे आसन पर बैठाओ। फिर तुम बैठो। ऐसा करने से तुम जब उसके घर जाओगे तो वह भी तुम्हारा वैसा ही सत्कार करेगा, जैसा तुमने उसका किया था। किन्तु यह सोचकर सत्कार न करो। सदा यही विचार रक्खो, कि अतिथियों का सत्कार करना चाहिए, क्योंकि यह हमारा कर्त्तव्य है, सभ्यता है। यदि अपने आदर सत्कार के लालच से दूसरों का आव-आदर करोगे, तो वह स्वार्थ ठहरेगा। स्वार्थी को कहीं आदर सत्कार नहीं मिलता। मतलब यह है कि यदि अपना कर्त्तव्य समझकर अतिथियों का आदर करोगे तो पुण्य होगा तथा तुम्हें भी आदर सत्कार प्राप्त होगा।

## पाठ ५

### दूसरे की गुप्त बात प्रगट न करना.

बालको! तुम बिनौला तो जानते ही होगे और यह भी जानते होगे कि वह बहुधा गाय भैंसों के बांट के काम आता है। इसके सिवा उसमें एक ऐसा भी गुण है, जो अधिकतर मनुष्यों में नहीं पाया जाता। क्या तुम जानते हो कि वह गुण दूसरों के गुप्त अंगों को आच्छादन करना है। बेचारा छोटा सा बिनौला अपने तन का अर्थात् कपास का त्याग करके उससे हमारे अंगों को ढँक देता है। परन्तु बहुतेरे मनुष्यों में एक दुर्गुण होता है कि वे दूसरों की गुप्त बात छिपाने के बदले जब तक उसे प्रगट नहीं करदेते तब तक चैन नहीं पाते। सदाचार और सभ्यता दोनों दृष्टियों से किसी

की गुप्त बात प्रकट करना अत्यन्त अक्षम्य अपराध है। जिसमें यह बुरी लत हो, उसे बड़ा भयानक समझना चाहिए। बहुत लोग केवल मनोरंजन के लिये ऐसा करते हैं। उनका मनोरंजन कभी २ आपत्तियों का पहाड़ ढादेता है। ऐसे भयङ्कर मनोरंजन को शैतानी लीला कहना अधिक उचित है। इस दुर्गुण से कभी २ जान जाने तक की नौबत आपहुँचती है। एक कथा है कि—

किसी समय पृथिवीपुर नामक नगर में सुन्दर नाम का राजा था। एक बार वह राजा वक्रशिक्षित (उलटी शिक्षा पाये हुए) घोड़े पर सवार हुआ। वह घोड़ा उसे जंगल में लेगया। जंगल तक दौड़ते २ थक जाने से वह ठहर गया। इसी समय राजा सुन्दर उतरा और थकावट का मारा किसी वृक्ष के नीचे सोगया। उसी समय एक छोटा सा सर्प राजा के मुख में प्रवेश कर गया। राजा लौटकर घर आया परन्तु पेट की पीड़ा के मारे बेचैन होगया। उसने बहुत यत्न किये पर एक भी कारगर न हुआ। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि प्राणत्याग करने के लिये गंगाजी जाना चाहिए। यह विचार कर वह रानी को साथ लेकर चला। मार्ग में राजा किसी जगह एक बड़ के नीचे सोगया। उस समय रानी जाग रही थी। पास ही एक बाँबी में कोई सर्प रहता था। इतने में वह सर्प, जो राजा के पेट में घुसा हुआ था, कुछ बाहर निकला। उस समय बाँबी में रहा हुआ साँप उससे बोला "रे दुष्ट! राजा के पेटसे बाहर निकल। क्या तू नहीं जानता कि मैं तेरे विनाश का इलाज जानता हूं। यदि कोई पुरुष कड़वी ककड़ी की जड़ कांजी में बांटकर पीजावे तो अनायास ही तेरा खात्मा होजाय"। यह धमकी सुनकर उसे भी रोष आया। उसने डपटकर कहा—मैं भी तेरे नाश का उपाय भलीभाँति

जानता हूं। यदि कोई पुरुष तेल गर्म करके तेरे बँबीठे में डाले तो तेरा सत्यानाश हो जाय और बबीठे का खजाना भी पालेवे। पर क्या किया जाय, कोई कान देने वाला नहीं है।

दोनों सांपों की आपस की सब बातें रानी ने सुनलीं और राजा के जागने ही सब कह सुनाई। राजाने सांपों के कहे अनुसार उपायों से नीरोगता और खजाना दोनों प्राप्त किये।

बच्चो! यदि दोनों सर्प एक दूसरे की गुप्त बातों को प्रकट न करते तो राजा किसी का बाल बांका न कर सकता। पर उनमें दूसरे की गुप्त बात प्रगट करने का निंद्य दुर्गुण था। इसी दुर्गुण ने उनका सर्वनाश किया। निस्सन्देह दूसरे का रहस्य प्रकट करना ऐसा ही हानिकारक है। इसलिए शास्त्रों में इसे पाप माना है। परन्तु यदि किसी षड्यन्त्र से किसी को हानि होने की आशंका हो तो केवल दूसरों की भलाई के लिये उन्हें सावधान करदेना अनुचित नहीं है। परन्तु स्वार्थ कषाय या मनोरंजन के लिये ऐसा करना ठीक नहीं है।

## पाठ ६

### भ्रातृप्रेम.

बालको! तुमने बहुधा सुना होगा कि संसार में भाई के समान दूसरा साथी नहीं है। यदि तुम्हारे भाई हो, और वह तुम से और तुम उससे प्रेम करते होओ, तो कोई तुम्हारी ओर आँख नहीं उठा सकता। आपत्ति आने पर जब मित्र लोग किनारा काटने लगते हैं, तब भाई ही सहायक होता है। इसलिए कहावत भी है "भाई वही जो विपद् सहाय"।

ई० सन् १५८५की बात है। एक बार पुर्तगाल देश के लिसबन नगर से एक जहाज़ गोआ आरहा था। उस जहाज़ में लगभग बारह सौ मनुष्य थे। रास्ते में मल्लाहों की लापरवाही से वह एक चट्टान से टकरा गया। अतः जहाज़ की पेंदी में छेद हो जाने से उसमें पानी भर आया। यह दशा देख यात्रियों को मानो काठ मार गया; उन्होंने जिन्दगी की आशा त्याग दी। कप्तान जहाज़ का बचना असंभव जान एक डोंगी निकाल और थोड़ासा खाने पीने का सामान साथ में लेकर रवाना हुआ। सब ने चाहा कि हम डोंगी पर चढ़ कर अपने प्राण बचावें, परन्तु डोंगी पर चढ़े हुए लोगों ने नंगी तलवारों से उनका सामना किया और किसी को न आने दिया। क्योंकि यदि वह ज्यादा बोझ से भारी होजाती तो डूब जाने का भय था। इस प्रकार कप्तान उन्नीस आदमियों को डोंगी में बैठाकर चला। जब विपत्ति आती है तब अकेली नहीं आती। इसी नियम के अनुसार यहाँ भी आपत्ति पर आपत्ति आने लगी। कप्तान बीमार होगया और शीघ्र ही मर गया। उसके मरते ही "तू तू मैं मैं" होने लगी। प्रत्येक अपने को सब का सरदार मानने लगा। यह दुर्दशा देख कुछ समझदारों ने एक बूढ़े आदमी को कप्तान चुना।

कुछ दिन बीते। किनारे का कहीं पता न चला और खाने पीने का सामान समाप्त होने आया। कप्तान ने कहा-भोजन अधिक से अधिक तीन दिन चल सकता है। इतनी सामग्री से हम सब का निर्वाह होना कठिन है। इसलिए सब के नाम की चिट्ठियाँ डाली जाँय और प्रत्येक चौथी चिट्ठी में जिसका नाम निकले उसे समुद्र में फेंक दिया जाय। इस बात को सब ने स्वीकार किया। सब के नामकी चिट्ठियाँ डाली गईं, परन्तु कप्तान एक पादरी और एक बढ़ई के नाम की चिट्ठियाँ नहीं

डाली गई। क्योंकि उनकी आवश्यकता थी। जिनके नाम की चिट्ठियां निकलीं, उन्होंने ईश्वर की प्रार्थना करते हुए समुद्र में अपने प्राण गँवाए। जब चौथे के गिरने का समय आया, तो उसका सगा छोटा भाई, जो उसी डोंगी पर सवार था, हक्का-बक्का होकर उठा और भाई के गले से लिपट कर बोला— "भैया! मेरे जीते जी आप नहीं मर सकते। आप मेरे बड़े भाई हैं। आपके ऊपर अपने प्राण न्योछावर कर दूंगा, पर आपको मरने न दूंगा। आप विवाहित हैं। आपके ऊपर स्त्री और सब बाल-बच्चों का भार है। मैं कुँवारा हूं। अतएव आपके बदले मेरा मर जाना ही अच्छा है"।

छोटे भाई की ममतामयी बातें सुन, बड़ा भाई भौंचक्कासा रह गया। उसने कहा—"मेरे प्यारे भाई! तू हठ मत कर। चिट्ठी मेरे नामकी निकली है। अपने प्राणों की रक्षा के लिये दूसरे प्राणियों के प्राण लेना घोर पाप है। मैं यह पाप न करूंगा। फिर तुम्हारे विना मेरा जीवित रहना भी कठिन है। शोक और पछतावे के मारे कभी न कभी आत्मघात करना ही पड़ेगा। इसलिये मेरा कहना मान और मुझे मर जाने दे"। छोटे भाई ने कहा— "आप निश्चय समझिये कि मैं अपनी आंखों के सामने आपको प्राण त्याग न करने दूंगा। इतना कहकर उसने जेठे भाई के पैर पकड़ लिए और फूट फूट कर रोने लगा। जेठे भाई ने कहा—"भैया! मान जा। हठ मत कर। मुझे मर जाने दे"। पर छोटे भाई ने उसकी बात स्वीकार न की। अन्त में लाचार होकर उसे उसकी बात माननी पड़ी।

छोटा भाई समुद्र में डाल दिया गया। वह तैरना अच्छा जानता था। इस कारण समुद्र में तैरने लगा। थोड़ी देर बाद

डोंगी के पास आया और दाहिने हाथ से पतवार पकड़ने लगा। एक केवटिया ने यह हाल देख उसका हाथ काट लिया। अब वह बायें हाथ से तैरने लगा। तैरते २ फिर डोंगी की ओर आया और बायें हाथ से पतवार पकड़ने लगा। लेकिन केवटिया ने बायां हाथ भी काट डाला। तब वह दोनों कटी हुई भुजाओं को ऊपर उठाकर नाव के पास तैरता २ चलने लगा। उसकी ऐसी दशा देखकर सब का जी भर आया। सब ने एक स्वर से कहा—भाग्य में जो बदा होगा, सो होगा। हमारा कर्त्तव्य है कि ऐसे भ्रातृस्नेही का प्राण बचावें। यह कह कर उसे झटपट चढ़ा लिया। नाव वाले सारी रात चलते रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही मुंजबीक के पहाड़ की तराई की धरती दिखाई दी। धरती देखकर सब के जी में जी आया। पास ही पोर्तगाल के लोगों की एक बस्ती थी। वहां सब लोग पहुँच गये। वहां के लोगों ने जब उसके भ्रातृप्रेम का हाल सुना तो अत्यन्त प्रसन्न हुए।

वास्तव में ऐसे बन्धुप्रेमी बन्धु धन्य हैं। बालको! यदि आपत्ति आजाय तो उसकी परवाह न करके भाई की सहायता करो। उससे सदा प्रेम का बर्ताव करो।

## पाठ ७

### स्वास्थ्यरक्षा.

एक विद्वान् का कथन है कि "स्वस्थ शरीर ही में स्वस्थ मन रह सकता है"। इससे स्पष्ट है कि धर्म और परमार्थ के लिये भी शरीर का स्वस्थ रहना अत्यन्त आवश्यक है। शरीर नीरोग न हो तो दूसरी कोई भी वस्तु सुख नहीं पहुँचा सकती।

कहावत भी है—"पहला सुख निरोगी काया"। अतएव-निरोग आदमी का जीवन जितना सुखमय व्यतीत होता है, उसका शतांश भी सुख रोगी समृद्धिशाली को नसीब नहीं होता। अब तुम विचार सकते हो कि सम्पत्ति और स्वास्थ्य में, कौन वस्तु अधिक मूल्यवान् है। स्वास्थ्य ही संसार में परम सुख है, स्वास्थ्य ही परम आनन्द है। अपने आपको स्वस्थ रखना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है। लेकिन स्वास्थ्य तब ही बना रह सकता है, जब हम स्वास्थ्य के आवश्यक नियमों को जानकर उनके अनुसार बर्ताव करें। भला जो अपने शरीर ही की रक्षा नहीं कर सकता वह दूसरों का क्या भला कर सकता है? अत एव अपनी, अपने परिवार की और दूसरे मनुष्यों की भलाई के लिये शरीर नीरोग रखने की चेष्टा प्राणपण से करनी चाहिए।

बहुत से लोग शरीर रक्षा को एक साधारण बात समझते हैं। इसीलिये अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान नहीं देते। उनका विचार होता है कि जब तक अंगोपांग काम करते हैं, तब तक उनकी चिन्ता करना व्यर्थ है। परन्तु ऐसा विचार करने वाले भयंकर भूल करते हैं। वे लोग आग लगने पर कुँआ खोदना चाहते हैं। बीमारी होने पर उसका उपाय किया जाय, इसकी अपेक्षा ऐसा उपाय करना ही उचित है, जिससे बीमारी होवे ही नहीं। संभव है बीमारी होने के बाद कोई उपाय कारगर न हो। इसलिये पहले बीमारी न होने देना ही चतुराई है। पैर में कीचड़ लगाकर धोने की अपेक्षा, कीचड़ न लगने देने में ही बुद्धिमत्ता है।

जो लोग अपने स्वास्थ्य की लापरवाही करते हैं, वे अपना ही अहित नहीं करते, बल्कि देश और जाति का भी अहित

करते हैं। क्योंकि वे भी देश और जाति के एक अंग हैं। इस कारण उनकी हानि से देश और जाति की हानि होती है। इसके सिवा उनके रुग्ण होने से उनकी सन्तान भी रुग्ण ही होती है। फलतः स्वदेश का सामुदायिक बल क्षीण होता जाता है। आजकल हम लोगों की निर्बलता का कारण यही है कि हम स्वास्थ्य-सुधार के नियमों को न पालन करते हैं और न जानते ही हैं। इस ही कारण से घर घर औषधियों की आवश्यकता पड़ती है। अगर सच पूछा जाय तो बीमार होना न होना तुम्हारे ही हाथ की बात है। तुम चाहो तो बीमार हो जाओ, और न चाहो तो स्वस्थ रह सकते हो। परन्तु इसके लिये नियमित आहार विहार और उचित परिश्रम की आवश्यकता है। प्रातः काल सूर्योदय से पहले जागने वाला मनुष्य कभी बीमार नहीं होता। इसलिए अपने स्वास्थ्य की रक्षा चाहने वालों को चाहिए कि सूर्योदय के बाद तक न सोते रहें।

गर्मी के दिनों के सिवाय दिन में सोना भी बीमारी को आमन्त्रण देना है। अतः दिन में सोने का अभ्यास न डालना चाहिए। बहुत लोग रात्रि में नाटक, सिनेमा (बाइसकोप) और सरकस देखते हैं तथा दिन में सोते हैं। वास्तव में प्रकृति से विरुद्ध ऐसी क्रियाएँ करना प्रकृति से युद्ध करना है, और प्रकृति से युद्ध करके कोई विजयी नहीं होसका, न होसकता है।

## पाठ ८

### केशरी चोर.

किसी समय श्रीपुर नामक नगर में एक सेठ रहता था। उसका नाम पद्म और उसके बेटे का नाम केशरी था। केशरी

कुसंगति में पड़कर चोरी करने लगा। उसे चोरी करने का ऐसा चसका लगा कि उसका अत्याचार असह्य हो उठा। सब ने मिलकर राजा से फ़र्याद की। राजा ने उसे देशनिकाले का दंड दिया।

केशरी रास्ते में जाता हुआ सोचने लगा—"आज किसके घर चोरी करूंगा"। वह इस प्रकार सोचता विचारता चोरी की फिराक में घूमता हुआ किसी सरोवर के तीर पहुँचा। वहां किनारे के पेड़ पर चढ़कर इधर उधर दृष्टि दौड़ाने लगा। इतने में एक सिद्ध पुरुष आकाश से उतर कर, खड़ाऊँ किनारे पर उतार तालाब में स्नान करने लगे। मानो बिल्ली के भाग्य से छींका टूटा। केशरी इसे अचूक मौका समझ कर खड़ाऊँ पहिनकर आकाश मार्ग से अपने शहर में आगया। खड़ाऊँ हाथ लगने से उसे बदला लेने का अच्छा अवसर मिला। अब वह लोगों का सर्वस्व चुराकर भीषण उपद्रव मचाने लगा। इतने से उसकी भूख न बुझी तो रनवास में घुसकर वहां भी हाथ साफ़ करने लगा। राजा ने बहुत उपाय किये पर सब निष्फल सिद्ध हुए— अकारथ गये।

एक दिन राजा हाथ में नंगी तलवार लेकर चोर की तलाश में निकला। जंगल में, पूजा से प्रसन्न हुई चण्डिका को देखकर चोर के आने की संभावना देख राजा वहीं छुप रहा। इतने में चोर आया और देवी को दंडवत करके बोला— "हे देवी! यदि आज ज्यादा धन की प्राप्ति होगी तो तेरी विशेष पूजा करूंगा"। इतना कहकर जैसे ही वह खड़ाऊँ पहनने लगा, वैसे ही राजा ने एक खड़ाऊँ उठाली। केशरी राजा को सामने देख हड़बड़ाकर भागा, राजा के छिपे हुए योद्धाओं

ने उसका पीछा किया। इस समय केशरी अपने दुष्कृत्यों पर पछता रहा था। इतने में ही उसे एक जैन मुनि दृष्टि गोचर हुए। उनके पास जाकर उसने किये हुए पापों से छुटकारा पाने का उपाय पूछा। मुनि बोले—"एक पुरुष यदि सौ वर्ष तक एक पैर से खड़ा होकर तपस्या करे, और दूसरा केवल एक सामायिक करे तो भी वह पहला मनुष्य दूसरे की बराबरी नहीं कर सकता। हे केशरी! तू सच जान कि सामायिक की महिमा अपरम्पार है"। मुनिराज के वचनामृत सुन केशरी ने तुरंत सामायिक ले ली। वह विचारने लगा—"अहो! मैं ने कुसंगति में पड़कर व्यर्थ ही पाप कर्म किये। मुझे धिक्कार है"। इस तरह शुभ ध्यान में आरूढ़ होकर केवलज्ञान प्राप्त किया।

राजा, केशरी को समता और संयम की मूर्ति देखकर बड़ा आश्चर्यान्वित हुआ। राजा को चकित हुआ देख मुनिराज बोले—महाराज! आप विस्मित क्यों होते हैं। सामायिक का माहात्म्य ही ऐसा है कि अन्यायी और अनाचारी भी इससे अपना कल्याण कर सकता है।

मुनिराज द्वारा की हुई सामायिक की प्रशंसा से प्रसन्न होकर राजा ने भी प्रतिदिन सामायिक करने की प्रतिज्ञा लेली। केशरी ने अपने नाम को सार्थक कर दिखाया। उसने अपने आत्म-पराक्रम से सामायिक के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का नाश-कर अनन्त सुखमय मुक्ति को प्राप्त किया। सचमुच सामायिक की महिमा अपार है।

# पाठ ६

## शीलसन्नाह.

प्राचीन काल में किसी जगह क्षितिप्रतिष्ठ नामक नगर था। उस नगर के राजा की पुत्री का नाम "रुपी" था। रुपी राजा की इकलौती बेटी थी। इसलिये वह राजा को प्राणों से प्यारी थी। जब वह ब्याह के योग्य हुई तो राजा ने बड़े ठाट बाट से उसे ब्याह दिया। पर होनहार को कौन टाल सकता है। रुपा शीघ्र ही विधवा होगई। अब उसने विचार किया कि शील की रक्षा करने के लिये चिता में जलकर प्राण गँवा देना चाहिए। उसने अपना निश्चय पिता के सामने प्रकट किया। पहले कह चुके हैं कि रुपा राजा को बड़ी लाड़ली बेटी थी। उसने उसे चिता में जलने न दिया। राजा ने कहा—"बेटी! पतंगिया की तरह अग्नि में जलकर प्राणों से हाथ धो बैठना वृथा है। हां, शील की रक्षा के लिये प्राणों की भी ममता न करना अत्युत्तम मार्ग है। प्राण जायँ तो भले ही चले जायँ पर शील न जाना चाहिए। प्राणरक्षा और शीलरक्षा में से दोनों की ही रक्षा न हो तो शील की रक्षा करनी चाहिए। मतलब यह है कि प्राणों की रक्षा यद्यपि आवश्यक है परन्तु शील की रक्षा उससे भी ज्यादा आवश्यक है। इसलिये जब तक दोनों की रक्षा होसके तब तक प्राणों को व्यर्थ खोना उचित नहीं है। जीवन को कायम रखकर काम आदि विकारों पर आत्मबल के द्वारा विजय प्राप्त करना महत्वास्पद और प्रशंसनीय है। अतः पुत्री! तू अपने इस विचार को छोड़दे और जीवित रहकर शील की रक्षाकर और धर्म में मन लगा।

राजा का उपदेश सुन रुपा ने अपना विचार बदल दिया। कुछ दिनों बाद राजा का देहान्त होगया। उसके कोई पुत्र न

था, इससे रुपा राज्य की अधिकारिणी हुई। रुपा अब रानी होगई। वह क्रमशः राज्य करते २ युवती हुई। एक बार राजसभा में शीलसन्नाह नामक मंत्री बैठा था। उसके सामने रुपा ने राग भरी दृष्टि से देखा। मंत्री ने रुपा का अन्दरूनी विचार समझ लिया। वह बड़ा ही शीलवान् था। उसने सोचा—कोई कितना ही बचे पर काजल की कोठरी से विना दाग लगे नहीं बच सकता। इसलिये मुझे अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के लिये यह स्थान छोड़ देना चाहिए। यह विचारकर शीलसन्नाह अपनी आजीविका को लात मारकर वहां से चल दिया। सच है संयमी पुरुष अपने सदाचार के लिये क्या नहीं छोड़ देते। अर्थात् वे सब कुछ त्यागकर भी संयम की रक्षा करते हैं।

शीलसन्नाह रुपा का राज्य छोड़ अन्यत्र जा विचारसार राजा की नौकरी करने लगा। वहां रहते २ जब कुछ दिन बीत गये, तब विचारसार ने उससे कहा—"शीलसन्नाह! पहले तुम जिस राजा के यहां काम करते थे, उसका क्या नाम है"? शीलसन्नाह ने उत्तर दिया—"नरनाथ! मैं ने जिस राजा की पहले सेवा की थी, उसका नाम भोजन करने से पहले लेना योग्य नहीं है। नाम लेने से दिन भर अन्न से भेंट नहीं होती"। यह कहकर शीलसन्नाह ने रुपा का सिक्का दिखला दिया। राजा शीलवान् शीलसन्नाह की बात सुन बड़ा विस्मित हुआ। उसने मंत्री के कथन की जाँच करने के इरादे से राजसभा ही में भोजन की सामग्री मँगाई और हाथ में कौर लेकर बोला—"अब उस राजा का नाम लो"। मंत्री ने ज्यों ही "रुपी राजा" कहा त्यों ही दूत ने आकर खबर दी कि "आपके नगर को शत्रु राजा ने घेर लिया है"। दूत की बात सुन राजा

विचारसार ने तुरंत ही कौर थाली में पटक दिया और संग्राम के लिये सेना सजाकर प्रस्थान किया। दिन भर खूब घमासान युद्ध हुआ, शीलसन्नाह युद्ध का अंत करने गया। शत्रु के योद्धाओं ने उसका सामना किया। परन्तु पुण्यात्मा जहां जाते हैं, वहीं उनकी महिमा होती है। शासनदेवी ने समस्त प्रतिपक्षियों को स्तंभित कर दिया। उसी समय आकाशवाणी हुई कि-"नमोस्तु शीलसन्नाहाय ब्रह्मचर्यरक्ताय"। अर्थात् ब्रह्मचर्य में आसक्त शीलसन्नाह को नमस्कार हो। ऐसा कहकर देवताओं ने फूलों की वर्षा की। शीलसन्नाह चकित हो, ज्यों ही विचार करने लगा, त्यों ही उसे अवधिज्ञान होगया। अब तक उसके सामने जो एक प्रकार का परदा था, वह दूर हो गया। उसके सामने दिव्य प्रकाश प्रकाशित होने लगा। बस, उसने उसी समय केशलोंच किया और मुनिदीक्षा अंगीकार कर ली। अन्त में मुनिराज शीलसन्नाह ब्रह्मचर्य के प्रभाव से मुक्ति को प्राप्त हुए।

प्यारे बालको! ब्रह्मचर्य की अमित महिमा है। इस लोक और परलोक दोनों को सुख पूर्ण बनाने के लिए ब्रह्मचर्य से अधिक अच्छा दूसरा उपाय नहीं है। ब्रह्मचर्य से शरीरबल और मनोबल की प्राप्ति होती है। जो महापुरुष मन से भी ब्रह्मचर्य पालते हैं, उन्हें आत्मबल प्राप्त होता है। ब्रह्मचारी के सामने तमाम ऋद्धि सिद्धियां और देवतालोग हाथ बांधे खड़े रहते हैं। शीलसन्नाह को देखो। कहां तो घनघोर संग्राम, जिसे देखने मात्र से ही हाथों के तोते उड़ने लगते हैं और कहां ऐसे भयंकर प्रसंग में देवों का पुष्पवृष्टि करना। यह सब ब्रह्मचर्य की महिमा है। सच है— ब्रह्मचर्य से सब सिद्धियाँ अनायास ही प्राप्त होजाती हैं।

# पाठ १०

## सामायिक.

पण्डितजी — सुमतिलाल! आज पाठशाला में देर से क्यों आये? सच बताओ, रास्ते में खेलने लगे थे?

सुमति०-जी नहीं, घर से सीधा यहीं आरहा हूँ। आज अष्टमी थी, प्रातःकाल दो सामायिक की थीं इसी से इतनी अबेर होगई है।

पण्डितजी-बहुत ठीक। अच्छा यह बताओ, सामायिक क्या वस्तु है-सामायिक किसे कहते हैं ?

सुमति०-एक जगह आसन बिछाकर बैठ जाना मुखवस्त्रिका लगाकर बोलना, यदि कारणवश चलने का काम पड़े तो धरती देख-भाल कर चलना, सामायिक कहलाता है। इस दशा में ४८ मिनट तक रहना पड़ता है।

पण्डितजी—सुमतिलाल! तुम प्रतिदिन सामायिक करते हो, यह तो बड़ी अच्छी बात है। किन्तु सामायिक का स्वरूप समझकर करो तो सोने में सुगंध हो जाय। असल बात तो यह है कि आसन जमाकर बैठने से ही सामायिक नहीं कह-लाती।

सुमति०— महाशय! आप ही सामायिक का स्वरूप बताने का अनुग्रह कीजिये। सामायिक किसे कहते हैं?

पण्डितजी ने सब छात्रों की ओर लक्ष्य करके कहा-"विद्या-र्थियो! दोनों समय सामायिक करना दैनिक कर्त्तव्य है। यह शास्त्रों में आवश्यक कर्त्तव्य बतलाया गया है। आवश्यक कर्त्तव्य को रोज़ २ अवश्य करना चाहिए। किन्तु जब तक उसके सच्चे स्वरूप को विदित न कर लिया जाय, तब तक उतना अधिक

लाभ नहीं होता, जितना होना चाहिए। इसलिए आज का पाठ कभी मत भूलना। सुनो, सामायिक समभाव को कहते हैं। अर्थात् आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान का त्याग करके संसार सम्बन्धी समस्त संकल्प विकल्पों और कार्यों का त्याग करके, कम से कम एक मुहूर्त पर्यन्त शत्रु मित्र पर सम-भाव रखना सामायिक व्रत है। सामायिक दो तरह की होती है। (१) भावसामायिक और (२) द्रव्यसामायिक। बाहर की सब वस्तुओं का त्याग करके आत्म-स्वरूप के चिन्तन में मग्न होने को भावसामायिक कहते हैं। दूसरी द्रव्य सामायिक अर्थात् शास्त्रोक्त समस्त विधिका पालन कर-ना। सामायिक के लिये ऐसा एकान्त स्थान चुनना चा-हिए, जहां कोलाहल न हो, मन में क्षोभ पैदा करने के हेतु न हों और जो किसी प्रकार से अशुचि न हो। सामा-यिक में शरीर को अलंकारों से अलंकृत करने और बहुमू-ल्य वस्त्रों की आवश्यकता नहीं, किन्तु दो सादे स्वच्छ और सफ़ेद वस्त्रों की आवश्यकता है-एक ओढ़ने के लिए दूसरा पहनने के लिए। इनके सिवा यथासंभव एक आसन, मुखवस्त्रिका रजोहरणी माला और सामायिक में उपयोगी धार्मिक पुस्त-क भी होवे तो अत्यन्त श्रेयस्कर है।

सामायिक में मन वचन काय की शुद्धि रखना आवश्यक है। वचन और काय की प्रवृत्ति मन की प्रवृत्ति पर अवलम्बित है। जैसे कलंदर बन्दर से मन चाहा नाच नचाता है, तैसे ही मन, वचन और तन से अपने अनुकूल काम कराता है। जिसने मन को वश में किया, उसने वचन और काय को भी वश में कर लिया समझो। मन को स्थिर किये बिना विषम भावों का परित्याग कर समभावों

की ओर उन्मुख होना अशक्य है। और सम-भाव ही सामायिक है। इसका यह अर्थ हुआ कि मन को वश किये बिना निर्दोष सामायिक नहीं होसकती। अतः मन के दस दोषों से बचकर मन की शुद्धि-पूर्वक सामायिक करना चाहिए।

सामायिक में मन शुद्धि की जैसी आवश्यकता है, वैसी वचनशुद्धि की भी। मौन धारण करना सर्वश्रेष्ठ है। यदि वह न होसके, तो हितावह, प्रिय, कोमल और सत्य वचन ही बोलना चाहिए। सांसारिक कार्यों में आदेश उपदेश न करना चाहिए। असत्य, सत्यासत्य—मिश्र, कपटयुक्त, वचन भी न बोलना चाहिए। बचन के दस दोषों का परिहार करना अत्यावश्यक है।

सामायिक में शरीर शुद्ध रखना भी आवश्यक है। क्योंकि बाह्याचार से अंतरंग की शुद्धि का स्मरण रहता है। दूसरे लोग "यह व्रतवान् है" ऐसा समझ सकते हैं। शरीर की शुद्धि के साथ वस्त्र उपकरण और स्थान की शुद्धि का निकट सम्बन्ध है। इसलिए ये सब शुद्ध होने चाहिए। गृहस्थों की अंतरंग शुद्धि बाह्य शुद्धि पर निर्भर है। यह बात लक्ष्य में रखकर शास्त्रोक्त सब क्रियाएं आचरण में लानी चाहिए।

## पाठ ११

### देशाटन (यात्रा).

नीतिशास्त्रों में देशाटन का बड़ा महत्व है। सचमुच देशाटन करने से बहुतेरे लाभ होते हैं। जब हम देशाटन करें तो किसी प्रकार का स्वार्थ भले ही मुख्य हो, पर उससे होने वाले अन्य लाभों की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। भिन्न २ देशों में

भ्रमण करने से व्यवहार और परमार्थ सम्बन्धी अनुभव बढ़ता है। अनेक पवित्र स्थानों में भ्रमण करने से, वहां के शुद्ध वातावरण से विचारों में शुद्धता आती है। कभी किसी स्थान पर जाने से जातिस्मरण ज्ञान (पूर्वभव को जान लेने वाला ज्ञान) उत्पन्न होजाता है। इसके सिवाय चतुरता, विद्या, लक्ष्मी सहिष्णुता आदि का भी लाभ होता है। भ्रमण करने से मन मजबूत होता है और हृदय खिलता है; भिन्न २ देशों के नियम बर्ताव, रहन-सहन रीति-रिवाज देखने से, उनके संसर्ग में आने से, अपने और दूसरों के आचार-विचार की तुलना करने का अवसर मिलता है। इस से हम भले को अपना सकते और बुरे को छोड़ सकते हैं। भिन्न २ प्रकृतियों के मनुष्यों के सम्पर्क में आने से मनुष्यों के स्वभाव का परिज्ञान होता है। और जगह २ के प्राकृतिक सौन्दर्य के निरीक्षण करने का अवसर मिलता है। बिना भ्रमण के धर्म का भी प्रचार नहीं होसकता। बौद्ध साधुओं ने विदेशों में खूब भ्रमण किया था। इसी से उनके धर्म का समस्त एशियाखण्ड में प्रचार होगया था। आजकल भी बौद्धधर्म के मानने वाले हरएक धर्म के मानने वालों से अधिक हैं। यह देशाटन की ही महिमा है। प्राचीन काल में आर्य लोगों ने बहुत भ्रमण किया था। यह बात अनेक कथाओं और इतिहास से मालूम होती है। जहां अपने पवित्र आचरण में धब्बा न लगे, वहां जाने में झिझकना नहीं चाहिए। वहां की विद्या, व्यापार का ढंग, शिक्षा की परिपाटी आदि अच्छी २ बातें सीखने में संकोच का त्याग कर देना ही अच्छा है।

देशाटन की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही उसमें

जोखिम भी है। आजकल रेलगाड़ी के चलन से कुछ २ आशङ्काएँ कम होगई हैं। पहले लूटमार होती थी, अब ठगाई बहुत होती है, मुसाफिरी में जो हानियां होती हैं, उनका मुख्य आधार तीन बातों पर है। (१) लोभ (२) ब्रह्मचर्य की शिथिलता (३) असावधानी।

(१) लोभ—बहुतेरे धूर्त बातें मारकर लोगों को धोखा देकर ठग लेते हैं। कोई २ पीतल या लोहे की चीजों पर सोने का रंग चढ़ा कर और यह प्रकट करके कि यह सोना हमें कहीं पड़ा मिला है, कम मूल्य में देने लगते हैं। मुसाफिर लोभ के जाल में फँसकर उसे खुशी से खरीदते और फिर हाथ मलते रह जाते हैं। कोई २ धूर्त अपना भेष भले आदमी का सा बना लेते हैं। वे अच्छे कपड़े बढ़िया जूते और घड़ी छड़ी से सजकर यह प्रगट करते हैं, कि उनका माल असबाब चोरी चला गया है। इसलिये ठिकाने लगने के लिये धन की सहायता मांगते हैं। भोले भाले लोग उनकी चालाकी ताड़ नहीं सकते; और फँस जाते हैं। कितनेक ठग, साधु सन्यासी का बाना बना कर, किसी गोलमटोल लुढ़िया को लेकर कहते हैं—"यह शालिग्राम जिस घर में रहते हैं, वहां के लोग मालामाल होजाते हैं। हम साधु संत ठहरे, हमारा द्रव्य से सरोकार क्या! तुम से जो बन सके, अपनी श्रद्धा के अनुसार जमात (भेष) जिमाने के लिये चढ़ा दो और इनसे तुम्हीं लाभ उठाओ"।

बहुतेरे आपस में मिले हुए ठग हारजीत का खेल खेलते हैं। उनमें से किसी को जीता देख अजनबी आदमी के मुँह में पानी आजाता है। ठग लोग एक बार उसे भी जिता देते हैं। वह जीत के नशे में उन्मत्त होकर ज्यों २ आगे खेलता जाता है, त्यों २ हार

होनी शुरू होती है। परन्तु उसे पहली जीत के नशे से और आगे होने वाली जीत की कल्पना से हार का खयाल नहीं रहता। यहां तक कि लोग घर के बासन वर्तन और तन के कपड़े लत्ते भी बेचते हुए देखे जाते हैं।

इनके सिवाय और भी इसी प्रकार की धूर्तताओं से लोग ठगे जाते हैं। यह सब ठगाई तब ही होसकती है, जब यात्री में लोभ हो। जिन्हें विना हाथ पैर हिलाये श्रीमान् बनने की हवस होती है, उनकी ही ऐसी दुर्दशा होती है। चौबेजी छब्बे बनना चाहते हैं पर दुबे ही रह जाते हैं। इसलिए यात्रा करते समय निर्लोभता धारण करना अत्यन्त आवश्यक है।

(२) ब्रह्मचर्य की शिथिलता— देशाटन करते समय जैसे अनुकूल संयोग मिलते हैं वैसे प्रतिकूल संयोग भी मिलते हैं। जैसे साधु पुरुषों का संसर्ग प्राप्त होता है, वैसे दुष्ट लुच्चे गुंडों का भी। जब ऐसा खराब संयोग मिलता है, तो कभी २ मनुष्य का मनुष्यत्व भी मिट्टी में मिलजाता है। इन बुरे संयोगों में से ब्रह्मचर्य में शिथिलता आना मुख्य है। जिसके ब्रह्मचर्य में शैथिल्य आजाता है, वह किसी काम का नहीं रहता। यहां तक कि प्राण जाने तक की नौवत आपहुँचती है। इस कारण विना प्रयोजन गली कूचों में घूमना, बड़ा भयंकर है। अक्सर लुच्चे लोग अनेक प्रलोभन देकर इस दुराचार के अन्धे कुँए में ढकेल देते हैं। ऐसे लोगों को पास भी न फटकने देना चाहिए।

(३) असावधानी—यात्रा करते समय असावधान रहने से चोर तमाम माल असबाब उठा लेजाते हैं। या जेब काटकर रुपये पैसे आदि जो कुछ होता है, निकाल लेते हैं। इसलिए यात्रा करते समय चौकन्ना रहना चाहिए। इन तीन बातों के सिवाय

मिष्टभाषण भी अत्यन्त उपयोगी है। यदि हम उल्लिखित विषयों पर पूर्ण ध्यान रक्खें तो देशाटन में होने वाले बहुत से कष्टों से मुक्त हो सकते हैं।

## पाठ १२

### भगवान् महावीर.

(१)

उन सर्वज्ञ प्रभु महावीर के चरणों में नमस्कार हो, जिन्होंने संसार के प्राणियों को दुःखों के दलदल से निकाल कर अक्षय सुख के मार्ग में लगाया।

प्यारे बालको! यह संसार सदा से है और सदा रहेगा। इसका कभी नाश नहीं होता, परन्तु परिवर्तन सदा हुआ करता है। इस परिवर्तन के प्रभाव से कभी धर्म की उन्नति होती है, कभी पाप बढ़ता है। जब भगवान् महावीर का जन्म हुआ, तब धर्म अनाथ-सा हो रहा था। अहा! वह समय बड़ा ही भयानक था। उसकी याद आते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वैदिकधर्म में सर्वत्र हत्याओं का दौरदौरा था। यज्ञ के निमित्त प्रतिदिन अनगिनते पशु तलवार के घाट उतारे जाते थे। वे दीन पशु रंभाते बिल-बिलाते पर कोई माई का लाल उनकी पुकार पर कान न देता था। बेचारे गरीब पशुओं के रक्त से यज्ञ की वेदी लथपथ होजाती थी। बड़े अचम्भे की बात है कि उस समय के हिन्दू इन पापकार्यों से देवी देवताओं का प्रसन्न होना मानते थे। इन सब पापों से पृथिवी काँप उठी थी। सर्वत्र हाहाकार मच गया था। ऐसे समय में किसी महान् पुरुष की आवश्यकता

थी। प्राणियों के सौभाग्य से ईस्वी सन् से ५९८ वर्ष पहले चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान् महावीर का पवित्र जन्म महारानी त्रिशला देवी से हुआ। इसी से यह दिन जैनियों का त्योहार समझा जाता है, और "महावीर जयन्ती" के नाम से अब तक मनाया जाता है। भगवान् के जन्म का उत्सव स्वर्ग के इन्द्रों ने मनाया था। भगवान् के पिता महाराज सिद्धार्थ ने पुत्र जन्म की खुशी में खूब उत्सव कराये, और कैदियों को छुटकारा देदिया। वह समय बड़ा ही अनोखा, बड़े आनन्द का और बड़े सौभाग्य का था।

धीरे धीरे भगवान् अपनी बाल-लीलाओं से माता पिता का मन मोहित करते हुए बढ़ने लगे। जब चलने फिरने योग्य हुए, तो अपने साथी सङ्गियों के साथ इधर उधर घूमने लगे। वे उस समय बालक ही थे, पर उनका पराक्रम अतुल था। कैसा ही कार्य क्यों न हो, कभी हिम्मत नहीं हारते थे। एक समय की बात है— भगवान् अपने साथियों के साथ खेल खेल रहे थे। वे और उनके साथी उमङ्ग में आकर एक बड़ के वृक्ष पर चढ़े। एक देव ने उनके बल की परीक्षा लेने की इच्छा से नाग का रूप धारण किया, और डरावना फण फैलाकर वृक्ष को घेर लिया। साथी लड़के यह हाल देखकर सुन्न रह गये। किन्तु भगवान् तो बली थे, वे निडरता से लीला पूर्वक नाग के फण पर दोनों पैर रखकर नीचे उतर आये। कहते हैं उसी समय नाग भेष धारी देव ने उनकी वीरता से प्रसन्न होकर 'महावीर' नाम रक्खा। सच है—पराक्रमी पुरुषों से डर ही डरता है। वे डर से नहीं डरते।

शास्त्रों में लिखा है कि भगवान् जब शिशु थे, तब भी

अच्छे अच्छे काव्य पढ़ा करते थे। उस समय उनकी बराबरी का कोई विद्वान् नहीं था। कहावत भी है "पूत के पाँव पालने में ही दीखने लगते हैं"। इस प्रकार बढ़ते २ भगवान् यौवन अवस्था में आये। इस समय उनका शरीर बिलकुल नीरोग और स्वच्छ था। स्नायुबन्धन ऐसे दृढ़ थे, जैसे लोहे का घन हो। शिर स्थूल था, कंधे गजराज के कंधों के जैसे मस्त थे। कलाई मज़बूत पुष्ट और सुन्दर थीं। भुजाएँ बेंड़ा के समान पुष्ट थीं। छाती सोने की शिला के समान उज्ज्वल, समतल और चौड़ी थी। शरीर ऐसा भरा हुआ था कि रीढ़हड्डी तक दिखाई न देती थी। जांघें हाथी की सूंड की तरह पुष्ट थीं। आशय यह है कि महावीर स्वामी की शरीर-सम्पत्ति बहुत ही अच्छी थी। इस प्रकार भगवान् महवीर के जन्म और युवावस्था का थोड़ा-सा वर्णन है। इसके बाद का जीवनचरित्र ही भगवान् की महत्ता को प्रकट करता है। यों तो वे बाल्यकाल से ही विरक्त से रहते थे किन्तु अट्ठाईस वर्ष गृहस्थी में रहकर भगवान् के हृदय में वैराग्य की लहर उमड़ी। उन्होंने सोचा— द्रव्य हमें सुखी नहीं बना सकता। मित्र लोग हमें सुखी नहीं बना सकते। सफलता हमें सुखी नहीं बना सकती। और आरोग्यता भी हमें सुखी नहीं बना सकती। यद्यपि ये सब चीजें संसार के मोही जीवों को सुख देने वाली मालूम होती हैं परन्तु वे वास्तविक सुख नहीं दे सकतीं। प्रत्येक प्राणी को सुखी बनने के लिये अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए। दूसरों का सहारा न लेकर अपनी आत्मा को ही खोजना चाहिए, उसे पवित्र बनाना चाहिए। आत्मा के, काम क्रोध लोभ मद माया आदि अनेक शत्रु हैं। इनसे उसकी रक्षा क-

रना हर एक मानव का परम कर्त्तव्य है। यह विचार कर भगवान् ने दीक्षा लेने का निश्चय किया। उन्होंने अपना निश्चय अपने बड़े भाई नंदिवर्धन से कहा। परन्तु उसने अपनी सम्मति न दी और कुछ दिन और गृहस्थी में रहने का आग्रह किया। भगवान को संसार के विषय भोग यद्यपि काले सांप ऐसे डरावने प्रतीत होते थे, परन्तु वे अपने बड़े भाई का आग्रह न टाल सके। उन्हों ने जैसे तैसे दो वर्ष और काटे। पश्चात् इस भावना के साथ, दीक्षा लेली कि संसार इन्द्रजाल के समान है। जगत् के सब पदार्थ पानी के बुलबुले की नाईं बात की बात में नष्ट होते दिखलाई देते हैं। रोग शोक आधि और व्याधि छाया की भांति प्राणियों के साथ सदा बनी रहती हैं। और अवसर पाते ही हाथ साफ़ करती हैं। फिर क्या रह जाता है! केवल अपने किये हुए पुराय और पाप। इनके सिवाय और कोई चीज़ साथ नहीं जाती, इसलिये ही लोक में कहावत प्रचलित है "अपनी करनी पार उतरनी"। उस समय देवों ने स्वर्ग से आकर दीक्षा कल्याण मनाया था। इस प्रकार आजतक जो शरीर राजसी ठाठ के बढ़िया वस्त्रों और अलंकारों से शोभित हो रहा था, अब वह संयम रूपी अलंकारों से सजा हुआ दिखाई देने लगा। निस्सदेह, शरीर के सच्चे अलंकार संयम और तप आदि ही हैं। भगवान् ने इसी अलंकार से अलंकृत होने के लिये संसार के सारे आमोद प्रमोदों को लात मारदी। जिनसे साधारण जन अपनी शोभा मानते हैं, उन केशों को भगवान् ने क्षण भर में घास की तरह उखाड़ कर फेंक दिया, और ऐसा करने में उन्हें ज़रा भी खेद न हुआ।

दीक्षा लेते ही भगवान् को मनःपर्याय नामक ज्ञान उत्पन्न होगया। उससे दूसरे के मन की बात जानी जासकती थी। यह पवित्र दिन ईसा के ५६९ वर्ष पहले मार्गशीर्ष कृष्णा दशमी था।

## पाठ १३

### सब से अच्छा काम.

किसी गाँव में एक बूढ़ा मनुष्य रहता था। उसने बड़ी मेहनत से बहुतसा धन इकट्ठा किया था। तीन पुत्रों को छोड़ उसके और कोई सन्तान न थी। बुढ़ापे के कारण उसे अधिक दिन जीने की आशा न रही, इससे वह अपना सारा धन अपने लड़कों में विभाजित कर देना चाहता था। परन्तु इसके पहले उसने सब की बुद्धि की जाँच करने के लिए एक बहुमूल्य रत्न इस शर्त पर अलग रख दिया कि तीन महीने के अन्दर जो लड़का सब से अच्छा काम कर दिखावेगा उसे वह रत्न दिया जावेगा। यह सुन तीनों लड़के बहुत खुश हुए और अपने अपने काम अलग २ कर दिखाने में लग गये।

कुछ दिनों बाद सब से बड़ा लड़का आकर अपने पिता से बोला—"पिताजी! एक अपरिचित व्यक्ति ने मुझे मुहरों से भरी एक थैली कुछ दिन मेरे पास रखने के लिए सौंप दी। थैली देते समय उसने मुझ से कोई रसीद भी न ली। यदि मैं चाहता तो उस थैली को बड़ी आसानी से हज़म कर सकता था, परन्तु कुछ दिनों के बाद जब वह थैली वापस लेने के लिए आया तो मैं ने

ज्यों की त्यों लौटा दी और न थैली को सम्हालकर रखने का पारितोषिक ही लिया"। यह सुन पिता ने उत्तर दिया—"यह तो तुम्हारा कर्त्तव्य ही था"।

थोड़े दिनों के बाद मँझले लड़के ने अपने पिता के पास आकर कहा—"पिताजी! एक दिन मैं एक तालाब के किनारे, जो बहुत गहरा था, घूम रहा था कि इतने ही में एक बालक उसमें गिर कर डूबने लगा। यह देख मैं अपने प्राण को तुच्छ समझ उस तालाब में कूदा और उस बालक को सकुशल बाहर निकाल उसे उसकी दुखी माता को जो तालाब के किनारे खड़ी रो रही थी, सौंप दिया। क्या यह उत्तम काम न था"। पिता ने जवाब दिया-"यह तो मनुष्य की स्वाभाविक दयालुता का प्रमाण था"।

अन्त में थोड़े ही दिनों में सब से छोटा लड़का आया और अपने पिता से बोला—"पिताजी! एक दिन जब मैं सैर करने जा रहा था, तो मैंने अपने जानी दुश्मन को ढालू धरती के एक छोर पर सोते हुए देखा। मैंने सोचा कि यदि उसकी थोड़ी सी भी निद्रा टूटी और उसने करवट बदली तो नीचे की एक भयंकर और गहरी खाई में बुरी तरह गिर पड़ेगा। ऐसा विचार आते ही मैं ने बड़ी सावधानी से उसे जगाया और चौकन्ना कर एक सुरक्षित जगह बता दी"। बालक इतना ही कहने पाया था कि उसके पिता ने उसे छाती से लगा लिया और प्यार से बोला-"मेरे प्यारे बेटे! तेरा शत्रु के साथ मित्रका सा बर्ताव सुन मैं बड़ा खुश हुआ। तूने सब से अच्छा काम किया। अब वह रत्न तेरा है। तू ले ले"। यह कहकर वह रत्न उस लड़के को दे दिया। और फिर अपना सारा धन तीनों पुत्रों को बराबर २ बाँट दिया।

बालको! इस कथा से हम अपने कर्त्तव्य का भलीभाँति

निर्णय कर सकते हैं। वास्तव में कर्त्तव्य बजाते समय शत्रु और मित्र का भाव न होना चाहिए। कर्त्तव्य-पालन में शत्रु मित्र की भेदबुद्धि एक बड़ी बाधा है। इस बाधा के होते हुए हम आदर्श कर्त्तव्यपरायण नहीं हो सकते। जैसे सूर्य अच्छे और बुरे दोनों तरह के आदमियों को समानता से प्रकाश पहुँचाता है। तैसे ही कर्त्तव्यनिष्ठ मनुष्य शत्रु मित्र का विचार न करके प्राणीमात्र की भलाई के लिए अपना जीवन अर्पण कर देते हैं। ऐसा करने वाले त्यागी महापुरुष जगत् में सबके सम्माननीय होते हैं।

## पाठ १४

### स्वास्थ्यरक्षा

(२)

(अजीर्ण.)

अजीर्ण एक साधारण रोग समझा जाता है, परन्तु अधिक विचार से मालूम होता है कि अजीर्ण ही सब रोगों का बीज है। यह बात न समझने ही के कारण आजकल घर २ अजीर्ण रोग के रोगी पाये जाते हैं। प्रथम तो अजीर्ण होने का मौका ही न आना चाहिए, यदि असावधानी से कभी हो भी जाय, तो शीघ्र चिकित्सा करानी चाहिए। यदि चिकित्सा करने में ढील हो जाय तो यह बड़ा प्रबल रूप धारण कर लेता है, और अन्यान्य रोगों की उत्पत्ति का कारण होता है।

अजीर्ण होने का कारण प्रायः सभी जानते हैं। यह पाचन-शक्ति से अधिक अयोग्य और असमय में भोजन करने से उत्पन्न होजाता है। एक साथ ज्यादा खा लेना, कच्चा भोजन खाना, पहले खाये हुए भोजन के पचने से पहले भोजन करना, और धीरे २ चबाकर भोजन न करना भी अजीर्ण का कारण है। इनके सिवा और भी कई एक कारणों से अपच हो जाता है। जैसे—मांस और नशीली चीजों का सेवन, आलस्य, अत्यन्त शारीरिक और मानसिक श्रम, चिन्ता और निद्रा न आना। इन सब कारणों से अजीर्ण जब शरीर को किला बनाकर उसमें घुस रहता है, तो साधारण गोलियां उसका कुछ नहीं कर सकतीं।

जब यह रोग होता है, तब या तो दस्त लगने लगते हैं या दस्त बन्द होजाते हैं। दस्त लगने से विना पचा अन्न निकल जाता और आम गिरने लग जाता है। यदि दस्त न हों और कच्चा अन्न न निकले तो पेट फूल जाता है, खट्टी डकारें आती हैं, जी मिचलाता है, उबकाई आती है, वमन होता है, जिह्वा पर सफ़ेद मैल जम जाता है, छाती और आमाशय में दाह होता है, सिर में दर्द होने लगता है, और कभी २ खराब २ स्वप्न आने लगते हैं। इन लक्षणों से अजीर्ण की पहचान होजाती है।

लोग बहुधा अजीर्ण होने पर मूर्ख—अनुभवहीन वैद्यों की चिकित्सा कराते हैं। वे अनजान चिड़िया हाथ में फँसी देखकर, रोग को बढ़ा २ कर बयान करते या ठीक बात को जान नहीं पाते। फिर भी औषधि तो करते ही

१ ऐसे अवसर पर आक के लौंग अत्यन्त लाभदायक हैं

है। औषधि भी ऐसी वैसी नहीं, इतनी तेज कि रोगी का जन्म भर पीछा न छोड़े! बस अजीर्ण तो दूर रहा, अतीसार और संग्रहणी रोग हो जाने से जन्म भर दुखी होना पड़ता है। इसलिए रोग की परीक्षा या चिकित्सा कराते समय वैद्य की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक है।

## पाठ १५

### प्रतिक्रमण.

संसारी जीव अपने कार्यों में कितने ही सावधान रहें तथापि उन्हें कुछ न कुछ दोष लग ही जाता है। गृहस्थ तो दोषों से सर्वथा रहित हो ही नहीं सकते। क्योंकि सांसारिक कार्य बिना आरम्भ परिग्रह के नहीं होते और जहां आरम्भ परिग्रह है वहां पाप भी अवश्य लगता है। चलने फिरने में, भोजन में, सवारी रखने में, और जीवन-निर्वाह के किसी भी आवश्यक कार्य में सदा दोष ही दोष लगा करते हैं। तात्पर्य यह है कि साधारण गृहस्थ--जीवन मानसिक वाचनिक और कायिक दोषों का घर है। गृहस्थ-जीवन की उलझनों में उलझा हुआ गृहस्थ महाव्रतों का पालन नहीं कर सकता। इसलिये सर्वज्ञ भगवान् महावीर ने गृहस्थियों की कमजोरी समझकर उन्हें एकदेशव्रत पालने का उपदेश दिया है। किन्तु कई कारणों से उन व्रतों में भी कभी२ भूल हो जाती है। अतः उस भूल - संशोधन के लिए प्रतिक्रमण करना आवश्यक है।

पीछे लौटने को अर्थात् प्रमादवश शुभ योग से गिरकर, अशुभ योग को प्राप्त होने के बाद फिर शुभ योग में वापिस आजाने को प्रतिक्रमण कहते हैं। अथवा अशुभ योग को छोड़कर उत्तरोत्तर शुभ योग में वर्तना भी प्रतिक्रमण कहलाता है। पहले तीर्थंकर

ऋषभदेव और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर के साधु और श्रावकों को अवश्य प्रतिक्रमण करना चाहिए। पहले कहा जा चुका है कि साधु और श्रावकों के व्रतों में एकदेश और सर्वदेश का भेद होता है, इसलिए उनके दोषों में भी भिन्नता होगई है, और इसीसे प्रतिक्रमण भी साधु और श्रावकों का जुदा जुदा है।

प्रतिक्रमण दो प्रकार का है—द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव-प्रतिक्रमण। प्रतिक्रमण के अर्थों के जाने विना जो प्रतिक्रमण करना है उसी को द्रव्य प्रतिक्रमण कहते हैं; कारण कि इस प्रकार प्रतिक्रमण करने से हेय (त्यागने योग्य) ज्ञेय(जानने योग्य) और उपादेय (ग्रहण करने योग्य) पदार्थों का भली भांति उसे बोध नहीं हो सकता है। इसी कारण से वह अशुभकृत्यों से निवृत्ति भी नहीं करसकता, इसलिए बहुधा लोग द्रव्यप्रतिक्रमण करने वालों का उपहास करते रहते हैं। अत एव भाव प्रतिक्रमण ही उपादेय है। इसी प्रकार काल के भेद से प्रतिक्रमण के तीन भेद भी होजाते हैं। जैसे (१) भूतकाल में लगे हुए दोषों की आलोचना करना, (२)संवर करके वर्तमान काल के दोषों से बचना, (३)प्रत्याख्यान द्वारा भविष्यत्कालीन दोषों को रोकना।

प्रतिक्रमण छह आवश्यकों में से एक आवश्यक है। जो कार्य अवश्य करणीय हो, वह आवश्यक कहा जाता है। इसलिए मनोयोग पूर्वक इसे अवश्य करना चाहिए, अतएव इसीका नाम भावावश्यक है वा भावप्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण द्वारा जिन भूलों का संशोधन करते हैं, उन्हें फिर न करना चाहिए। इस विषय में एक क्षुल्लक साधु के बार बार कंकर मार कर, बारम्बार माफी मांगने का उदाहरण प्रसिद्ध है।

# पाठ १६

## व्यापार.

(१)

प्राचीन काल में प्रत्येक वर्ण का एक २ नियत कर्तव्य होता था। ब्राह्मण पठन पाठन करते, क्षत्रिय प्रजा की रक्षा करते, वैश्य व्यापार करते और शूद्र सेवावृत्ति करते थे। उस समय, आपत्तिकाल के सिवाय कभी एक दूसरे की वृत्ति को कोई नहीं अपना सकता था। किन्तु अब ज़माना पलट गया है। इस कारण उल्लिखित वृत्तियों का विभाग ज्यों का त्यों नहीं रहा है। आजकल ब्राह्मण क्षत्रिय का, क्षत्रिय ब्राह्मण का, वैश्य ब्राह्मण क्षत्रियों का, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों का, और शूद्र भी दूसरे सब वर्णों के कर्म बे रोक-टोक करते हैं। किन्तु इस समय में भी वैश्यों का मुख्य कर्म प्रायः व्यापार ही है। यद्यपि प्राचीन कालीन वैश्यों का जितना व्यापार अब वैश्यों के हाथ में नहीं है, फिर भी भारतवर्ष के व्यापार का अधिकांश आजकल भी वैश्यों ही के हाथ में है। व्यापार में जिन बातों की आवश्यकता पड़ती है उनमें से कितनीक बातें इस पाठ में बतलाई जाती हैं वह यह हैं— (१) न्यायशीलता (२) शुभ-अध्यवसाय (विचार) (३) अप्रमाद (४) उत्तम पुरुषों से व्यापार-व्यवहार (५) सचाई (६) अवंचकता (७) मैत्री (८) द्रव्य क्षेत्र काल भाव का ज्ञान।

१ न्यायशीलता— ईमानदारी के विना व्यापार हो ही नहीं सकता। जो बहुमूल्य वाली वस्तु में अल्प मूल्य की वस्तु मिला

कर बेचते हैं, भाव करके कम नाप तोल कर पूरे का मूल्य लेते हैं, बात कहकर नट जाते हैं, लोग उनका विश्वास नहीं करते। और जिसका विश्वास उठा, उसका व्यापार उठा।

२ शुभ-अध्यवसाय— अर्थात् विचारों को पवित्र रखना। कभी २ व्यापार में ज्यादा लाभ होने के लिये पाप-मय विचारों का सहारा लिया जाता है। जैसे अनाज का व्यापारी यह सोचे कि "इस वर्ष पानी न बरसे तो अच्छा, इससे अनाज बहुत महँगा हो जायगा और तब मेरे अनाज के बहुत रुपये उठेंगे"। यद्यपि ऐसे विचारों से अनाज सस्ता या महँगा नहीं हो सकता, तथापि उसके विचारों का परिणाम उसे भोगना ही पड़ता है। इसलिये ऐसे विचारों को सिर्फ पाप का कारण समझ कर पास न फटकने देना चाहिए।

३ अप्रमाद—प्रमाद और लक्ष्मी का विरोध सा है। जहां प्रमाद है, वहां लक्ष्मी नहीं रहती। एक कथा प्रसिद्ध है-कि एक बार लक्ष्मी और दारिद्र्य में झगड़ा होगया। दोनों मिलकर इन्द्र से निपटारा कराने चले। इन्द्र ने दोनों के बयान लेकर यह न्याय किया कि जहां प्रमाद आदि दोष रहते हों, वहां दारिद्र्य रहे और जहां ये दोष न हों, वहां लक्ष्मी रहे। तात्पर्य यह है कि आलसी आदमी धनोपार्जन नहीं कर सकता, और धनोपार्जन ही व्यापार का लक्ष्य है।

४ उत्तम पुरुषों से व्यापार-व्यवहार—रखना चाहिए। नट, धूर्त, वेश्या, कलाल, कसाई और राजद्रोहियों वगैरह से व्यवहार न रखना चाहिए। नीच आदमियों के साथ व्यापार करने से लोक में अपयश होता है, और उनकी साख ही क्या? बहुत संभव है, वे मौके पर मुकर जायँ तथा इसका फल व्यापारी को भोगना पड़े।

इसलिए व्यापार-सम्बन्ध करने से पहले आदमी की परख कर लेनी चाहिए।

५ सचाई—की व्यापार में खास आवश्यकता है। जिस व्यापारी की सचाई का सिक्का जम जाता है, उसे अनायास ही सफलता मिलती है। एक कथा प्रसिद्ध है कि—किसी जगह कपड़े के व्यापारी एक सेठ सचाई से व्यापार करते थे। एक वार एक ग्राहक दुकान पर आया और कपड़े का एक थान ले गया। दुकान पर मुनीम था, उसने १०) रुपये की जगह १५) रुपये ले लिये। सेठ जी जब दुकान पर आये, तो मुनीम ने तारीफ बघार कर अपनी चतुराई की बात सुनाई। उसे आशा थी, सेठजी खुश होंगे, पर उसकी आशा पर पानी फिर गया। उनका प्रसन्न होना दूर रहा, उल्टे खफा हुए। अन्त में खरीददार को बुलवाकर उसके दाम वापस किये। इस उदारता से सेठजी की इतनी अधिक ख्याति फैल गई कि उनका कारबार चमक उठा।

६ अवंचकता—ठगाई न करने को कहते हैं। ठगिया का भी कोई विश्वास नहीं करता। यदि वह ठीक मूल्य बतावे, तो भी लोग झूठ ही समझते हैं। अत एव व्यापार में अवञ्चकता की भी जरूरत है।

७ मैत्री—यों तो मनुष्यजीवन में प्रत्येक समय मैत्री की आवश्यकता है, किन्तु व्यापार में विशेष। जो सब से मेल मिलाप नहीं रखता, उसे व्यापार में उतनी सफलता नहीं मिलती जितनी मेलवाले को।

८ द्रव्य क्षेत्र काल भाव के ज्ञान—विना कोई व्यापार नहीं कर सकता। यदि करे, तो लाभ की जगह हानि उठावेगा।

व्यापारी को यह बात अवश्य मालूम होनी चाहिए कि कैसा मौसिम होने से किस २ वस्तु पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

इन सब गुणों के साथ मधुर भाषण और नम्रता की भी आवश्यकता है। ज़र्मनी के किसी व्यापारी के पास एक बालक नौकरी की खोज में गया था। एक व्यापारी ने उसकी जाँच के लिये कुछ दिनों के लिये रक्खा। एक बार एक गाहक ने आकर पूछा-तुम्हारी दुकान में अमुक चीज़ है? बालक ने उत्तर दिया—हां। बाद में खरीददार जब सौदा खरीदकर ले गया तब दुकानदार ने उस लड़के को इसलिये निकाल दिया कि उसने अयोग्यता से उत्तर दिया था। उसे कहना चाहिये था--जी हां,है,आइये-पधारिये। इस उदाहरण से यही मालूम होता है कि व्यापारी को नम्र और मधुरभाषी होना चाहिए। इसी प्रकार सहन-शक्ति होना आवश्यक है। जो इन नियमों का पालन करता है, वह व्यापार-कुशल हो जाता है।

## पाठ १७

## निर्गुण मनुष्य.

किसी समय प्रतिष्ठान नगर में एक धनाढ्य सेठ होगया है। उसने अपनी सारी उम्र में एक बार भी कोई धर्म-कार्य न किया। वह अन्त में मरकर उसी नगर के एक तालाब में मत्स्य हुआ।

उसी नगर में शालिवाहन नामक राजा था। वह एक दिन तालाब के किनारे आकर बैठा। उस समय मत्स्य ने पूछा-कौन जीवित है? कौन जीवित है? कौन जीवित है?

मत्स्य का प्रश्न सुन राजा को बड़ा अचम्भा हुआ। उसने राजसभा में जाकर परिडतों से मच्छ के प्रश्न का उत्तर पूछा, परन्तु उसका उत्तर किसी की समझ में न आया। उसी समय कालिकाचार्य नामक मुनिराज पधारे। उन्होंने कहा—

जीवित कौन ? वही जो निशिदिन, धर्मकर्म में रत रहता है।
जिसमें सद्गुण और धर्म नहिं, वह केवल दुख ही सहता है॥१॥
जीवित कौन ? वही बस जिसके, जीवन से सज्जन जीते हैं।
जो पर का उपकार न करते, वे जीवन-फल से रीते हैं॥२॥
जीवित कौन? वही हे जलचर! जो न दुष्ट भोजन करते हैं।
सदा सरल सद्वृत्तपरायण, पापपुंज से जो डरते हैं॥३॥

कालिकाचार्य का उत्तर सुन राजा ने उनसे कहा—महाराज! क्या जानवरों की भी धर्म कर्म करने की इच्छा होती है? आचार्य बोले-राजा! जानवर अधर्मी और कुकर्मी मनुष्यों से भी ज्यादा उच्च हैं। एक कहानी सुनिये—

एक विद्वान् किसी जगह व्याख्यान देरहे थे। व्याख्यान में उन्होंने कहा-"जो विद्यावान् न हो, तपस्वी न हो, दानी न हो, शीलवान् न हो, धर्मात्मा और गुणी न हो वह मनुष्य के आकार का मृग ही है। वह पृथिवी को वृथा बोझों मारता है"। उनकी बात एक मृग को न रुची। उसने कहा-महाराज! निर्गुण मनुष्य से हमारी तुलना करना, हमारा अपमान करना है। वह हमारी बराबरी नहीं करसकता। हम लोग किसी का कुछ नहीं बिगाड़ते और तिनकों से अपना पेट भरते हैं। पापी मनुष्य हमारे प्राण हरलेते हैं पर हम उनका या मनुष्यजाति का किसी प्रकार अपकार नहीं करते। ऐसे साधु स्वभाव वाले, विश्वासी और भद्र मृगों से अपढ़ अनाड़ी अधर्मी

मनुष्यों की उपमा बिलकुल अनुचित है।

मृग की बात सुन वह विद्वान् बोला—अच्छा, मृग न सही वह पेड़ के समान है।

पेड़ ने कहा—नहीं महाराज, वह हमारे बराबर भी नहीं हो सकता। जब पृथिवी तवे के समान तप जाती है, और मार्त्तण्ड की प्रचण्ड किरणें आकाश से अग्नि बर्षाती हैं, तब अडग खड़े रहकर पथिकों को शीतल छाया देने की शक्ति हमारे सिवा और किसी में नहीं है। दूसरों के लिये आत्मसमर्पण करदेने वाले महात्मा मनुष्य जाति में विरले ही मिलेंगे, परन्तु वृक्षों का छोटे से छोटा पोधा भी इस असाधारण स्वार्थत्याग के लिए अपना जीवन न्योछावर करदेता है। इसलिए अपढ़ अधर्मी आदमी हमारे बराबर नहीं है।

विद्वान्—अच्छा, वह मिट्टी के ढेला सरीखा है।

मिट्टी का ढेला-जी नहीं,क्या आप नहीं जानते कि अशुद्ध को शुद्ध कर देने में हम अग्नि देवता से किसी प्रकार कम नहीं हैं। इसके सिवा हम में एक ऐसा गुण है, जो देवताओं में भी दुर्लभ है। वह यह कि हम बालकों के आनन्द के आधार हैं। हमारे इस गुण के सामने देवता भी पानी भरते हैं।

विद्वान्—वह कुत्ते के समान है।

कुत्ता--महाराज! जब अधर्मी और फूहड़ आदमी को कोई अपनी जाति में नहीं लेता, तो आप हमारी स्वामि--भक्त और सन्तोष-शील जाति के शिर मढ़ना चाहते हैं। पर उसमें हमारे जैसे गुण ही कहाँ हैं?।

पण्डितजी-वह कुत्ता नहीं, गधे के समान है।

गधा—पण्डितजी! लोग एक दूसरे से सुनकर अनपढ़ और निर्गुण आदमी को 'गधा' कहा करते हैं। इससे उस आदमी का कुछ बिगड़ता नहीं है। यदि वह समझदार हो तो उलटा प्रसन्न ही हो। क्योंकि गर्दभ जाति में अनेक अच्छे २ गुण पाये जाते हैं। पर हम इसे उचित नहीं समझते। हम लोग इतने ममता-हीन हैं, कि सर्दी और गरमी की परवाह नहीं करते। बहुतेरे लोग अपने शिर पर लिए हुए बोझ को उठाने में कातर हो जाते हैं, परन्तु हम अपने स्वामी की इच्छानुसार बोझा उठाने में कभी आनाकानी नहीं करते। और हमारी भद्रता तो सब ही जानते हैं। इसलिए गुणहीन जन गर्दभों की बरा-बरी नहीं कर सकता।

पण्डितजी—निस्सन्देह निर्गुण आदमी की उपमा किसी जानवर से भी नहीं दी जासकती। अतः हर एक मनुष्य को अपनी मनुष्यता बनाये रखने के लिए सद्गुण अवश्य प्राप्त करना चाहिए।

## पाठ १८

### भगवान् महावीर

(२)

भगवान् ने दीक्षा लेने के पश्चात् केवलज्ञान की प्राप्ति होने तक लगभग बारह वर्ष का मौन धारण किया था। उस समय वे कठिन से कठिन तपस्या करते थे। वर्षाऋतु के चार महीनों में एक ही जगह इस लिए रहते थे कि वर्षा के कारण अगणित छोटे बड़े, जन्तु पैदा होजाते हैं, उस समय श्रमण

करने से जीवों की हिंसा होने का डर रहता है। कहते हैं, भगवान् को दीक्षा के बाद उन पर बड़े भयानक उपसर्ग आये थे। उन्हें पढ़कर हमारा हृदय कांपने लगता और हृदय से 'आह!' निकल जाती है।

एक बार भगवान् "कुमार" नामक किसी गांव के पास के जंगल में ध्यान में खड़े थे। इतने में एक गुवाल दो बैल साथ लिये हुए वहां से निकला। उसे कोई आवश्यक कार्य था, इस कारण वह बैलों को वहीं छोड़कर चला गया। इधर बैल चरते २ दूसरी जगह चल दिये। ग्वाला लौटकर आया। उसने देखा—बैल गायब हैं। उसने महावीर से पूछा, परन्तु उन्हों ने कुछ उत्तर न दिया क्योंकि वे ध्यान में आरूढ़ थे। ग्वाला निराश होकर बैलों की टोह में भटकने लगा। इधर बैल भी चरते २ फिर भगवान् के पास आबैठे। ग्वाला घूम-घामकर वापिस लौटा तो देखता क्या है कि महावीर के पास ही बैल बैठे हैं। यह हाल देखकर उसने सोचा–यह बाबा जी मेरे बैलों को उड़ा लेजाना चाहता है। इसकी नियत खराब मालूम होती है। यह सोचकर वह भगवान् को मारने लगा। जब इन्द्रको यह घटना मालूम हुई तो वह तुरन्त ही भागा हुआ आया और ग्वाले को समझा बुझाकर वहां से रवाना किया। फिर इन्द्रने प्रार्थना की "हे देव! बारह वर्षों तक आप पर ऐसे ही कठिन कठिन उपसर्ग आने वाले हैं। यदि आप आज्ञा देवें तो यह आपका सेवक सदा आप के साथ रहे"। भगवान् ने उत्तर दिया--"इन्द्र! तीर्थंकर कभी दूसरों का आश्रय नहीं लिया करते। वे अपनी ही भुजाओं से संकटों के समुद्र को पार करते हैं"। सचमुच जिन्हें शरीर से रंचमात्र भी ममता न हो, वे दुःखों से

कातर होकर दूसरे की शरण ग्रहण कैसे कर सकते हैं? इसी लिए महावीर प्रभु ने इन्द्र की प्रार्थना को ठुकरा दिया और हम लोगों को यह सिखाया कि दुःखों से मत डरो। आपत्ति आने पर वीरता से उसका सामना करो। दूसरों के आगे हाथ फैलाकर दया की प्रार्थना करने वाले के दुःख दूर नहीं होसकते। दीनता दिखाकर दया की प्रार्थना करना स्वयं एक दुख है। और जैसे कीचड़ से कीचड़ साफ़ नहीं होती, तैसे ही दुख से दुख का नाश नहीं होसकता। प्यारे बालको! प्रभु की यह शिक्षा कराठ करने योग्य है। वे वीर प्रभु धन्य हैं, जिन्हों ने संकट भोगना अंगीकार किया पर इन्द्र की सेवा अंगीकार न की।

इसके पश्चात् इन्द्र अपने स्वर्ग चला गया। इधर प्रभु तपस्या करते हुए यत्र तत्र विहार करने लगे। एक दिन प्रभु विहार करते करते श्वेताम्विका नगरी की ओर जाने लगे। रास्ते में एक मनुष्य ने कहा—"हे प्रभु! यह मार्ग सीधा तो पड़ता है, परन्तु इसमें एक दृष्टिविष सर्प रहता है। उसके भय के मारे वहां किसी की पैठ भी नहीं है। इसलिये कृपा करके दूसरे मार्ग से पधारिये"। उसकी बात सुनकर भगवान् ने अपने दिव्यज्ञान से उस सर्प को पहिचाना। उन्हें मालूम होगया कि यह सर्प भव्य है। वह जैसा भयंकर मालूम होता है वास्तव में उतना भयंकर नहीं है। वह अपनी शक्ति का दुरुपयोग कर रहा है। यह सोचकर उन्हों-ने उस पुरुष के कहने की परवाह न कर उसी मार्ग से जाने की ठानी। भगवान् वहाँ पहुँच ध्यान धरकर खड़े हो रहे। इतने में चराडकौशिक नामक सांप अपने बिल से बाहर निकला और प्रभु

को खड़ा देख आग बबूला होगया। उसने जोर की फुंकार मारी तो वहां का वायुमण्डल विष से नीला२ होगया। पक्षी आकाश से गिरने लगे। परन्तु भगवान् ज्यों के त्यों खड़े रहे। यह देख सांप को बड़ा विस्मय हुआ। भगवान् ने उससे कहा--हे चण्ड-कौशिक! समझ! अब तो समझ!! अपने स्वरूप को पहिचान!!! पहले-पूर्व भव को याद कर। भगवान् के कथन को सुनते ही ध्यान देनेपर चण्डकौशिक को जातिस्मरण ज्ञान हुआ तथा फिर वह भगवान् का भक्त होगया। इस प्रकार प्रभु उस सर्प को प्रति-बोध करके श्वेताम्बिका नगरी पहुँचे। सच है—जैसे अग्नि से अग्नि शान्त नहीं होती, उसी तरह क्रोध से क्रोध शान्त नहीं होता, उलटा बढ़ता है। प्रभु के इस बर्ताव से हमें यह सीखना चाहिए कि क्रोध की अग्नि से जलता हुआ मनुष्य यदि हमारे ऊपर भी चिनगारियाँ उड़ावे, तो उन चिनगारियों को हम अपने क्षमा के जल से बुझा डालें। यदि न बुझाया तो हम भी जलेंगे और अपनी जलन मिटाने के लिये दूसरों पर उन चिनगारियों की वर्षा करेंगे। इससे हमारा और दूसरों का भला नहीं होसकता। भगवान् इन सब बातों को भली भांति जानते थे, अत एव उन्होंने चण्डकौशिक को प्रेम के बन्धन में इतने ही से जकड़ लिया। भगवान् के संकटों का अन्त न आया। एक दिन प्रभु अन्य यात्रियों के साथ, गंगा नदी में नाव पर चढ़े चले जाते थे। वहां उन के पूर्व भव का बैरी सुदंष्ट्र नामक देव रहता था। भगवान् को देखते ही उसे बैर की स्मृति हो उठी। उसने नदी में भयंकर तूफ़ान पैदा कर दिया। नदी का पानी हिलोरें मारने लगा। सब लोगों को जीवन के नष्ट होने की आशंका होने लगी परन्तु परमात्मा

वीर हिमालय की नाईं अडोल बैठे रहे। उनके विशाल चेहरे से विषाद की एक भी रेखा व्यक्त न हुई, मानों उन्हें खबर ही न पड़ी हो।

एक समय की बात है कि भगवान् विहार करते हुए 'पेढ़ाणा' गांव के समीप किसी अभीष्ट वस्तु पर दृष्टि जमाकर समाधि में मग्न होगये। उस समय इन्द्र ने उन के चारित्र की खूब प्रशंसा की। वह प्रशंसा सुनकर एक संगम नामक देव क्रोधित हुआ। उसने निश्चय किया कि महावीर को तपस्या से भ्रष्ट करके इन्द्र को नीचा दिखाऊंगा। इस कलुषित भावना से प्रेरित होकर वह भगवान् के पास आया। उन्हें तपस्या से च्युत करने के लिये उसने छह महीने तक ऐसे घोरातिघोर उपसर्ग उपस्थित किये कि जिन्हें पढ़ने मात्र से दिल कंपायमान होने लगता है। उसने सब से पहले धूलि की वर्षा की। मामूली वर्षा नहीं, ऐसी भयानक कि भगवान् का सारा शरीर उससे ढँक गया, यहां तक कि सांस लेने में भी बाधा होने लगी। जब भगवान् इससे न डिगे तो उन्हें डांस और मच्छरों से डसवाया। पश्चात् सर्प बिच्छू नेवले आदि भयंकर विषैले जानवरों को उत्पन्न कर उन से कष्ट दिलाया, परन्तु दीर्घतपस्वी महावीर ने इन सब संकटों को कुछ भी न गिना। यही नहीं शत्रु को शत्रु भी नहीं समझा। परन्तु संगम इतने से सन्तुष्ट न हुआ, अब की बार तो उसने अति भयंकर कष्ट दिया। अर्थात् उसने बहुत वजनदार लोहे का गोला बड़े ज़ोर से प्रभु पर फेंका। कहते हैं उससे प्रभु घुटनों तक धरती में धंस गये, परन्तु ध्यानसे न गिरे। प्रभु में धैर्य था, उन्हें देह से ममता न थी और अमर आत्मा का अनुभव करते थे, फिर वे कैसे डिग सकते थे। प्रभु की यह विजय

हमें भले ही आश्चर्य से चकित बना देवे पर इससे भगवान् की महावीरता प्रकट होती है। इस प्रकार भगवान् ज्यों २ अपनी संयमशीलता का परिचय देते गये, त्यों २ सङ्गम भी नये २ उपायों से उन्हें दुःखित करने लगा। परन्तु भगवान् टस से मस न हुए। अंत में उसने प्रभु की प्रशंसा को, जो इन्द्र के द्वारा की गई थी, सिर झुकाया।

## पाठ १९

### स्वास्थ्यरक्षा.

(३)

व्यायाम.

संसार में ऐसा कोई पुरुष न मिलेगा, जो बलवान् न बनना चाहता हो। प्रत्येक प्राणी में बल की आवश्यकता भी है। शरीर में बल होने ही से संसार के सब कार्य सिद्ध होते हैं। दुर्बल मनुष्य विद्या धन आदि नहीं कमा सकता। बलवान् ही अपने शत्रुओं को दबा सकता है। बलवान् का सर्वत्र सत्कार होता है और बलहीन का सर्वत्र तिरस्कार। सबल सिंह से सारा वन थर्राता है किन्तु निर्बल खरगोश से कोई नहीं डरता। इसी भांति सबल मनुष्य से चोर डाकू आदि सब थर्राते हैं, और निर्बल पर सभी अपना २ रौब गांठना चाहते हैं। उसकी कहीं दाल नहीं गलती, अतः यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि हरएक को बल की बहुत आवश्यकता है।

अब इस बात का विचार करो कि बलवान् बनने का स्वाधीन उपाय क्या है ? यदि कोई मुझ से यह प्रश्न पूछे, तो मैं यह उत्तर दूं कि व्यायाम ही एक ऐसा उपाय है, जिससे हर एक आदमी बल-शाली हो सकता है। और व्यायाम अपने हाथ की बात है, इसलिए वह स्वाधीन उपाय है। व्यायाम करने से शरीर नीरोग मज़बूत और सुडौल होता है। व्यायाम से शरीर के समस्त अवयवों में रक्त प्रवाहित होने से अवयवों में स्फूर्ति उत्पन्न होती तथा दृढ़ता आती है। व्यायाम करने वाला पुरुष जल्दी बूढ़ा प्रतीत नहीं होता और उसकी बुढ़ापे में भी पर्याप्त पुरुषार्थ करने की शक्ति बनी रहती है। इसके विपरीत कभी व्यायाम न करने वाले युवक के किसी कार्य में उत्साह नज़र नहीं आता। वह सदा पराया मुख ताकता और भींखा करता है। अनेक रोगों का स्थल बन जाता, और सुख क्या वस्तु है, इस को बिलकुल भी नहीं समझ सकता। अतएव प्रत्येक बालक को व्यायाम अवश्य करना चाहिए।

व्यायाम के अनेक प्रकार हैं। उनमें मस्तिष्क से काम लेने वालों को घूमना सबसे अधिक लाभप्रद है। इसके सिवाय डण्ड पेलना भी लाभदायक है। घूमने से स्वच्छ वायु प्राप्त होती, उदर के लिये बहुत लाभ होता और हाजमा सुधरता है। डण्ड पेलने से पाचनशक्ति तीव्र होती है। मुद्गर घुमाना भी एक प्रकार का व्यायाम है। इससे भुजाओं में और सीने में दृढ़ता आती है। किन्तु यह ध्यान में रक्खो कि अधिक व्यायाम से लाभ के बदले हानि होती है। अतः जब मुँह सूखने लगे, मुख से जल्दी

जल्दी हवा निकलने लगे, शरीर के जोड़ों में और कोख में पसीना आने लगे तब व्यायाम करना बन्द कर देना चाहिए। श्वास खांसी आदि रोग वालों को निर्बल को और भोजन करने के पश्चात् व्यायाम करना अत्यन्त हानिकारक है। इसलिए ऐसी दशा में व्यायाम न करना ही अच्छा है।

जिन्हें बलवर्द्धक भोजन मिलता हो, उन्हें ही व्यायाम हितकारी होता है।

कसरत करने के थोड़े समय बाद कोई तर चीज़ जरूर खानी चाहिए। दूध और बादाम का उपयोग करना बहुत अच्छा है। परन्तु ध्यान रहे कि तर या पौष्टिक पदार्थ उतना ही खाया जाय, जितना बहुत आसानी से पच सके। जिन्हें रूखा सूखा भोजन मिलता हो उन्हें घूमने के सिवाय और कोई कसरत न करनी चाहिए।

कसरत करने वालों को कसरत करने के कुछ समय बाद तेल का मालिश कराना अत्यन्त फायदेमन्द है। मालिश अधिकतर पैर के तलुवों में कराना चाहिए। तलुवों में मालिश करने से शरीर में बल की वृद्धि होती है, दृष्टि निर्मल होती और मानसिक शक्ति का विकास होता है।

# पाठ २०

## व्यापार

### (२)

व्यापार के लिये जिन आवश्यक बातों का उल्लेख पहले किया गया है, उनके सिवा और भी बहुत बातें ऐसी हैं जिन्हें व्यापारी को जानना चाहिए। पहले लिखे हुए गुणों को यदि कोई व्यापारी प्राप्त कर लेवे, किन्तु उसके पास पूंजी न हो, तो व्यापार नहीं किया जासकता। पूंजी व्यापार का प्राण है। खरीदना व्यापार का पहला काम है और पूंजी विना कोई क्या खरीदेगा? तात्पर्य यही है कि जिसके पास पूंजी हो, चाहे वह उधार की हो, घर की हो, या हिस्सेदार की हो, वही व्यापार में हाथ डाले। विना पर्याप्त पूंजी व्यापार करना मूर्खता ही नहीं, दूसरों को फँसाने का प्रयत्न है। कहावत है—"ओछी पूंजी खसमों खाय" अर्थात् थोड़ी पूंजी से कोई सफलता नहीं पा सकता। व्यापार करने वालों को पूंजी का ध्यान रखना पहली बात है।

पूंजी की जितनी आवश्यकता है, उससे अधिक साख की है। खरीदे हुए माल की कीमत चुका देने की प्रतीति को साख कहते हैं। विना साख के प्रथम तो व्यापार शुरू ही नहीं किया जा सकता और शुरू कर भी दिया जाय तो बहुत दिनों तक चल नहीं सकता। जगत् में जितने व्यापार होते हैं, उन सब का आधार साख है। साख बड़ी भारी पूंजी है। व्यापार में जो काम साख वालों से हो सकता

है, वह पैसा वालों से भी नहीं होसकता। इसलिए अपनी साख बैठाकर उसका सदा निर्वाह करना चाहिए।

व्यापार में गड़बड़ी न पड़े, इसलिये नामा तैयार और साफ रखना उचित है। हमने किसको, कब, कितनी रकम किस लिये दी, हम किससे, कितनी रकम, कब और किस लिये लाये हैं, इस की स्मृति के लिये व्यापारी को लिख रखना पड़ता है। इसी को नामा कहते हैं। जो नामा ठीक रखना नहीं जानता, उसे व्यापार करने का ही तमीज़ नहीं है। अतः अपनी प्रामाणिकता के लिये नामे को साफ रखना चाहिए।

इन सब बातों के सिवाय ग्राहक पर अपनी सचाई की स्थाई छाप लगाने वाला व्यापारी ही अच्छा व्यापारी कहलाता है। तथा उद्योग, उत्साह, पक्का विचार, कार्यतत्परता, व्यापार का ज्ञान, ग्राहक की परख, सभ्यता, और स्वावलम्बन भी व्यापारी में होने चाहिए। बहुत से लोग विना परिश्रम किये ही शीघ्र धनवान् बनने की लालसा से सट्टा फाटका करते हैं। यद्यपि कोई कोई ऐसा करने से धन भी कमा लेता है, पर अधिकांश धनकुबेर भी बात की बात में कंगाल होते देखे गये हैं। वास्तव में परिश्रम से पैदा किया हुआ पैसा ही सुखदायी होता है। इसलिये अपना गौरव बनाये रखने के लिये सट्टे में न फँसना ही बुद्धिमत्ता है। इसी प्रकार जिस व्यापार में शीघ्रता से घटती बढ़ती होती हो ऐसे व्यापार में विना समझे बूझे जल्दी हाथ न डालना चाहिए तथा उसमें बहुत सावधानी रखनी चाहिये। जिस व्यापार में घटती बढ़ती थोड़ी होती है, यदि उसमें नफ़ा

थोड़ा हो तो भी प्रतिष्ठा बनी रहती है। जो व्यापारी इन बातों पर ध्यान रखकर व्यापार करेंगे, उन्हें अवश्य सफलता प्राप्त होगी।

## पाठ २१

## अपनी भूल स्वीकार करना.

मनुष्य जब तक सर्वज्ञ नहीं बन जाता, तब तक वह भूल का पात्र है। कोई भी पुरुष, चाहे वह कैसा ही विद्या-विशारद क्यों न हो, यह प्रतिज्ञा नहीं कर सकता कि मुझ से भूल नहीं हुई, नहीं होती, या नहीं होगी। हम जिस बात को अच्छी और बहुत अच्छी समझते हैं कदाचित् वह ठीक न हो, क्योंकि हमारी ज्ञानशक्ति और स्मरणशक्ति परिमित है, पूर्ण नहीं है। अत एव भूल होना सहज है। जब भूल हो जाय तो उसे मालूम होते ही स्वीकार कर लेना चाहिए। जो ऐसा करते हैं वे सभ्य समाज में उच्च आसन पाते हैं, और यह उचित भी तो है, क्योंकि उन्हें अपनी अल्प-शक्ति का ज्ञान है और हठ करने की कुटेव ने उन्हें आत्म-विस्मृत नहीं बना दिया है। इसलिये उनके 'भूलस्वीकार' गुण का सन्मान करना योग्य ही है। जिनकी आत्मा पर यह गुण शासन करता है वही गुणी हो सकता है। इसके विरुद्ध जो अपने अभिमान के मारे मन में जानता हुआ भी भूल स्वीकार नहीं करता, सच पूछो तो वह आत्म-हनन करता है। उस पर लोगों की श्रद्धा नहीं रहती। उसे अपनी भूल

छिपाने के लिए कल्पना का जाल रचना पड़ता है, जिससे वह दोष से मुक्त होने के बदले उसे बढ़ाता है। वह दोष बढ़ते बढ़ते अन्त में राई से पर्वत हो जाता है। तुमने तीसरे भाग में पर्वत का उदाहरण पढ़ा है। उसने केवल मान की रक्षा के लिये अपनी भूल स्वीकार न की। पर क्या वह छुपी रही? उसके विद्यार्थियों को मालूम हुई सब को मालूम हुई और आजकल भी हमें मालूम होती है। इसके सिवा वह पापी पुरुषों का एक नमूना गिना गया। यदि उसने अपनी भूल उसी समय स्वीकार कर ली होती, तो इतना बखेड़ा ही खड़ा न होता। इस उदाहरण से हम यह सीख सकते हैं कि यदि कोई हमें अपनी भूल बतावे तो हम उस पर कोप न करें वाग्बाणों (कठोर वचनों) की वर्षा न करें, प्रत्युत उसे हितैषी समझें, उसके कृतज्ञ होवें और प्रसन्नता प्रगट करें।

बहुतेरे अहंकारी भूल स्वीकार करने में अपना अपमान समझते हैं। वे अपने को भूल से रहित समझते हैं, परन्तु वास्तव में देखा जाय तो सब से ज्यादा भुलक्कड़ वे ही हैं। क्योंकि वे इतने अनजान हैं कि अपनी भूल समझने और स्वीकार करने में ही भूल करते हैं। ऐसे लोग अपने मान की रक्षा के लिए ही हठ करते हैं पर उनका सब जगह तिरस्कार होता है। कल्पना करो, तुम से कोई भूल हुई। किसी हितैषी ने तुम्हें सूचना दी। अब तुम यदि उसे मंजूर नहीं करते तो वह तुम्हारी भूल को भूल नहीं समझेगा? जरूर समझेगा। यही नहीं बल्कि दुगुनी भूल समझेगा। जब वह दूसरों से तुम्हारी भूल की चर्चा करेगा और यह भी कहेगा

कि तुमने उसे स्वीकार नहीं किया, तो उन दूसरों के तुम्हारे प्रति कैसे विचार पैदा होंगे? निस्सन्देह वे तुम्हें घृणा की दृष्टि से देखेंगे। इसी से ऐसे लोग सर्वत्र घृणास्पद होते देखे गये हैं। इसके विपरीत यदि तुम धन्यवाद के साथ दूसरे के द्वारा बताई हुई भूल को स्वीकार कर लो तो वह तुम्हारा बड़प्पन समझेगा।

बालको! यदि तुम्हें दूसरों के सामने अनन्य श्रद्धाभाजन बनना है और सत्य को अपनालेने का अभ्यास डालना है तो पहले तो भूल होने ही न दो, यदि हो भी जाय, क्योंकि अधूरे ज्ञान का धर्म यही है, तो उसे स्वीकार कर लो। सदा स्मरण रक्खो कि "हमारा वही है जो सत्य है"। यह कभी मत सोचो कि "जो हमारा है, हमारे मुख से निकलगया है वही सत्य है"।

हां, एक बात अवश्य है। जैसे हम से भूल हो सकती है, वैसे दूसरों से भी। संभव है कभी हमारी भूल तो न हो, पर वह दूसरे को भूल मालूम पड़ती हो। ऐसी अवस्था में अपनी बात पर भरोसा रखते हुए भी दूसरे की बात को अनसुनी न करो। एक बार अपनी बात पर फिर विचार करो, और दूसरे को समझा दो कि यह मेरी भूल नहीं है। ऐसा करना उसी समय ठीक है, जब तुम्हें दृढ़ विश्वास हो। यदि ऐसा किया तो तुम सत्य के पक्षपाती, सत्यप्रिय, न्यायशील और सत्पुरुष बन सकोगे, क्योंकि अपना दोष स्वीकार करना सज्जनों का लक्षण है।

# पाठ २२

## स्वास्थ्यरक्षा.

### (४)

### निद्रा.

प्रत्येक प्राणी को अपनी जिन्दगी बनाए रखने के लिए नींद की अनिवार्य आवश्यकता है। प्राचीन समय में प्राण-दण्ड के अपराधियों को इसलिए नहीं सोने देते थे कि जिससे वे विना मारे ही मर जावें।

सारे दिन काम में लगे रहने से शरीर और मन दोनों ही थक जाते हैं। भोजन करने से हमारे शरीर में बल आता है और नींद लेने से भोजन पचता है। जैसे दिन भर खींचा जाने से कुंए का पानी उतर जाता है और रात में फिर ज्यों का त्यों पूरा हो जाता है। तैसे ही सारे दिन परिश्रम करने से जो थकावट आती है, रात में सोने से वह दूर हो जाती है और तबियत हरी हो जाती है। इस-लिए बलवान और निरोग रहने के लिए सोना बहुत आव-श्यक है। परन्तु जैसे आवश्यकता से अधिक भोजन से लाभ के बदले हानि होती है वैसे ही आवश्यकता से अधिक सोने से भी अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

युवक मनुष्यों की अपेक्षा बालकों को अधिक नींद की आवश्यकता होती है। बारह वर्ष के बालकों को प्रति दिन ९ घंटे सोना चाहिए तथा तरुणों को ७ घंटे। रोगी को नींद का अधिक आना उसकी निरोगता का लक्षण

है। निरोग होते ही आदमी को ज्यादा नींद आती है, इससे उसके बल की कमी पूरी हो जाती है।

सोने का सब से अच्छा समय १० बजे से ५ बजे तक रात का है। सूर्योदय तक सोने से बीमारी होती है। इसी कारण कहावत भी प्रसिद्ध है कि-"सुबह सोना और जीवन से हाथ धोना है"। जो लोग नियत समय पर सोते और नियत समय पर जाग जाते हैं, उनका शरीर सदा स्वस्थ रहता तथा बुद्धि बढ़ती है। परन्तु जो लोग दिन में या अनियत समय पर सोते जागते हैं, वे आलसी हो जाते तथा उनकी बुद्धि की वृद्धि नहीं होती। हां, भोजन करने के पश्चात् थोड़ा आराम करना लाभदायक होता है। गरमी के दिनों में दोपहर को थोड़ी निद्रा ले लेने से चित्त प्रफुल्लित होता है।

दिन भर काम करते रहने से रात में अच्छी नींद आती है। किन्तु सोने से पहले अधिक भोजन करने से बेहोशी-सी आ जाती है, आमाशय को अधिक परिश्रम करना पड़ता तथा वाहियात स्वप्न आया करते हैं। इसलिए रात में भोजन कदापि न करना चाहिए। रात में भोजन करने से और भी अनेक हानियाँ होती हैं। भूमि पर सोने की अपेक्षा पलँग, खाट, सूखी पत्तियों आदि पर सोना अच्छा है. क्योंकि जमीन पर सोने से सांप बिच्छू आदि के काटने का डर रहता है। सीड़दार धरती पर सोने से शरीर में कई प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

ओढ़ने बिछाने की चीजें सदा स्वच्छ रखनी चाहिए। मैली रखने से उनका मैल शरीर के छिद्रों द्वारा शरीर

में समा जाता है। सोने का स्थान विशेष कर हवादार होना चाहिए। उसमें ऐसी जगह आग अथवा दिया न जलाना चाहिए, जहाँ से धुआं भलीभांति न निकलने पावे। मुँह ढंक कर सोने से नई स्वच्छ हवा नहीं मिलती। ग्रीष्म ऋतु के सिवाय कभी मैदान में न सोना चाहिए। जहां तेज हवा बह रही हो, वहां सोने से शरीर की उष्णता निकल जाती है, और इससे बहुधा बीमारी हो जाया करती है। जब महामारी या ज्वर का प्रकोप अधिकता से हो, तो रात्रि को शरीर गर्म रखना चाहिए।

## पाठ २३

## विचार भेद.

धार्मिक सामाजिक नैतिक और राजनैतिक विषयों में कभी एक मत हो ही नहीं सकता। न कभी हुआ है न कभी होगा। भारतवर्ष के ही क्या सारे संसार के पुरातन इतिहास को देखने से मालूम हो सकता है कि उस समय भी सब के विचार एकसे नहीं होते थे। कभी २ तो विचार-भेद के कारण साधारण जनता को बड़ा ही कटुक फल भोगना पड़ता था। अब भी विचारों के भेद से बहुत हानियां होती हैं। धार्मिक विचारों में मत-भेद होने से आजकल भी रक्त की नदियां बह जाती हैं। जो लोग धर्म के असली रहस्य को नहीं समझते, वे ही ऐसे झगड़ों का बीज बोते हैं। पर जो विद्वान् धर्म की वास्तविकता को समझने लगते हैं, वे विधर्मियों से द्वेष नहीं करते। वे उन्हें अपना भाई समझते हैं और उनकी त्रुटि को सौज-

न्य से समझाते हैं। दूसरों के आगे अपने विचार प्रगट करने का, उन्हें विचार योग्य ठहराने का और अन्त में स्वीकार कराने का सब से अधिक ग्राह्य और सब से उत्तम उपाय यही है। जो अपने अधिकार के उन्माद से उन्मत्त हो कर अनुचित दबाव द्वारा अपनी बात मनाने का प्रयत्न करता है, वह निश्चय उन्मत्त ही है। ऐसा करने से जो दृढ़प्रतिज्ञ होते हैं, वे तो आत्मसमर्पण करके भी अपने विचार नहीं पलटते, और जो शिथिल होते हैं, वे उस समय डर के मारे दबाव मान जाते हैं पर दबाव से मुक्त होते ही उन विचारों को तिलाञ्जलि दे देते हैं। इसलिये अपने विचारों में सम्मिलित करने के लिये सत्ता का उपयोग न करना चाहिए, तथा अनुचित दबाव न डालना चाहिए। किन्तु प्रेम से अपने विचार दूसरों के सामने रखकर और उन्हें समझाने का यत्न करना चाहिए। यदि वे न मानें तो उनसे द्वेष न करना चाहिए।

जैसे धार्मिक विषयों में मतभेद होता है, उसी तरह सामाजिक सुधार के विषयों में मतभेद होता है। अगर तुम्हारे विचार किसी दूसरे से नहीं मिलते तो उनके विषय में बुरा विचार मत करो। जैसे तुम्हारे मन में सुधार की लगन है वैसे दूसरों के मन में भी। विचार करो कि यदि उनके चित्त में सुधार की उत्कट भावना न होती, तो वे व्यर्थ ही क्यों तुम्हारा विरोध करते? साधारण मनुष्यों की तरह आमोद प्रमोद में ही जीवन क्यों व्यतीत न करते? पर उनका हृदय भी समाज के अधःपात की चोट से जख्मी हो रहा है। इसलिए उनकी नियत पर सन्देह न करो। यदि वास्तव में

देखा जाय तो विचारों का भेद है ही नहीं। क्योंकि तुम्हारा विचार समाज के सुधार करने का है और दूसरों का भी विचार समाज के सुधार करने का है। तो विचारों में भेद कहां है? कहीं नहीं। हां, विचारों की सफलता के उपायों में भेद है। पर एक काम के अनेक उपाय भी हो सकते हैं। संभव है दूसरों के सोचे हुए उपायों से भी कार्य की सिद्धि हो सके। फिर भी यदि तुम्हें अपने विचारों की सत्यता पर और दूसरों के विचारों की निस्सारता पर पक्का विश्वास हो तो सभ्यता से, अच्छे शब्दों में विरोध कर सकते हो। पर विरोध करते समय खूब खयाल रक्खो कि दूसरों के विचारों पर आक्रमण हो, विचार वाले पर न हो। कई लोग किसी के विचारों की समालोचना करते समय विचार वाले की आलोचना कर बैठते हैं। यह उनकी भयंकर भूल है। हमारा कर्त्तव्य विचारों की जाँच करना है न कि विचार वालों की जाँच करना। विचार वालों की जाँच करना केवल विरोध की जड़ है। जब ऐसा होता है तब खींचातानी बढ़ती और घोर अशान्ति मच जाती है। फिर एक दूसरे की अच्छी बात को भी नहीं मानता। फूट पड़ जाती है। फूट तो सुधार का शत्रु है। बस, सुधार के बदले विगाड़ होता है। सचमुच देखा जाय तो सुधार के नाम पर ऊलजलूल लेख लिखने वाले, दूसरों पर गाली गलौज़ की बौछार करने वाले लोग ही समाज के शत्रु हैं।

प्यारे बालको! तुम जब पढ़ लिखकर समाज या देशके नेता बनो और किसी दूसरे नेता से तुम्हारे विचार न मिलें तो इस शिक्षा को मत भूल जाना। क्योंकि इस

शिक्षा से तुम्हें मनोवांछित सफलता मिलेगी । तुम देश समाज आदिका उद्धार कर सकोगे और सब के प्यारे हो सकोगे। सदा विचार करते रहो कि "हे भगवान्! उलटा आचरण करने वाले पर यदि प्रेम न कर सकूं तो उस पर कम से कम मध्यस्थभाव धारण करूं"।

## पाठ २४

### भगवान् महावीर

(२)

सोना जैसे अग्नि में तपने से चमकने लगता है, उसी तरह भगवान् महावीर की आत्मा बारह वर्ष की कठिन तपस्या की अग्नि में तपने से केवलज्ञान द्वारा चमकने लगी। इसी समय उन्हें जम्बुक नामक ग्राम में ऋजुबालिका—नदी के तीर पर शालिवृक्ष के नीचे— वैसाख सुदि दशमी के दिन केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई। अब संसार में कोई भी ऐसी वस्तु न थी, जिसे भगवान् न जानते हों। जो लोग दूसरों की आंख बचा कर पाप कर्म करते हैं और समझते हैं कि हमारे दुष्कर्म की किसी को कानों कान भी खबर न पड़ेगी, वे निरे बुद्धू हैं। यदि कोई साधारण मनुष्य न भी जान पावे पर केवलज्ञानी तो जानते ही हैं। उनसे कुछ छिपा नहीं रहता। इस कारण कोई बुरा काम न करना चाहिए।

जब तीर्थंकरों को केवलज्ञान उत्पन्न होता है, तब स्वर्ग से इन्द्र आकर समवसरण की रचना करता है। समवसरण उस सभा को कहते हैं, जिसमें भगवान् धर्म का उपदेश देते हैं। जब प्रभु महावीर को केवलज्ञान हुआ तो इन्द्र ने आकर

समबसरण की रचना की। भगवान् के उपदेश में किसी को आने की मनाई न थी। शास्त्रों में लिखा है कि भगवान् का उपदेश सुनने के लिए जानवर भी जाते थे। भगवान् के प्रभाव से वहां सांप और नेवला, बकरी तथा शेर जैसे स्वाभाविक शत्रुओं ने बैर छोड़ दिया था। सच है साक्षात् परमात्मा के सामने-किसी का बैर विरोध नहीं टिक सकता। भगवान् के उपदेश ने हाहाकार के चीत्कार की जगह सर्वत्र नीरव शान्ति की स्थापना की। लोगों के दिल दया से द्रवित हो गये। धर्म मानो जागृत हो उठा।

विहार करते हुए भगवान् महावीर श्रावस्ती पहुँचे। वहां गोशाला, जो पहले भगवान् का शिष्य था और फिर उनका विरोधी हो कर अपने को तीर्थङ्कर बतलाता था, पहले से ही उपस्थित था। उसने भगवान् पर तेजोलेश्या का प्रहार किया। परन्तु जैसे ववण्डर पर्वत से टकरा कर लौट आता है, तैसे तेजोलेश्या भी वापस लौट गई और उसी के शरीर में लगी।

अब मुक्त होने का समय निकट आ गया। कार्तिक की अमावस्या को पावापुरी में अन्तिम समवसरण रचा गया। प्रभु ने अन्तिम उपदेश दिया। अन्त में भगवान् सर्वोत्कृष्ट समाधि में लीन हो कर मुक्ति को प्राप्त हुए।

इस समय मनुष्यों ने, देवों ने और असुरों ने बड़े ठाटबाट से दीपावलि उत्सव मनाया था। सारी पावा नगरी जले हुए दीपकों के प्रकाश से जगमगा उठी थी। तब से लेकर अबतक लोग दीपावलि का उत्सव प्रतिवर्ष मनाया करते हैं। भगवान् को मुक्ति रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति हुई,

अतः हम लोग भी उसी लक्ष्मी की पूजा करते हैं। परन्तु आजकल लोग असली बात को न समझकर धन दौलत को लक्ष्मी समझते और उसी की पूजा करते हैं। बहुतेरे बालक पटाके छोड़ते हैं. इससे सिवा हानि के लाभ नहीं होता। कभी २ तो बड़ी २ दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। प्रायः प्रत्येक वर्ष या तो बालकों के जल जाने की खबर सुनी जाती है, या मकान आदि में आग लग जाने की। धार्मिक प्रसंग पर ऐसे हिंसाजनक कृत्य करना कदापि उचित नहीं हो सकता। इसलिए उस समय हमें धर्म की आराधना करनी चाहिये। उसी रात्रि में श्रीगौतम गणधर को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी, इसलिये उनकी स्मृति के लिये व्यापारी लोग पहलेपहल "श्रीगणेशाय नमः"(गण के स्वामी गौतम को नमस्कार हो)लिखते हैं। परन्तु "श्रीगौतमगणेशाय नमः" ऐसा लिखना और भी अच्छा है।

बालको! परम पूज्य परमात्मा महावीर को नमस्कार करो जिन्होंने हमें आत्म-कल्याण का मार्ग सुझाया। उनके जीवन से जो शिक्षाएँ मिलें, उन पर चलो और दूसरों को चलाओ।

# पद्यभाग ।

## पाठ २५

### बुधजन सतसई के दोहे ।

(मित्रता)

जौलों तू संसार में, तौलों मीत रखाय ।
सला लिये विन मित्र की, कारज बीगर जाय ॥१॥
नीति अनीति गनै नहीं, दारिद संपत माहिं ।
मीत सला ले चाल हैं, तिनका अपजस नाहिं ॥२॥
मीत अनीत बचायकै, देहै विसन छुड़ाइ ।
मीत नहीं वह दुष्ट है, जो दे विसन लगाइ ॥३॥
धन सम कुल सम धरम सम, सम वय मीत बनाय ।
तासौं अपनी गोप कहि, लीजै भरम मिटाय ॥४॥
औरन तैं कहबौ नहीं, मन की पीड़ा कोइ ।
मिलै मीत परकासिये, तब वह देवै खोइ ॥५॥
एते मीत न कीजिये, जती लखपती बाल ।
ज्वारी चारी तसकरी, अमली अर बेहाल ॥६॥
मित्रतना विसबास सम, और न जग में कोय ।
जो विसवास कौं घात हैं, बड़े अधरमी लोय ॥७॥
कठिन मित्रता जोरिये, जोर तोरिये नाहिं ।
तोरेतें दोऊन के, दोष प्रगट ह्वै जाहिं ॥८॥
विपत मैटिये मित्र की, तन धन खरच मिजाज ।
कबहूं बांके बखत में, कर है तेरो काज ॥९॥

मुख में बोलै मिष्ट जो, उर में राखे घात ।
मीत नहीं वह दुष्ट है, तुरत त्यागिये भ्रात ॥१०॥

सला (सलाह) राय, सम्मति. विसन(व्यसन)बुरी आदत.
वय— उम्र. गोप— गुप्त बात.
बाल— मूर्ख. चारी— चुगलखोर.
तसकरी—चोर. अमली— नशेबाज.

## पाठ २६

### ग्राम्यजीवन.

अहा! ग्राम्य जीवन भी क्या है,
क्यों न इसे सब का मन चाहे ?
थोड़े में निर्वाह यहाँ है,
ऐसी सुविधा और कहाँ है ॥१॥

यहाँ शहर की बात नहीं है,
अपनी अपनी घात नहीं है ।
आडम्बर का नाम नहीं है,
अनाचार का काम नहीं है ॥२॥

यह अदालती रोग नहीं है,
अभियोगों का योग नहीं है ।
मरे फौजदारी की नानी,
दीवाना करती दीवानी ॥३॥

यहां गठकटे चोर नहीं हैं,
तरह तरह के शोर नहीं है।
गुण्डों की न यहाँ बन आती,
इज़्ज़त नहीं किसी की जाती ॥४॥

सीधे सादे भोले भाले,
हैं ग्रामीण मनुष्य निराले।
एक दूसरे की ममता है,
सब में प्रेममयी समता है ॥५॥

यद्यपि वे काले हैं तन से,
पर अति ही उज्ज्वल हैं मन से।
अपना या ईश्वर का बल है,
अन्तः करण अतीव सरल है ॥६॥

छोटे से मिट्टी के घर हैं,
लिपे पुते हैं स्वच्छ सुघर हैं।
गोपद-चिह्नित आँगन-तट हैं,
रक्खे एक ओर जल-घट हैं ॥७॥

खपरैलों पर बेलें छाईं,—
फूली, फली, हरी, मन भाईं।
काशीफल- कूष्माण्ड कहीं हैं,
कहीं लौकियाँ लटक रहीं हैं ॥८॥

है जैसा गुण यहाँ हवा में,
प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में।
सन्ध्या समय गाँव के बाहर,
होता नन्दन विपिन निछावर ॥९॥

अतिथि कहीं जब आ जाता है,
वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे,
कोई सम्बन्धी हो जैसे ॥१०॥

जगती कहीं ज्ञान की ज्योति,
शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते,
पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते ॥११॥

—मैथिलीशरण गुप्त.

अभियोग-मुकदमा. गोपदचिह्नित-गाय के खुरों के निशान वाले.

नन्दन विपिन- इन्द्र का वन. सन जाना-लिप्त होजाना.

## पाठ २७

## नीतिसंग्रह

पहले लखिके दोष गुण, फेर अरंभो काज।
जाते मन को हो न दुख, लहौ न जग में लाज ॥१॥
सुनि के सबकी बात को, पहले ढूँढ़ो हेत।
फिर उत्तर मुख से कहो, या विधि राखो चेत ॥२॥
परनिंदा कर जो तुम्हें, देत बड़ाई पूर।
मत भूलो या पै कहुँक, तुम्हें कहेंगे कूर ॥३॥
जो आपस में बैर करि, मिलें और के साथ।
वे भोगत हैं बहुत दुख, पड़ बैरी के हाथ ॥४॥

जिहि जासों मतलब नहीं, ताकी ताहि न चाह।
ज्यों निस्प्रेही जीव के, तृण समान सुरनाह ॥५॥

दोषहि को उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक ॥६॥

बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ कड़वे बैन।
लात खाय पुचकारिये, होय दुधारू धैन ॥ ७ ॥

मूढ़ तहां ही मानिये, जहां न पण्डित होय।
दीपक की रवि के उदय, बात न पूछे कोय ॥ ८ ॥

खल जन सों कहिए नहीं, गूढ़ कबहुँ करि मेल।
यों फैले जग मांहिं त्यों, जल पर बूंद क तेल ॥९ ॥

मिथ्याभाषी सांचहूं, कहै न माने कोय।
भांड पुकारे पीर वस, मिस समुझै सब कोय ॥१०॥
जाहि बड़ाई चाहिए, तजै न उत्तम साथ।
ज्यों पलाश संग पान के, पहुँचै राजा हाथ ॥११॥

सुजन बचावत कष्ट से, रहे निरन्तर साथ।
नयन सहाई पलक ज्यों, देह सहाई हाथ ॥१२॥

कूर— (क्रूर) दुष्ट. निस्प्रेही(निस्पृही)—निरभिलाष.

उमहै गहै— दौड़कर पकड़े. पयोधर— स्तन.

धैन (धेनु) गाय. गूढ़— गुप्त.

पीर— दुःख. मिस — बहाना.

# पाठ २८

## परोपकार

दीनता को दूर कर उपकार में जो लीन है,
पूज्य है वह, क्योंकि अच्छा कर्म ही कौलीन है।
दिव्य कुल में जन्म ही से लाभ कुछ होता नहीं,
क्या मनोहर फूल में लघु कीट है होता नहीं ॥१॥

जन्म भर उपकार करना, ज्ञानियों का धर्म है,
कर्म से पीछे न हटना, मानियों का मर्म्म है।
सूर्य जब तक है उदित तम का पता लगता नहीं,
खर-समीरण सामने क्या मेघ टिक सकता कहीं? ॥२॥

अन्य के उपकार से ही मान पाते हैं सभी,
व्यर्थ वेशाटोप से होता नहीं कुछ भी कभी, ।
वस्त्र भूषण जो कहीं खर का तुरग के तुल्य हो,
तो इसीसे क्या उभय का एक ही सा मूल्य हो ॥३॥

जो पराये काम आता धन्य है जग में वही,
द्रव्य ही को जोड़कर कोई सुयश पाता नहीं।
पास जिसके रत्नराशि अनन्त और अशेष है,
क्या कभी वह सुरधुनी के सम हुआ सलिलेश है ?॥४॥

आभरण नरदेह का बस एक पर-उपकार है,
हार को भूषण कहे, उस बुद्धि को धिक्कार है।
स्वर्ण की जंजीर बाँधे श्वान फिर भी श्वान है,
धूलि-धूसर भी करी पाता सदा सम्मान है ॥५॥

जो विदेशों से गुणों को सीख कर आते यहाँ,
और फैलाते उन्हें निज देश बीच जहां तहाँ।
सर्वविध वे गण्य हैं, वे धन्य हैं, वे मान्य हैं,
अन्य नर औदुम्बरी-फल-जन्तु सम सामान्य हैं ॥६॥
है उसीका कीर्तिकारक जन्म इस संसार में,
दे दिया सर्वस्व जिसने और के उपकार में।
धन्य हैं वर वृक्ष वे जो सौख्य बहु देते हमें,
ध्यान देते हैं नहीं इतने पड़े हम मोह में ॥७॥
ज्ञान मुझ में अल्प है, यह ध्यान में मत लाइये,
हारिए मन में न सद् व्यवहार करते जाइये।
चन्द्र-रवि दोनों कुहू में देख पड़ते जब नहीं,
उस समय में दीप अपना काम क्या करते नहीं ॥८॥
खेल ही में बाल जो दिन काटता वह है बुरा ;
शोक! अपने हाथ वह है मारता उर में छुरा।
बालपन से लाभ पहुँचाना उचित है लोक को,
क्या प्रकट करता नहीं बालेन्दु निज आलोक को ॥९॥
लाभ अपने देश का जिससे नहीं कुछ-भी हुआ,
जन्म उसका व्यर्थ है जल के बिना जैसा कुआ।
इस जगत में वन्य पशु से भी निरर्थक है वही,
क्योंकि पशु के चर्म से भी काम लेती है मही ॥१०॥
मान मर्यादा रहित जीना वृथा ही जानिए,
स्वार्थरत को यश नहीं मिलता, इसे सच मानिए।
पेट भरने के लिए तो उद्यमी है श्वान भी,
क्या अभी तक है मिला उसको कहीं सम्मान भी ॥११॥

देश-ममता छोड़ जो परदेश के उपकार में,
है लगा, वह क्यों न डूबै दुःख पारावार में ?।
इन्दु नभ को छोड़ जो रहता न हर के माथ मे,
भस्म से क्यों लिप्त होता पड़ पराये हाथ में ॥१२॥

—रामचरित उपाध्याय।

कौलीन— कुलीनता. कीट-- कीड़ा.

खर समीरण-आंधी, तेज हवा. वेशाटोप-- पहनावे का आडम्बर. (बाह्य आडम्बर.)

खर-- गधा, गर्दभ. तुरग-- घोड़ा.

उभय-- दोनों. सुरधुनी-- गंगा नदी.

सलिलेश-- समुद्र. श्वान--कुत्ता.

धूलिधूसर-धूलभरा. करी-- हाथी.

औदुम्बरी-फल-जन्तु- गूलर फलमें होने वाले त्रसजीव.

कुहू— अमावस्या.

बाल-- मूर्ख. उर-- हृदय.

पारावार— समुद्र. इन्दु— चन्द्रमा.

हर— महादेव.

# पाठ २९

## प्रकीर्णक पद्य.

### शील

(मत्तगयन्द छंद).

ताहि न बाघ भुजंगम को भय, पानि न बोरै न पावक जालै।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर, सो शुभ रीति करै अघ टालै॥
तासु विवेक बढ़ै घट अंतर, सो सुर के शिव के सुख मालै।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग, जो नर शील अखण्डित पालै॥१॥

### लोभ.

(मनहरण छंद.)

पूरन प्रताप-रवि, रोकवे को धाराधर,
सुकृति-समुद्र सोखवे को कुंभनंद है।
कोप-दव-पावक जनन को अरणि दारु,
मोह-विष-भूरुह को, महा दृढ़ कंद है॥
परम विवेक निशि-मणि ग्रासवे को राहु,
कीरति लता कलाप दलन गयंद है।
कलह को केलि-भौन आपदा नदी को सिंधु,
ऐसो लोभ याहू को विपाक दुख द्वंद है॥२॥

### सत्य.

(घनाक्षरी छंद)

पावक तैं जल होय, वारिधतैं थल होय,
शस्त्रतैं कमल होय, ग्राम होय वनतैं।

कूपतैं विवर होय, पर्वततैं घर होय;
  वासवतैं दास होय, हितू दुरजन तैं ॥
सिंघतैं कुरंग होय, व्याल स्याले अंग होय;
  बिषतैं पियूष होय, माला अहिफन तैं ।
विषमतैं सम होय, संकट न व्यापै कोय,
  ऐसे गुन होंय, सत्यवादी के दरसतैं ॥३॥

## गुरु.

(हरिगीतिका छंद)

मिथ्यात दलन सिद्धांत साधक, मुकतिमारग जानिये।
करनी अकरनी सुगति दुर्गति, पुराय पाप बखानिये ॥
संसार सागरतरनतारन, गुरु जहाज बिशेखिये।
जग माहिं गुरुसम कह बनारसि, और कोउ न देखिये ॥४॥

कविवर बनारसीदासजी

| | |
|---|---|
| भुजंगम— साँप. | बोरै— डुबावै. |
| धाराधर— बादल. | कुंभनंद— अगस्त्य ऋषि. |
| अरणि दारु— एक प्रकार की लकड़ी. | भूरुह— वृक्ष. |
| कन्द— जड़. | निशिमणि—चन्द्रमा. |
| कलाप— समुदाय. | गयंद— हाथी. |
| केलिभौन(भवन)—नाटकशाला | विपाक— फल. |
| वारिधि— समुद्र, सागर. | विवर—गड्ढा, गड्हा. |

वासव— इन्द्र
कुरंग--हिरण.
व्याल— साँप, भुजंग.
अहिफन— साँप का फन,
विशेखिये-- विशेष रूप से
पहचानिये.

## पाठ ३०

### पार्श्वनाथस्तुति.

चौपाई ।

प्रभु इस जग समरथ नहिं कोय । जा पै जस बरनन तव होय ॥
चार ग्यानधारी मुनि थके । हम से मंद कहा कर सके ॥१॥
यह उर जानत निहचै कीन । जिनमहिमा बरनन हम कीन ॥
पै तुम भगति करै वाचाल । तिस बस होय गहूं गुनमाल ॥२॥
जय तीर्थंकर त्रिभुवनधनी । जग चंद्रोपम चूड़ामनी ॥
जय २ परम धरम दातार । करमकुलाचल चूरन हार ॥३॥
जय सिव-कामिनि-कंत महंत । अतुल अनंत चतुष्टयवंत ॥
जय जग आसभरन बड़भाग । सिव-लक्ष्मी के सुभग सुहाग ॥४॥
जय २ धर्म-धुजा-धर धीर । सुरगमुकति दाता बर वीर ॥
जय रतनत्रय रतनकरंड । जय जिन तारन तरन तरंड ॥५॥
जय २ समोसरन-सिंगार । जय संसय-वन-दहन तुसार ॥
जय २ निर्विकार निर्दोष । जय अनंत गुन-मानिक-कोष ॥६॥
जय २ ब्रह्मचरजदल साज । काम-सुभट-विजयी भट-राज ॥
जय २ मोह-महा नग-करी । जय २ मद-कुंजर केहरी ॥७॥
क्रोध महानलमेघ प्रचंड । मान-महीधर-दामिनि- दंड ॥

माया-बेल धनंजय दाह । लोभ-सलिलसोषक-दिननाह ॥८॥
तुम गुनसागर अगम अपार । ग्यानजिहाज न पहुँचे पार ॥
तट ही तट पर डोलत सोय । स्वारथ सिद्ध तहां ही होय ॥९॥
प्रभु तुम कीर्ति-बेल बहु बढ़ी । जतन बिना जग-मंडप चढ़ी ॥
और अदेव सुजस नित चहैं । ये अपने घर ही जस लहैं ॥१०॥
जगतजीव घूमैं विन ज्ञान । कीनैं मोह-महाविष-पान ॥
तुम सेवा विष नाशन जरी । यह मुनिजन मिलि निहचै करी ॥११
जन्म-लता मिथ्यामत-मूल । जामन मरन लगै जिहि फूल ॥
सो कब ही विन-भगति-कुठार । कटै नहीं दुख-फल दातार ॥१२॥
कलपतरोवर चित्राबेल । काम पोरसा नौनिधि मेल ॥
चिंतामनि पारस पाषान । पुन्य पदारथ और महान ॥१३॥
ये सब एक जनम संयोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥
त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव । जनम जनम सुखदायक देव ॥१४॥
तुम जग-बान्धव तुम जगतात । असरनसरन-विरद-विख्यात ॥
तुम जग जीवन के रछपाल । तुम दाता तुम परम दयाल ॥१५॥
तुम पुनीत तुम पुरुष-पुरान । तुम समदरसी तुम सबजान ॥
तुम जिन जग्यपुरुष परमेस । तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेस ॥१६॥
तुम ही जगभरता जगजान । स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥
तुम विन तीन काल तिहुँलोय । नहिं नहिं सरन जीवको कोय॥१७
तिस कारन करुनानिधि नाथ । प्रभु सन्मुख जोरे हम हाथ ॥
जब लौं निकट होय निरवान । जगनिवास छूटै दुखदान ॥१८॥
तब लौं तुम चरनाम्बुज वास । हम उर होहु यही अरदास ॥
और न कछु वांछा भगवान । यह दयाल दीजे वरदान ॥१९॥

दोहा।

**जीति कर्मरिपु जे भये, केवल लब्धि निवास।**
**सो श्री पारसप्रभु सदा, करो विघन-घन नास ॥२०॥**

चार ज्ञान-- मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान.

वाचाल-बहुत बोलने वाला, मुखर.

अनंत चतुष्टयवंत—अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत शक्ति वाले.

रतनकरंड- रत्नों का पिटारा.

तरंड- नौका.

समोसरन-भगवान की उपदेश सभा.

तुसार— हिम, पाला.

साज- सजाने वाले.

धनंजय- अग्नि.

जरी (जड़ी)– बूटी.

जन्मलता- संसार रूपी बेल.

कलपतरो (तरु) वर- उत्तम कल्प वृक्ष

सबजान— सर्वज्ञ.

विरद—- गुनगान

जग्य (यज्ञ) पुरुष- पूज्य.

अमलान— निर्दोष.

चरनाम्बुज- पदकमल.

अरदास — प्रार्थना.

केवललब्धि- केवलज्ञान रूपी लब्धि.

# पाठ ३१

## गिरधर की कुण्डलियाँ

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान ।
चंचल जल दिन चारि कौ ठाउँ न रहत निदान ॥
ठाउँ न रहत निदान जियत जग में यश लीजै ।
मीठे बचन सुनाय विनय सब ही की कीजै ॥
कह गिरधर कविराय अरे यह सब घट तौलत ।
पाहुन निशिदिन चारि रहत सब ही के दौलत ॥१॥
साइँ सब संसार में मतलब को व्यौहार ।
जब लग पैसा गाँठ में तब लगि ताको यार ॥
तब लगि ताको यार २ सँग ही सँग डोलै ।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहीं बोलै ॥
कह गिरधर कविराय जगत को याही लेखा ।
करत बेगरजी प्रीत यार हम विरला देखा ॥२॥
झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार लै जाय ।
लेत परम सुख ऊपजै लैके दियो न जाय ॥
लैके दियो न जाय ऊँच अरु नीच बतावै ।
ऋण उधार की रीति माँगते मारन धावै ॥
कह गिरधर कविराय रहै जनि मन में रूठा ।
बहुत दिना ह्वै जाय कहै तेरो कागद झूठा ॥३॥
रम्भा झूमत हौ कहा थोरे ही दिन हेत ।
तुम से केते ह्वै गये अरु ह्वै हैं इहि खेत ॥
अरु ह्वै हैं इहि खेत मूल लघुशाखा हीने ।

ताहू पर गज रहै दीठि तुम पै प्रति दीने ॥
बरनै "दीन दयाल हमें लख होत अचम्भा ।
एक जन्म के लागि कहा झुकि झूमत रम्भा ॥४॥
कोई संगी नहिं उतै है इतही को संग ।
पथी लेहु मिलि ताहि तें सबसों सहित उमङ्ग ॥
सबसों सहित उमङ्ग बैठि तरनी के मांहीं ।
नदिया नाव संयोग फेरि यह मिलि है नांहीं ॥
बरनै "दीनदयाल" पार पुनि भेंट न होई ।
अपनी अपनी गैल पथी जैहैं सब कोई ॥५॥

बेगरजी- निस्वार्थी. धावै- दौड़े.
रम्भा- केला. खेत- भूमि, खेती की जगह.
पथी- मुसाफिर. तरनी- जहाज
गैल- मार्ग.

॥ इति सम्पूर्णम् ॥

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचंद भैरोंदान सेठिया.

जैन लायब्रेरी (शास्त्र भण्डार)

बीकानेर (राजपूताना)

*TO be had at:—*

*Agarchand Bhairodan*

*Sethia Jain Library*

**BIKANER.** [RAJPUTANA]

सेठिया जैन ग्रन्थमाला पुष्प नं० ७३

श्री वीतरागाय नमः

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## (पाँचवां भाग)

प्रकाशक—

**भैरोंदान जेठमल सेठिया**

**बीकानेर.**


| | | |
|---|---|---|
| वीर संवत २४५४ | प्रथमावृति | न्योछावर |
| विक्रम सं० १९८५ | २००० | ।=) |

लहरचन्द सेठिया

*Laharchand Sethia*

# उपक्रमण

हिन्दी-बाल-शिक्षा का पांचवां भाग भी शिक्षकों और शिष्यों के सामने समुपस्थित है। इसमें चौथे भाग की अपेक्षा भाषा और भाव अधिक गंभीर रक्खे गये हैं, जिससे भाषाज्ञान और विषयज्ञान अधिक गंभीर हो। आस्तिक सम्प्रदायों में शारीरिक मानसिक नैतिक और धार्मिक उन्नति से ही मनुष्य की उन्नति समझी जाती है। इनमें से यदि किसी की भी न्यूनता हो तो वह उन्नति लंगड़ी-अधूरी ही है। इसके सिवाय इन चारों विषयों में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध भी है। शारीरिक उन्नति से मन स्वस्थ रहता है, मन की स्वस्थता नीति की जननी है और नीति-पथ का अनुसरण किये बिना धर्म के प्रासाद तक पहुंचना संभव नहीं है। इसी कारण इसमें उल्लिखित सभी विषयों का समावेश किया गया है।

विषयों का संग्रह करना और शिक्षकों के कर-कमलों तक पहुँचाना हमारा कर्त्तव्य है, किन्तु अधिक से अधिक सदुपयोग करना शिक्षक महोदयों का काम है। आशा है शिक्षक, पुस्तक के विषय को शिष्यों के अन्तर में ठूंसेंगे नहीं, वरन् पुस्तक की सहायता से उनके अन्दर छिपी हुई शक्तियों की अभिव्यक्ति करेंगे।

इस भाग के संशोधन में श्रीमान् उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज, श्रीमान् पण्डितरत्न श्रीघासीलालजी महाराज से सहायता प्राप्त हुई है, अतः दोनों माननीय महानुभावों का उपकार

मानना कर्त्तव्य ही है। इनके सिवाय काशीवासी श्रीरामनाथलाल 'सुमन' द्वारा भी संशोधन कराया गया है।

छठा भाग तैयार कराने का भी विचार है और यथासंभव शीघ्र ही उसका कार्य आरम्भ हो जायगा। विद्वानों से निवेदन है कि अपनी २ बहुमूल्य सम्मतियां भेजकर अनुगृहीत करते रहें, जिससे इस सीरीज़ को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने में कसर न रहे।

लेखक महाशय ने इसके तैयार करने में अनेक लेखकों की फुटकर कृतियों, कविताओं, लेखों आदि से तथा समाचार-पत्रों से सहायता ली है, अतः उन सब का आभार स्वीकार करते हैं।

बीकानेर<br>ता० १-५-२८ ई०

निवेदक—<br>भैरोंदान जेठमल सेठिया

# विषयानुक्रम


| पाठ | विषय | | पृष्ठाङ्क |
|---|---|---|---|
| १ | मनोकामना | (माधुरी) | १ |
| २ | श्रीमहावीर-जन्म | (सा.र.पं० दरबारीलाल न्यायतीर्थ) | ३ |
| ३ | हम दीर्घजीवी कैसे हो सकते हैं? | (हिन्दीनिबन्ध शिक्षा) | ५ |
| ४ | ईश्वर और उसकी भक्ति | | ९ |
| ५ | जन्म-भूमि | (मैथलीशरण गुप्त) | १४ |
| ६ | निबन्ध लिखने की रीति | | १७ |
| ७ | चूहेदानी | | २२ |
| ८ | अमृत वाणी | | २४ |
| ९ | हिलती हुई दीवार | (मुंशी देवीप्रसाद मुंसिफ) | २७ |
| १० | कर्म और पुरुषार्थ की व्याख्या | | २८ |
| ११ | सुख का पथ | | ३४ |
| १२ | वीर बालक | (स्वामी सत्यदेव) | ३७ |
| १३ | स्वर्गीय सङ्गीत(पुरुषार्थ) | (मैथिलीशरण गुप्त) | ४१ |
| १४ | उपवास | | ४३ |
| १५ | परीक्षा | | ४८ |
| १६ | संसार की चार उपमाएँ | (मू.ले. श्रीराजचन्द्र) | ५२ |
| १७ | धर्मधीर कामदेव | | ५५ |
| १८ | व्यवसाय चतुष्क | | ५६ |
| १९ | रीतिरवाज | | ६२ |
| २० | जैनों की आस्तिकता | | ६६ |
| २१ | कलियुगी भीमःराममूर्ति | (बालक) | ६९ |
| २२ | द्रव्य | | ७७ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| २३ | बुढ़ापा | (कविवर भूधरदासजी) | ८२ |
| २४ | आत्मा की सिद्धि | | ८६ |
| २५ | जलवर्ष वृत्त | (काशीप्रसाद जायसवाल) | ९० |
| २६ | संक्षिप्त धर्म परीक्षा | | ९३ |
| २७ | जंगलीपन की निशानी तम्बाकू | (स्वामी सत्यदेव) | ९९ |
| २८ | अन्योक्तियां | (कवि दीनदयालुजी) | १०१ |
| २९ | अमृत वाणी | | १०३ |
| ३० | कितना और कितनी बार खाना चाहिए? | (महात्मागांधी) | १०४ |
| ३१ | महापुरुष हनुमानजी | | १०८ |
| ३२ | प्रकीर्णक पद्य | (कविवर बनारसीदासजी) | ११४ |
| ३३ | शिक्षाप्रद प्रश्नोत्तर | | ११६ |
| ३४ | वायु | | ११८ |
| ३५ | युद्धवीर बारहवां चार्ल्स | (श्रीरामनाथलाल 'सुमन') | १२० |
| ३६ | प्रकीर्णक पद्य | (कविवर वृन्दावनदासजी) | १२३ |
| ३७ | अमृत वाणी | | १२५ |
| ३८ | स्याद्वाद | | १२७ |
| ३९ | किसान | (मुकुटधर पांडेय) | १३४ |
| ४० | राजर्षि प्रसन्नचन्द्र | | १३७ |
| ४१ | अमृत वाणी | | १४४ |
| ४२ | आदर्श दम्पति | | १४७ |
| ४३ | सूक्तियां | | १५५ |

ॐ

# हिन्दी-बाल-शिक्षा

## (पाँचवाँ भाग)

## पाठ १ ला ।

### मनोकामना ।

स्वजाति में प्रीति बनी रहे सदा,
स्वकामना-वृक्ष रहे फलों लदा ।
बना रहे ऐक्य न भेदभाव हो,
प्रभो ! हमारा जग में प्रभाव हो ।
सुखी रहे देश न दैन्य-ग्रस्त हो,
स्वतेज का सूर्य कभी न अस्त हो ।
स्वबन्धुओं में हम को प्रतीति हो,
सदा हमारी समुदार नीति हो ।
सुकार्य में नाथ ! सदा लगे रहें,
स्वभाव ही मध्य सदा पगे रहें ।
करें सदा कार्य बनें न आलसी,
हमें प्रिया हो न अनिष्ट पालिसी ।

न धैर्य त्यागें, न कभी उदास हों,
न विघ्न बाधा लख के हताश हों।
न प्रेम का भाव कभी विनष्ट हो,
प्रभो! हमारी प्रतिभा न भ्रष्ट हो।
कुपात्र को दान नहीं दिया करें,
न दुष्ट का मान कभी किया करें।
अधर्म को धर्म कभी न मान लें,
कुकर्म की ओर कभी न ध्यान दें।
बना रहे प्रेम सदा स्वदेश का,
करें नहीं त्याग कभी स्ववेष का।
करें किसी की न कदापि चाकरी,
प्रभो! करे उन्नति नित्य नागरी॥

## कठिन शब्दों के अर्थ।

स्वजाति-- अपनी जाति। स्वकामनावृक्ष-- अपनी इच्छा रूपी वृक्ष। ऐक्य--एकता। दैन्यग्रस्त-- दीनता से जकड़ा हुआ। पगे रहें-- अनुरक्त रहें। पालिसी--चाल, नीति। प्रतिभा--चामत्कारिक बुद्धि, ऐसी बुद्धि जिससे नई नई कल्पनाएँ उठें। कुपात्र-- अनधिकारी, अयोग्य, जैसे आजकल बहुतेरे संडमुसंडे आलसी होकर भीख माँगते फिरते हैं, या कोई भीख माँग माँगकर शराब माँस आदि पीते खाते हैं, ये सब दान के योग्य नहीं हैं। स्वदेश-- अपना देश (भारतवर्ष) नागरी--वह प्रसिद्ध लिपि जिसमें हिन्दी संस्कृत आदि भाषाएँ लिखी जाती हैं और जिसमें यह किताब छपी है।

# पाठ २२ रा ।

## श्रीमहावीर-जन्म

(१)

हुआ भारत में नव अवतार ।
हुए अपशकुन पाप सहन में, मुदित हुआ संसार ॥हुआ०॥
देवों ने वादित्र बजाये ।
जन्म-महोत्सव करने आये ॥
मुदित हुए नारकी जीव भी औरों की क्या बात ।
हुए झूठ हिंसा आदिक पापों के घर उत्पात ॥
हुआ पापों का भराडाफोड़ ।
धर्म भी आया बंधन तोड़ ॥
मिटा दीन दुर्बल मनुजों के मुख का हाहाकार ।
हुआ भारत में नव अवतार ॥

(२)

हुआ भारत में नव अवतार ।
धर्म-सूर्य उगा आलोकित हुआ अखिल संसार ॥हुआ०॥
अबलाएँ अंचल पसार कर ।
बोल उठी आओ करुणाधर! ॥
नूतन आशाओं से सब ने नवा दिया निज माथ ।
कहा किसी ने वैद्य हमारा कहा किसी ने नाथ ॥

हुए आशान्वित सारे लोग।
घटने लगा अधर्म कुरोग॥
पृथिवी चिल्ला उठी नाथ! अब हरिये मेरा भार।
हुआ भारत में नव अवतार॥

(३)

हुआ भारत में नव अवतार।
पशु, निर्बल, अबला, शूद्रों की प्रभु ने सुनी पुकार॥हुआ०॥
लाखों पशु मारे जाते थे।
मुख में तृण रख चिल्लाते थे॥
कहीं नहीं कोई देता था उन पर कुछ भी ध्यान।
शोणित से रँगता जाता था सारा जगत् महान॥
लगे मिटने हिंसा के काण्ड।
दया से गूँज उठा ब्रह्माण्ड॥
मिटी गर्जना और सुन पड़ी करुणा की झंकार।
हुआ भारत में नव अवतार॥

(४)

हुआ भारत में नव अवतार।
ढा दी गयीं सभी दीवारें रहा न कारागार॥हुआ०॥
जग में बजा साम्य का डंका।
मन की निकल गयी सब शंका॥
घृणा और विद्वेष न ठहरे सजा प्रेम का साज।
बैठे पास पिता के चारों भाई मिलकर आज॥

हुआ झूठों का मुँह काला।
सत्य का हुआ बोलबाला॥
एक बार हिल उठे हृदय-वीणा के सारे तार।
हुआ भारत में नव अवतार॥

नव– नया। वादित्र– बाजे। मनुजों– मनुष्यों। हाहाकार– दुःख और अत्याचार से त्रस्त होने पर रक्षा के लिये चिल्लाना। आलोकित-- प्रकाशित। अबलाएँ-- स्त्रियाँ। नूतन-- नयी। हरिये-- दूर कीजिये। भार-- बोझा। मुख में तृण रखना-- एक लोकोक्ति (मुहाविरा) है, इसका मतलब है दीन बन कर शरण लेना। शोणित-- रक्त, खून। हिंसा-- किसी को चोट पहुँचाना, दुःख देना, नाश करना। काण्ड--कर्म। ब्रह्माण्ड-- संसार। कारागार--जेल। साम्य-- बराबरी, सब भाई भाई हैं, यह भाव। शंका-- सन्देह। चारों भाई--इससे यहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र से अभिप्राय है। बोलबाला--एक मुहाविरा है, इस का प्रयोग प्रतिष्ठा और प्रभाव के अर्थ में होता है।

# पाठ ३ रा।

## हम दीर्घजीवी कैसे हो सकते हैं?

मनुष्य के शरीर का अन्त मृत्यु है। जब शरीर किसी कारण से प्राण-वायु के धारण करने में असमर्थ हो जाता है, तब मनुष्य मर जाता है। शरीर को दुर्बलता से बचाने और ऐसे ही नियमों पर चलने से, जो हमारे शरीर की जीव-शक्ति को लाभकारी हैं

मनुष्य अधिक काल तक जीवित रह सकता है। मरना जीना वश की बात नहीं, तो भी मनुष्य की बुद्धि ऐसी समताशालिनी है कि उसके द्वारा विचार कर व्यवहार करने से वह अधिक काल तक जीवित रह सकता है। हमारे पूज्य आचार्यों ने योग विद्या का आविर्भाव करके स्वास्थ्य विद्या का प्रबल ज्ञान प्राप्त किया था। अमेरिका और यूरप में दीर्घ जीवन कैसे प्राप्त हो सकता है, इस विषय पर अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी गयी हैं। जर्मनी के प्रसिद्ध डाक्टर ड्यू फिलटाड तथा और और महाशयों ने इस विषय पर अपने अच्छे विचार प्रकट किये हैं।

जीवन बढ़ाने की कला में और डाक्टरी या वैद्यक में बड़ा अन्तर है। वैद्यक के द्वारा मनुष्य को नीरोगता प्राप्त हो सकती है। जीवन बढ़ाने की कला दीर्घ-जीवन दान करती है। अनेक औषधियों के सेवन करने से मनुष्य तात्कालिक स्वास्थ्य-लाभ कर सकता है, परन्तु इससे उसके जीवन की डोरी कट कट कर छोटी होती जाती है। इस कला के विचार से अनेक रोग ऐसे हैं जिन के होने से मनुष्य की आयु बढ़ती है।

इस के नियम ऐसे तत्त्वों पर स्थिर हैं जो विज्ञ मनुष्यों की बुद्धि से जीव-शक्ति के लिए लाभकारी सिद्ध हैं। नीचे ऐसे ही विचारों को लिखा जाता है जो इस जीवन बढ़ाने की कला के मर्मज्ञों ने बर्षों के परिश्रम और अनुभव से प्राप्त किये हैं। ये सब नियम स्वास्थ्य वर्द्धक और शरीर को दृढ़ करने वाले हैं। शरीर और अन्तःकरण की दृढ़ता से ही मनुष्य दीर्घजीवी बन सकता है। मनुष्य में जो जीवन शक्ति व्याप्त है वह प्रकृति की सब शक्तियों से अधिक बलवती है। कुछ ऐसे कारण हैं जिन से यह शक्ति हीन और नष्ट हो जाती है। उन कारणों से मनुष्य को अ-

पनी जीवन-शक्ति की रक्षा करनी चाहिये। सर्दी सबसे भयानक शत्रु है। थोड़ी शीतलता हमारी जीवन शक्ति को बल देती है किन्तु उसकी अधिकता अनिष्टकारी है। सर्दी में कोई भी जीव प्रफुल्लित नहीं होता; न उस में अण्डे फूटते हैं, न अनाज पक सकता है।

हमारे जीवन के सच्चे मित्र ये हैं—प्रथम प्रकाश, द्वितीय शुद्ध वायु, तृतीय गर्मी। जहां जीवन है, वहीं गर्मी भी है। उष्णता जीवन देती और जीवन को उत्तेजित करती है। इन दोनों में ऐसा सम्बन्ध है कि हम नहीं कह सकते कि इनमें कौनसा कारण है? वृक्षों के समूह में देखा जाता है कि वे ही पेड़ अधिक काल तक स्थिर रहते हैं जो बड़े दृढ़ और कड़े होते हैं; जैसे बबूल, नीम पीपल, शीशम। छोटे वृक्ष और पौधे थोड़ी ही आयु पाते हैं। इससे परिणाम निकाला जा सकता है कि वे ही मनुष्य अधिक आयु प्राप्त कर सकते हैं जो दृढ़ और बलवान हैं। इससे मनुष्य का अपने शरीर को बलिष्ठ और परिश्रमी बनाना अपनी आयु बढ़ाना है। दुर्बल और आलसी अधिक काल तक नहीं जी सकता। थोड़ी उम्र में विवाह कर देना अनर्थकारी है। वीस वर्ष के पहले लड़कों का और चौदह वर्ष के पूर्व लड़कियों का विवाह किसी प्रकार न करना चाहिये। हमारे पुरखा बड़ी आयु तक ब्रह्मचर्य रखते थे, इसीलिये वे दीर्घ जीवी होते थे।

ऐसे मनुष्य जो दीर्घ जीवी हुए हैं उनके जीवन की रहन-सहन से पता लगता है कि उनका जीवन सरल रूप से व्यतीत होता था। वे लोग साधारण भोजन करते थे। विना भूख लगे खाते न थे, नशा का सेवन नहीं करते थे, चिन्ताओं से कम घिरे रहते थे। एक बड़े-बूढे ने मरते समय अपने मित्रों से कहा था—लो, अब मैं

जाता हूं, मेरा दुनिया का खेल खत्म हो गया। विद्वान् डैमोनक्स जब मरने लगा तब उसकी आयु सौ वर्ष से अधिक थी। उसके बंधुओं ने पूछा कि आप का अन्त समय है, बताइये कि आपकी अन्त्येष्टि क्रिया कैसे करें? डैमोनक्स ने उत्तर दिया--"इस विषय की कुछ चिन्ता न करो, गन्ध मेरे मृत शरीर की अपने आप अन्त्येष्टि क्रिया कर देगी"। बंधुओं ने कहा --"क्या आप की यह इच्छा है कि आप के शरीर को कुत्ते और चील खा जावें ?" डैमोनक्स ने कहा—"क्यों नहीं? मैंने इस शरीर द्वारा अपने जीवन-काल में मानव जाति की सेवा की है। अपने मृत शरीर से पशु पक्षियों का कुछ उपकार कर सकूँ तो अच्छा ही है।" ऐसे उच्च विचारों के शुद्ध-हृदय और प्रसन्न चित्त वाले लोग बहुधा दीर्घ जीवन लाभ करते हैं।

जिन स्थानों का जल-वायु स्वास्थ्यप्रद न हो, वहां नहीं रहना चाहिये। समुद्र वासी जन बहुधा दीर्घजीवी देखे गये हैं। स्वास्थ्य, शरीर, स्वभाव, भोजन इन पर मनुष्यों की आयु बहुत निर्भर है।

प्लीनी नामक एक विद्वान् लिखता है कि साधारण भोजन सब से उत्तम है। बढ़िया और चिकना भोजन बहुधा अनेक रोग उत्पन्न करने वाला होता है। गांव तथा छोटी बस्तियों में रहना जीवन को धीरता देने वाला है। इस विचार से बड़े शहरों में रहना बुरा है, ऐसे नगरों का जल वायु वैसा स्वच्छ नहीं हो सकता। अंग्रेज तथा यूरोपीय शिक्षित पुरुष इसीलिये बड़े २ नगरों के बाहर अपने बँगले बनवाते हैं। अब पढ़े लिखे भारतीय भी ऐसा करने लगे हैं। सब से बड़ी बात यह है कि मनुष्य को अपने जीवन में प्रकृति के नियमों पर खूब ध्यान रखना चाहिये।

ऐसा करने से मनुष्य का बड़ा कल्याण होता है । प्रकृति के नियम तोड़ने से मनुष्य बड़ी विपत्ति में फँस जाता है। यह एक ऐसी बात है जिसे सब विद्वानों ने माना है। यदि तुम भूखे न हो तो मत खाओ । यदि ठण्ड लगती हो तो कपड़ा पहन लो, अन्यथा हानि होगी । मनुष्य को युवावस्था में परिश्रमी बनना चाहिए । बुढापे में शान्तिप्रिय होना चाहिये । किसी भी आलसी ने दीर्घायु नहीं पायी है । मनुष्य की जीव-शक्ति तथा उसके शरीर का गठन इस योग्य है कि यदि उसका सदुपयोग किया जाय तो मनुष्य निस्सन्देह सौ वर्ष तक जी सकता है ।

### कठिन शब्दों के अर्थ.

दीर्घजीवी– अधिक काल तक जीने वाले । क्षमता– शक्ति। आविर्भाव–सृष्टि, उत्पत्ति । जर्मनी-- यूरप के मध्य भाग का एक देश । जिसके कारण यूरप का महायुद्ध हुआ था । कला– उपाय, तरकीब । तात्कालिक-- थोड़ी देरके लिये, उस समय के लिये, क्षणिक । आयु-- उम्र । विज्ञ– विद्वान्। मर्मज्ञ–मर्म (भेद) जानने वाले, जानकार । उष्णता– गर्मी । अन्त्येष्टिक्रिया– मृत-संस्कार । सदुपयोग- (सत्+उपयोग) ठीक उपयोग ।

# पाठ ४ था ।

## ईश्वर और उसकी भक्ति।

गुरुजी—नन्दकिशोर ! तेरे घुटने में यह क्या लगा है ? ।

नन्द०—अभी पाठशाला को दौड़ा आ रहा था, रास्ते में पत्थर की ठोकर लग जाने से गिर पड़ा। इसी से घुटने छिल गये।

सुरेश—गुरुजी! यह हम लोगों से बहुत लड़ता झगड़ता है। जान पड़ता है, इसीलिये परमात्मा ने इसे दण्ड दिया है।

शंकर—इसने कल मुझे बहुत गालियां दी थीं। परमात्मा घट-घट व्यापी है। वह जैसे को तैसा दण्ड देता है।

वीरसेवक—गुरुजी! मां कहती थी कि संसारी जीवों को जो दुःख सुख होता है, वह कर्म के निमित्त से होता है और सुरेश कहता है कि परमात्मा दण्ड देता है। अनुग्रह करके बताइये कि दण्ड कौन देता है?।

गुरु०—मेरे प्यारे विद्यार्थियो! तुम लोग यह जानते हो कि परमात्मा राग द्वेष इच्छा और शरीर से रहित है। तुम्हें यह भी ज्ञात है कि वह कृतकृत्य और स्वाधीन है।

सुरेश—जी हां, यह बात तो आपने उस दिन बतायी थी।

गुरु०—अच्छा, तो जिसे राग द्वेष नहीं है, जिसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं है, वह दण्ड देने की भी इच्छा नहीं करेगा, न संसार की रचना करने की ही इच्छा करेगा। और जब उसकी इच्छा ही न होगी तो क्या कोई उससे जबर्दस्ती रचना करा लेगा? यदि ऐसा हुआ तो बेचारा ईश्वर, ईश्वर ही न रहेगा और वही जबर्दस्ती करने वाली शक्ति ईश्वर कहलायेगी। दूसरी बात यह है कि परमात्मा कृतकृत्य है। कृतकृत्य उसे कहते हैं जिसे कोई कार्य करना

शेष न हो। यदि संसार के कार्य ईश्वर को ही करने हों तो वह कृतकृत्य नहीं रहेगा।

शंकर—गुरुजी ! आप की बात से मैं बड़े सन्देह में पड़ गया। आपने जो कहा वह तो ठीक है पर मैंने सुना है—

हो कर दीनदयाल वह, उपजावत संसार।
तातें प्रभु-पद सेवना, है जीवन को सार॥

क्या यह मिथ्या है ?

गुरुजी—प्रिय शिष्य ! तुम्हीं इस बात का विचार करो। देखो, यदि परमात्मा दयालु होकर संसार का निर्माण करता, तो वह दीन दुखी और दुराचारी जीवों को क्यों पैदा करता ? जिसे दुखी देख कर हमारा हृदय भर आता है, उसे बनाते समय परमात्मा को दया नहीं आती तो उसे हम दयालु कैसे कह सकते हैं ? पहले तो उसने जीवों को दुराचार करने की बुद्धि दी और पीछे दण्ड देना आरंभ किया। क्या कोई न्यायी राजा ऐसा करेगा कि पहले अपनी प्रजा को जान बूझ कर चोरी और दुराचार में पड़ने दे और फिर उसे दण्ड दे कि तुमने क्यों चोरी की ? बच्चो! रागद्वेष और इच्छा से रहित परमात्मा को इन झंझटों से कोई मतलब नहीं।

सुरेश—गुरुजी ! जब परमात्मा संसार को नहीं बनाता तो कौन बनाता है ? आखिर कोई न कोई बनाता तो होगा ही; किसी के बनाये विना तो बन नहीं सकता।

गुरु०—हां सुरेश ! तुम्हारा कहना ठीक है। पर इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के पहले यह सोचो कि यह संसार है क्या

वस्तु? असल में जड़ और चेतन का समुदाय ही जगत् है। इन में चेतन को बनाने वाले की तो आवश्यकता ही नहीं है, क्योंकि चेतन कभी बनता नहीं है। वह तो अनादि और अनन्त है। रहा जड़, सो वह भी नित्य है। उसे बनाने वाले की भी आवश्यकता नहीं। देखो, कागज़ जड़ वस्तु है। जब तुम उसे जला डालते हो तब भी वह राख रूप में बना ही रहता है, उसका कभी नाश नहीं होता। केवल पर्याय (अवस्था) बदल जाती है। वह पहले कागज़ की अवस्था में था, अब राख के रूप में बदल गया। इसी प्रकार जब एक मनुष्य मर जाता है तो उसकी पर्याय बदल जाती है। आत्मा दोनों अवस्थाओं में एक ही रहती है।

सुरेश—पण्डितजी! आप कहते हैं कि अवस्थाएँ बदलती रहती हैं। तो उनको बदलने वाला भी कोई होना चाहिए।

गुरु०—हां अवश्य होना चाहिये। तुम्हीं बताओ, तुमने कागज़ को जलाकर राख के रूप में बदल दिया तो उस अवस्था का परिवर्तन करने वाला कौन हुआ?

सुरेश—मैं।

गुरु०—कुम्हार ने मिट्टी से घड़ा बनाया तो मिट्टी को घड़े के रूप में बदलने वाला कौन हुआ?

सुरेश—कुम्हार ही हुआ!

गुरु०—बस, इसी तरह कोई कुछ करता है, कोई कुछ। इसी से यह सब परिवर्तन होता है। हाँ, कुछ कार्य ऐसे भी हैं जिन्हें कोई पुरुष नहीं करता। वे सब निसर्ग से ही होते

है। जगत् में ऐसा कोई कार्य नहीं दिखलायी देता, जिसे करने के लिये परमात्मा की आवश्यकता हो। एक बात और है। यदि परमात्मा घट-घट-व्यापी अर्थात् समस्त संसार में व्याप्त है तो वह हिलडुल नहीं सकता और बिना हिले डुले कोई कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। अतः परमात्मा कुछ काम काज न कर सकेगा। अगर वह कुछ क्रिया कर सकता है तो पापियों को तुरंत पाप करने से क्यों नहीं रोक देता?

सुरेश—जी हां, यह तो समझ गया, किन्तु एक शंका नहीं मिटती। वह यह है कि यदि परमात्मा हमें सुख नहीं देता तो उस की भक्ति करने की क्या आवश्यकता है? "जेहि जासों मतलब नहीं, ताकी ताहि न चाह।"

गुरु०—तो तुम यह कहते हो कि यदि परमात्मा हमें सुख दे तो उसकी भक्ति करनी चाहिये अन्यथा नहीं। अगर ऐसा है तो कहना चाहिये कि यह तुम्हारी भक्ति नहीं, वरन् परमात्मा को फुसलाना है और अपने सुख के लिये उसकी चापलूसी करना अथवा घूस देने का प्रयत्न करना है। यह उचित नहीं है। बिना किसी इच्छा के परमात्मा की भक्ति करना ही सच्ची भक्ति है। और ऐसी निष्काम भक्ति ही सर्व श्रेष्ठ है। रही यह बात कि हमें परमात्मा की भक्ति करनी क्यों चाहिये? इस के अनेक कारण हैं। प्रथम तो हमें हेयोपादेय का जो ज्ञान होता है, वह ईश्वर से ही होता है। दूसरे वह आध्यात्मिक उत्कर्ष का आदर्श है और आदर्श के प्रति आदर होने से ही उस ओर प्रवृत्ति होती है। तीसरा कारण यह है कि जो शुद्धात्मा होते हैं उनके प्रति

चारित्रवानों की स्वाभाविक भक्ति होती है। मनोविज्ञान शास्त्र का यह नियम है कि जैसी वस्तु का विचार किया जाय या जिसकी निरन्तर कामना की जाय कालान्तर में वैसी ही मनोवृत्ति हो जाती है। इस नियम से ईश्वर का विचार और ईश्वरत्व की कामना करने से ईश्वरत्व की प्राप्ति होती है।

### कठिन शब्दों के अर्थ

राग- प्रेम। द्वेष- जलना, घृणा। निर्माण- रचना। दुराचारी- बुरे आचरण वाले। समुदाय- समूह, ढेर। निसर्ग- प्रकृति। आध्यात्मिक- आत्मा सम्बन्धी। उत्कर्ष- उन्नति, विकास, ऊँचे उठना। मनोविज्ञान- शास्त्र- वह प्रणाली जिसके द्वारा कुछ निश्चित सिद्धांतों के आधार पर मन की भिन्न भिन्न वृत्तियों और तर्कणाओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

# पाठ ५ वाँ।

## जन्म-भूमि।

(१)

जहां जन्म देता हमें है विधाता।
उसी ठौर में चित्त है मोद पाता॥
जहां हैं हमारे पिता बन्धु माता।
उसी भूमि से है हमें सत्य नाता॥

(२)

जहां की मिली वायु है जीवदानी ।
जहां का भिदा देह में अन्नपानी ॥
भरी जीभ में है जहां की सुवानी ।
वही जन्म की भूमि है भूमि-रानी ॥

(३)

लगी धूल थी देह में जो हमारी ।
कभी चित्त से हो सकेगी न न्यारी ॥
बनाती रही देह को जो निरोगी ।
किसे धूल ऐसी सुहाती न होगी ॥

(४)

पिला दूध माता हमें पालती है ।
हमारे सभी कष्ट भी टालती है ॥
उसी भांति है जन्म की भू उदारा ।
सदा सङ्कटों में सुतों का सहारा ॥

(५)

कहीं जा बसें चाहता जी यही है ।
रहे सामने जन्म की जो मही है ॥
नहीं मूर्ति प्यारी कभी भूलती है ।
छटा लोचनों में सदा झूलती है ॥

(६)

यथा इष्ट है गेह त्यों ही पुरा है ।
नहीं एक अच्छा न दूजा बुरा है ॥

पुरी प्रांत त्यों देश भी है हमारा।
सभी ठौर है जन्म-भू का पसारा॥

(७)

जिसे जन्म की भू सुहाती नहीं है।
जिसे देश की याद आती नहीं है॥
कृतघ्नी महा कौन ऐसा मिलेगा।
उसे देख जी क्या किसी का खिलेगा॥

(८)

धनी हो बड़ा या बड़ा नाम धारी।
नहीं है जिसे जन्म की भूमि प्यारी॥
वृथा नीच ने मान सम्पत्ति पाई।
बुरे के बढ़े से हुई क्या भलाई॥

(९)

जिन्हें जन्म की भूमि का मान होगा।
उन्हें भाइयों का सदा ध्यान होगा॥
दशा भाइयों की जिन्होंने न जानी।
कहेगा उन्हें कौन देशाभिमानी॥

(१०)

कई देश के हेत जी खो चुके हैं।
अनेकों धनी निर्धनी हो चुके हैं॥
कई बुद्धि ही से उसे हैं बढ़ाते।
यथा-शक्ति हैं वे ऋणों को चुकाते॥

(११)

दया-नाथ! ऐसी हमें बुद्धि दीजे।
दशा देश की देख छाती पसीजे॥
दुखों से बचाते रहें देश प्यारा।
बनावें उसे सभ्य सत्कर्म द्वारा॥

### कठिन शब्दों के अर्थ

विधाता-- कर्म। ठौर-- स्थान। जीवदानी-- जीवन देने वाली। भिदा-- अच्छी तरह मिला हुआ। सुबानी-- मीठी बोली। भूमि-रानी-- सब भूमियों की रानी। न्यारी-अलग। निरोगी-- शुद्ध शब्द नीरोग है, विना रोग के, रोग हीन। उदारा-- दयामयी। सुत- पुत्र। मही- भूमि। इष्ट- प्रिय। गेह-- घर। पुरा- महल्ला, गाँव। दूजा--दूसरा। पसार-- प्रसार, फैलाव, विस्तार। भाती--अच्छी लगती। कृतघ्नी-- (कृतघ्न) किये हुए को न मानने वाला, उपकार का बुरा बदला देने वाला, एहसान फरामोश।

# पाठ ६ ठा।

## निबन्ध लिखने की रीति।

हम किसी विषय का पूर्ण ज्ञान सम्पादन करलें और उससे परोपकार करना चाहें तो हमारे लिये दो ही मार्ग हैं। या तो उसे वचन द्वारा व्यक्त करें या लेख द्वारा। वचन या वक्तृत्व द्वारा जो विचार व्यक्त किये जाते हैं, उनसे सार्वकालिक, सार्वदेशिक और सार्वजनिक लाभ नहीं उठाया जा सकता। परन्तु यदि उन्हीं

विचारों को लिख दिया जाय तो उनसे सब लोग सब समय लाभ उठा सकते हैं। तात्पर्य यह कि वक्तृत्व का प्रभाव संकुचित और अस्थायी होता है परन्तु निबंध इत्यादि का विस्तृत और चिरस्थायी। इस दृष्टि से वक्तृत्व की अपेक्षा लेखन का माहात्म्य ही अधिक है। भलीभांति विचार किया जाय तो सहज ही ज्ञात हो जायगा कि लेखन के विना जगत् का काम चलना कठिन ही नहीं वरन् असंभव है। यदि प्राचीन ऋषिमहर्षियों ने अपना प्रतिभा--प्रसूत साहित्योद्यान भांति-भांति के सरस और अर्थ-गौरव-सौरभ--संयुक्त ग्रंथ--कुसुमों से सम्पन्न न किया होता तो आधुनिक विद्वान--मधुकर किस का रसास्वादन करके प्रफुल्लित होते? यह लेखनप्रणाली का ही पुण्य-प्रताप समझना चाहिए कि उसका अनुसरण करके आज कल के अनेक लेखकों ने अथाह शास्त्र--समुद्र से अमूल्य तत्त्वरत्नों को निकाल कर जगत् में ज्ञान का प्रकाश फैलाया है। परन्तु जैसे वक्तृत्व की अपेक्षा लेखन का माहात्म्य अधिक है, वैसे ही उस में कठिनाई और उत्तरदायित्व भी अधिक है। किसी बात को कह देना सहज है पर लिख देना कठिन। कही हुई बात में परिवर्तन हो सकता है परन्तु लिख देने पर हाथ बंध जाता है। यदि लिखने में शब्द अर्थ या प्रसंग सम्बन्धी कोई भूल रह जाय तो हास्यास्पद भी होना पड़ता है। अतएव जब हम लिखने बैठें तो पहले ही यह विचार कर लें कि हमें किन किन बातों पर प्रकाश डालना है? जिस विषय पर हम निबंध लिखना चाहते हैं, उस विषय पर किस किस ग्रंथ में क्या क्या पढ़ा है? इन सब बातों का विचार करने से जो कल्पनाएं उठें, उन्हें एक कागज़ पर लिखते जायँ और उस विषय के विभाग करके उनमें उन्हें यथायोग्य स्थान दें। हृदय

में जिन नवीन कल्पनाओं का जन्म हो, उन्हें भी उसी प्रकार भिन्न भिन्न विभागों में विभक्त करदें। यदि विषय का विभाग न किया जायगा तो गड़बड़ पड़ जायगी और एक जगह की बात दूसरी जगह लिख जायगी। मान लो कि भगवान् महावीर के जीवन पर हमें एक निबन्ध लिखना है तो हमें इस प्रकार विषय-विभाग करना चाहिए—

१—जन्म के पूर्व देश काल और समाज की अवस्था।

२—भगवान् का जन्म और बाल्यकाल।

३—यौवनकाल, गौतिदक्षता और दीक्षा।

४—तपश्चरण।

५—केवलज्ञान की प्राप्ति और धर्मोपदेश।

६—निर्वाण।

एक बात और भी ध्यान रखने योग्य है। विषयविभाग करके लिखते समय यदि एक भाग को उचित से अधिक लम्बा कर दिया जाय और दूसरे को बिल्कुल छोटा, तो वह ऐसा भद्दा मालूम होगा जैसे किसी मनुष्य के पैर बहुत छोटे हों, गर्दन डेढ़ हाथ की हो और नाक दूर तक आगे निकली हो! बँगला के स्वर्गीय यशस्वी उपन्यासकार बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने नवीन लेखकों को लिखने के कतिपय नियम बताये हैं। उनमें जो विशेष उपयोगी हैं, यहां लिखे जाते हैं—

(१) यश के लिये न लिखो। यदि यश के लिये लिखोगे तो यश भी न मिलेगा और तुम्हारी रचना भी अच्छी न होगी। रचना अच्छी होने पर यश आप ही प्राप्त होगा।

(२) रुपये के लिये न लिखो, यूरोप में इस समय अनेक ऐसे लेखक हैं जो रुपये के लिये लिखते हैं, उन्हें रुपये मिलते भी हैं

किन्तु हमारे देश में अभी वह दिन नहीं आया । रुपये के लिये लिखने से लोकरञ्जन की प्रवृत्ति प्रबल हो उठती है । और हमारे देश के वर्तमान साधारण पाठकों की रुचि एवं शिक्षा पर ध्यान देकर लोकरञ्जन की ओर झुकने से रचना के विकृत और अनिष्टकर हो उठने की पूर्ण सम्भावना है ।

(३) यदि तुम अपने मन में यह समझो कि लिखकर देश या मनुष्य जाति की कुछ भलाई कर सकोगे अथवा किसी सौन्दर्य की सृष्टि कर सकोगे तो अवश्य लिखो । जो लोग अन्य उद्देश्य से लिखते हैं, वे न तो लेखक का दायित्व समझते हैं और न इस उच्च पदवी को ही पा सकते हैं ।

(४) जो असत्य और धर्म-विरुद्ध है, जिस का उद्देश्य परायी निन्दा, पर-पीड़ा अथवा स्वार्थ-साधन है वह लेख कभी हितकर नहीं हो सकता । ऐसे लेख सर्वथा त्याज्य हैं । सत्य और धर्म ही साहित्य का लक्ष्य है और किसी उद्देश्य से कलम उठाना महापाप है ।

(५) जो लिखो उसे वैसे ही प्रकाशित न कर दो । कुछ दिनों तक उसे यों ही पड़ा रहने दो, इस के बाद उसका संशोधन करो अथवा किसी विद्वान् मित्र से कराओ । संशोधन करते समय तुम्हें देख पड़ेगा कि तुम्हारे लेख में अनेक दोष हैं । काव्य, नाटक, उपन्यास आदि लिखकर दो एक वर्ष रख छोड़ने के बाद संशोधन करने से वे पहले की अपेक्षा अधिक अच्छे हो जाते हैं किन्तु जो लोग सामयिक साहित्य की सेवा करते हैं उनके लिये यह नियम नहीं है। इसी कारण लेखक के लिये सामयिक साहित्य अवनति का कारण हुआ करता है ।

(६) जिस विषय में जिस की गति नहीं है उस विषय में उसे हाथ न डालना चाहिए। यह एक सीधी बात है। पर सामयिक साहित्य में इस नियम की रक्षा नहीं होती।

(७) अपनी विद्या या विद्वत्ता दिखाने की चेष्टा मत करो। यदि विद्या होती है तो वह लेख में आप ही प्रकट हो जाती है, चेष्टा नहीं करनी पड़ती। आज कल के लेखों में अंगरेजी, संस्कृत आदि भाषाओं के उद्धरण एवं प्रमाण बहुत दिखायी पड़ते हैं। जो भाषा अपने को नहीं मालूम; उस भाषा के किसी वाक्य या अंश को अन्य ग्रन्थों की सहायता से कभी न उद्धृत करो।

(८) सब अलंकारों में श्रेष्ठ अलंकार सरलता है। जो सरल शब्दों में सहज रीति से पाठकों को अपने मन के भाव समझा सकते हैं, वे ही श्रेष्ठ लेखक हैं क्योंकि लिखने का उद्देश्य ही पाठकों को समझाना है।

(९) जिस बात का प्रमाण न दे सको, उसे मत लिखो। प्रमाणों के प्रयोग की यद्यपि सब समय आवश्यकता नहीं होती तथापि प्रमाणों का ज्ञान रखना आवश्यक है।

लिखते समय इन बातों का ध्यान रख कर लिखने से साहित्य की अच्छी सेवा की जा सकती है।

## कठिन शब्दों के अर्थ।

निबन्ध--लेख, सुन्दर सङ्गठित रूप में लिखी हुई रचना। सम्पादन--उत्पन्न। व्यक्त-- प्रगट। वक्तृत्व-- बोलना, भाषण। सार्वकालिक-- जो सब समय रह सके वा काम दे सके। चिरस्थायी--बहुत काल तक टिका रहने वाला। प्रसूत--उत्पन्न। साहित्योद्यान-- साहित्य रूपी वाटिका। अर्थगौरव--सौरभ-

संयुक्त-- अर्थ की गंभीरता रूपी सुगंध से पूर्ण। ग्रंथ कुसुमों-- ग्रंथ रूपी फूलों। आधुनिक-- इस समय के। विद्वान-मधुकर-- विद्वान रूपी भौंरे। रसास्वादन-- रसपान। सामयिक साहित्य-- उसी समय से सम्बन्ध रखने वाली रचनाएँ जैसे समाचारपत्रादि। हास्यास्पद-- उपहासयोग्य। त्याज्य-- छोड़ देने योग्य। उद्धरण-- एक पुस्तक का वाक्य दूसरी जगह प्रमाण के लिये रखना।

# पाठ ७ वाँ।

## चूहेदानी

लड़कों ने चूहेदानी अवश्य देखी होगी। इसकी शक्ल पिंजड़े की तरह होती है। इसके अन्दर जाने का एक दरवाज़ा होता है और अन्दर रोटी का टुकड़ा छत से लटका रहता है। चूहा अपने बिल से निकला, उसको रोटी की सुगंध मालूम हुई और वह पिंजड़े के अन्दर गया। रोटी को मुँह लगाया और पिंजड़े का खटका गिरा, बस दरवाज़ा बंद हुआ और वह उसमें कैद हो गया। अब जिस रोटी के लोभ से वह अन्दर गया था, वही उसको बुरी लगती है और वह बाहर आने के लिए तड़पता है। इसी प्रकार संसार में बालकों के लिए भी अनेक फन्दे पड़े हुए हैं जिन में अनजाने वे फँस जाते हैं और अन्त में उनसे निकलना उनके लिए कठिन हो जाता है। बाग की सैर करने गये, किसी मित्र ने कहा-"लो एक सिगरेट पिओ।" अस्वीकार करने पर कहा-"अजी तुम भी कैसे बेवकूफ हो, इसमें न जाने कौन धर्म रखा है। एक ही फूँक सही, देखो कितना मज़ा है-यहां कोई देखता थोड़े ही है"

बस आगये कहने में। धीरे धीरे सिगरेट पीने की आदत पड़ गई। अब पैसे कहां से आवें? झूठ बोल कर किताब कापी, खाने पीने या किसी बहाने से माता आदि से पैसे लिए। दो चार दिन इस तरह चला। धीरे धीरे चोरी की आदत पड़ी। बस अब पिंजड़े में फँस गये। निकलना चाहते हैं, निकल नहीं सकते। इसी तरह चूरन खाने की चाट, थियेटर देखने की लत, आपस में गाली बकने की बान, व्यभिचार और बुरे कामों की ओर रुचि, यह सब इस चूहेदानी में फँस जाने के फल हैं।

मछली पकड़ने वाला एक लम्बी लकड़ी लेता है, उसमें रस्सी बांध देता है, रस्सी के किनारे लोहे की आंकड़ी में आटा लगाता है और फिर उसे पानी में डुबा देता है। मछली पानी में देखती है, आटे के पास आती है, छूते ही डोरी देखकर पीछे हट जाती है किन्तु लालच वश फिर आती है, दो तीन बार ऐसा ही करती है, तब आटा खाने के लिये मुंह खोलती है और लोहे की आंकड़ी में फँस जाती है। इसी प्रकार संसार की बुरी आदतें हैं। पहले लोग डरते डरते आरंभ करते हैं—"कहीं बाबूजी न देखलें, कहीं मां न देखले, कहीं मास्टर साहब न देखलें।" धीरे धीरे आदत पड़ जाती है और फिर निर्लज्ज होकर प्रकाश्य रूप में पाप करने लगता है। बालकों को चाहिये कि सर्वदा साव-धान रहें। बुरे मित्रों से बचें। यह याद रखें कि चारों तरफ पिंजड़े हैं और उनसे बचने का सदा यत्न करते रहें।

# पाठ ८ वाँ।

## अमृत-वाणी

(१)

बदला लेने से मनुष्य अपने शत्रु के तुल्य हो जाता है, परन्तु बदला न लेकर उसके अपराध को क्षमा करने से वह उसकी अपेक्षा श्रेष्ठ गिना जाता है क्योंकि क्षमा करना बड़ों का काम है।

(२)

बदला लेने के समय मनुष्य मृत्यु को कुछ नहीं समझता; वासना में उन्मत्त होने से मृत्यु का तिरस्कार करता है, अकीर्ति से बचने लिये मृत्यु को मन से चाहता है, दुःख में मृत्यु को घर बैठे बुलाता है, भय के मारे भीरु मनुष्य अपने आप को मृत्यु के हवाले कर देता है तो फिर समाज और धर्म के लिये आत्मोत्सर्ग करना क्या बड़ी बात है?।

(३)

कीर्ति सम्पादन करना बुरा नहीं है परन्तु केवल कीर्ति के लिये कोई कार्य करना बुरा है। कर्त्तव्यनिष्ठा ही कीर्ति उपार्जन करने का सर्वोत्तम साधन है। जो लोग कर्त्तव्यपालन किये विना ही कीर्ति पाने की कामना करते हैं वे कागज़ के फूलों में सुगंध खोजने वालों के समान हैं।

(४)

जो अपना उत्कर्ष नहीं कर सकते, वे ही दूसरों का उत्कर्ष देख कर डाह करते हैं। जो स्वयं उन्नति कर सकते हैं वे दूसरों की उन्नति देखकर ईर्ष्या नहीं करते वरन् प्रसन्न होते हैं।

(५)

पुरानी प्रथाएँ परिचय की अधिकता से प्रिय जान पड़ती हैं और नवीन सुप्रथाएँ अप्रिय। परन्तु जो प्रिय है वह सदैव हितकर ही नहीं होता। इसलिये किसी नयी प्रथा को विना विचारे अस्वीकार न कर देना चाहिए। समय बदलता है, जीवन बदलता है, जगत बदलता जाता है फिर पुरानी कुप्रथाओं को सदा एकसा बनाये रखना क्या उचित है?

(६)

साधारण व्यक्ति परिवर्तन से ऐसे डरते हैं जैसे रोगी डाक्टर के नश्तर से। वे बेचारे यह नहीं जानते कि यह नश्तर ही उनके भावी सुखमय जीवन का आधार होगा। बुद्धिमान् मनुष्य परिवर्तन को अपनी बुद्धि की कसौटी पर कस कर प्रेम पूर्वक अपना लेते हैं।

(७)

हम किसे नया और किसे पुराना कहें? समय अस्थिर है, जो आज पुराना है वह कभी नया भी रहा होगा और जो नया है वह भी कभी पुराना हो जायगा। ऐसी अनवस्थित अर्वाचीनता और प्राचीनता को कौन बुद्धिमान् हेय और उपादेय की कसौटी बनाएगा?।

(८)

किसी बात को जान लेने से ही हमारे कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती, जीवन में उसका व्यवहार करने की ओर प्रवृत्ति भी

होनी चाहिए। रोग जान लेने से ही रोगी नीरोग नहीं हो सकता, औषध सेवन की भी आवश्यकता है। इसी लिये प्रभु ने कहा है— "ज्ञान-क्रियाभ्याम् मोक्षः" (अर्थात् ज्ञान और तदनुकूल चारित्र से मुक्ति मिलती है)।

(९)

जीवनकाल परिमित है। उसे सफल बनाने के लिये बहुत समय और परिश्रम की आवश्यकता है। शीघ्रता करो, फिर पछ-तावा न रह जाय।

(१०)

जब से तुम जन्मे हो तभी से तुम्हारा जीवन प्रतिक्षण कम होता जाता है। तुम्हें मालूम है? तो मन लगाकर कर्त्तव्यपालन में लग जाओ।

## कठिन शब्दों के अर्थ

उन्मत्त— पागल। तिरस्कार— उपेक्षा, घृणाप्रकाश। उत्कर्ष— बढ़ती, उन्नति। नश्तर— फोड़े इत्यादि का दूषित रक्त एवं सड़ा गला मांस निकालने के लिये अस्त्र से उसे चीरना। अर्वाचीनता— नवीनता। हेय— त्याग करने योग्य। उपादेय— लाभ कारी, ग्रहण करने योग्य। इतिश्री— अन्त, समाप्ति। अनवस्थित—अनिश्चित।

# पाठ ९ वाँ।

## हिलती हुई दीवार

पंजाब में गुरुदासपुर नामक एक स्थान है। यहां वैरागियों का गुरुद्वारा है। वहां महन्त दीपचन्दजी के पुत्र महन्त नारायणदासजी बड़े करामाती हुए हैं। उनकी करामातों का विकास बचपन से ही हो चला था। दस बर्ष की अवस्था में तो आपने ऐसी बड़ी करामात दिखायी कि जिसका चमत्कार आजतक भी सबके देखने में आता है।

इस महात्मा के पिता महन्त दीपचन्दजी एक मजबूत महल बनवा रहे थे, जिस के कारीगरों ने अत्यन्त सावधानी और परिश्रम से एक सुदृढ़ दीवार उठायी थी और जिसका उनको बड़ा घमण्ड था। एक दिन नारायणदासजी खेलते खेलते उधर जा निकले तो कारीगरों ने कहा—"बाबाजी, हमने ऐसी पक्की दीवार बनायी है कि यदि हाथी भी टक्कर मारे तो न हिले।"

ये छोटे बाबाजी तो बड़े खिलाड़ी थे और खेलते खेलते कोई अद्भुत करामात दिखादेना इनके बायें हाथ का खेल था। कारीगरों की यह बात सुनकर वहां गये और उस पक्की दीवार पर अपना पांव रखकर हिलाया तो वह भी हिलने लगी। इसके पश्चात् भोलेपन के साथ कारीगरों की ओर मुँह करके कहा कि देखो यह तो हिलती है, कहीं हम गिर न पड़ें। कारीगर तथा और लोग इस चमत्कार को देखकर चकित रह गये। महंत दीपचंदजी ने कारीगरों से कहा कि इसको ऐसी ही रहने दो, इस पर छत

मत डालो अन्यथा वह भी हिलने लगेगी और लोग यहां आने में भी डरेंगे।

यह दीवार अब तक वैसी ही हिलती है और इसी से उसे 'झूलना महंत' कहते हैं। बड़े बड़े देशी कारीगर और विलायती इंजीनियर उसको हिला हिलाकर देखते हैं और हैरान होते हैं। किसी की समझ में नहीं आता कि क्या भेद है और क्यों चूने पत्थर की बनी हुई बड़ी संगीन दीवार २०० वर्ष से हिलती है। यह ९ स्तंभों पर खड़ी है जिसमें ९ दर्वाजे हैं। पंजाब भर में यह बात महन्त नारायणदासजी की बालक्रीड़ा ही मानी जाती है।

# पाठ १० वाँ।

## कर्म और पुरुषार्थ की व्याख्या

एक भिखारी ने वीरसेवक के द्वार पर आवाज़ देकर कहा-"है कोई माई का लाल, करेगा साधु का सवाल पूरा।" भिखारी की बात सुनते ही वीरसेवक बाल-सुलभ उत्सुकता से द्वार की ओर गया तो देखता क्या है कि मलिन वेश में एक नवयुवक खड़ा है। शरीर पर पूरे वस्त्र नहीं हैं। भिखारी ने वीरसेवक की ओर आशापूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—"बाबा! चुटकी भर आटा मिले तो चोला प्रसन्न हो जाय। बहुत भूखा हूँ।"

वीर०—तुम तो बलिष्ठ मालूम होते हो, फिर इस प्रकार ठोकरें क्यों खाते फिरते हो। कुछ काम करो।

भिखारी—बाबू ! काम क्या करू, कुछ जानता नहीं, अक्षर से भेंट नहीं। माता पिता कोई रहा नहीं, दीन बालक हूँ। चुटकी भर आटा मिल जाय।

वीर०—मैं तुझ से छोटा हूँ और चौथी कक्षा में पढ़ता हूँ। तू ने बिलकुल नहीं पढ़ा। एक दिन गुरुजी कहते थे—

बड़ा पशू सोई अहै, विद्या नहिं जेहि पास।

भिखारी—परम दीन जन सम सदा, रहे परायी आस॥

वीरसेवक ने विस्मित होकर पूछा—"अरे! तू कहता है मेरे लिये काला अक्षर भैंस बराबर है। फिर तुझे यह दोहा कैसे याद है?"

भिखा०—बाबू !, बचपन में बहुत यत्न किया, गुरुजी की सेवा की पर मेरे भाग्य में विद्या न लिखी थी, न आई न आई। गुरुजी ने भी अनुग्रह करके मुझे पढ़ाने में बहुत परिश्रम किया, पर मैं पढ़ न पाया। गुरुजी जब समझाते तो यही दोहा कहते। इसीसे मुझे यह याद रह गया।

वीर०—तूने परिश्रम किया, तेरे गुरुने भी परिश्रम किया, फिर भी तू न पढ़ सका, यह कदापि नहीं हो सकता। आखिर मैं भी तो आदमी हूँ, मैं कैसे पढ़ता हूँ, मेरे सब साथी कैसे पढ़ते हैं? हम लोग देवता तो नहीं हैं? बहाने करके अपना मतलब गांठना चाहता है। चल हट यहां से।

वीरसेवक की माता ने उसे भिखारी का तिरस्कार करते देखकर भिखारी को सान्त्वना और कुछ अन्न देकर विदा किया। फिर वह वीरसेवक को समझाने लगी—"बेटा! गृहागत अतिथि का कभी अनादर न करना चाहिए। एक दुखी जीव आशा के

प्रकाश से तुम्हारे द्वार पर आवे और तुम उसे नैराश्य के अंधकूप में ढकेल दो तो उसे उतना ही दुःख होता है जितना किसी की छाती में छुरा भोंक देने से। कोई विधवा स्त्री अपने इकलौते बेटे से मिलने जाती हो और वह वहां पहुंचकर सुने कि उसका देहावसान हो गया है तो उसे जैसी मार्मिक वेदना होती है, वैसी ही वेदना नकार भरे तिरस्कार से भिखारी को होती है। अतः उसे निराश न करो। कहा भी है—

सब से पहले वे मुये, जो कहुं मांगन जाहिं।
उनते पहले वे मुये, जिन मुख निकसत नाहिं॥

हां, तुम यह कैसे कह सकते हो कि वह झूठ बोलता था।

वीर०—वह कहता था कि मेरे गुरु ने बड़ा परिश्रम किया, मैं ने बहुत माथापच्ची की पर पढ़ न सका। यह कैसे सच हो सकता है? मैंने पढ़ा है कि जो परिश्रम करता है, सफलता उसकी दासी हो जाती है। परिश्रमी को कोई कार्य असाध्य नहीं होता। मां! उसने परिश्रम किया होता तो अवश्य पढ़ लिख जाता।

माता—बेटा! तू ने जो पढ़ा है वह सत्य है, परन्तु तुझे उसका रहस्य ज्ञात नहीं हुआ। बात यह है कि छोटे से छोटे और बड़े से बड़े कार्य के सम्पादन के लिये परिश्रम की आवश्यकता है, परन्तु केवल परिश्रम से ही कार्य में सफलता नहीं मिलती। जैसे देखने के लिये नेत्र की अनिवार्य आवश्यकता है, उसके विना कोई कुछ नहीं देख सकता, किन्तु नेत्र होने पर भी अचेतन शरीर नहीं देख सकता।

वीर०—मुर्दा शरीर में देखने की शक्ति नहीं रहती।

माता—हां, जैसे नेत्र देखते हैं पर उनके लिये किसी दूसरी शक्ति की भी आवश्यकता होती है। वैसे ही सफलता परिश्रम करने से मिलती है, परन्तु किसी दूसरी शक्ति की भी जरूरत होती है। वह शक्ति 'कर्म' है जिसे लोग भाग्य कहा करते हैं। जब 'कर्म' परिश्रम के अनुकूल होता है तभी हमें सफलता प्राप्त होती है। देखो ज्ञानपाल और मोहनलाल दोनों साथ साथ पढ़ते थे। उनमें मोहनलाल परीक्षा के समय अस्वस्थ हो गया। यह कर्म का माहात्म्य है अन्यथा वह भी उत्तीर्ण हो जाता। उसने क्या कम श्रम किया था?

वीर०—मां! तुम कहती हो कर्म को भाग्य कहते हैं पर मैंने पढ़ा है कि 'कर्म' कार्य या काम को कहते हैं।

माता—बेटा! एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। जैन धर्म और साहित्य में 'कर्म' शब्द का उपयोग प्रायः भाग्य के अर्थ में होता है। बताओ, लाल शब्द का क्या अर्थ है?

वीर०—एक तरह का रंग होता है।

माता—और कुछ तो नहीं होता? "उठो लाल, आंखों को खोलो" यहां लाल का क्या अर्थ है?

वीर०—प्यारा पुत्र।

माता—तो लाल शब्द के दो अर्थ हुए। इसी तरह कर्म शब्द के भी अनेक अर्थ हैं। उनमें से एक भाग्य भी है। संभव है भिखारी ने विद्याध्ययन में परिश्रम किया हो पर कर्म

की प्रतिकूलता से उसे निष्फल होना पड़ा हो क्योंकि विद्या पढ़ने में भी कर्मों का क्षयोपशम + अपेक्षित है। जैन शास्त्रों में कर्म के आठ भेद बताये गये हैं। उनमें एक ज्ञानावरण कर्म है। वह ज्ञान को रोकता है। ज्यों ज्यों इस का क्षयोपशम होता है, त्यों त्यों ज्ञान का विकास होता जाता है। इसीसे कोई कोई छात्र थोड़े परिश्रम से ही अधिक विद्या सम्पादन कर लेते हैं और कोई कोई बहुत परिश्रम करने पर भी मूर्ख बने रहते हैं। धनोपार्जन में भी कर्म का नियम लागू होता है। कितने लोग धनार्जन के लिए रात दिन नहीं गिनते। फिर भी दरिद्रता उनका पीछा नहीं छोड़ती। स्वामी और सेवक में से सेवक ही अधिक परिश्रम करता है और वही गरीब भी होता है। इसका कारण कर्म है।

वीर०—अच्छा मां, जब केवल परिश्रम करने से ही सफलता नहीं मिलती तो परिश्रम करना व्यर्थ है। क्योंकि मैंने किसी कार्य की पूर्ति का उद्योग किया और यदि कर्म अनुकूल न हुआ तो सारी मिहनत मिट्टी में मिल गयी।

माता—नहीं बेटा, यह बात नहीं है। जैसे गाड़ी का पहिया घूमता रहता है, वह एकसा-स्थिर नहीं रहता वैसे ही कर्म भी प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। यदि तुम सदा परिश्रम

+ प्रत्येक कर्म की दो प्रकार की प्रकृतियां होती हैं। (१) सर्वघाती प्रकृतियां और (२) देशघाती प्रकृतियां। जब सर्वघाती प्रकृतियां विना फल दिये ही क्षय हो जाती हैं, आगे उदय में आने वाली प्रकृतियां शान्त रहती हैं और देशघाती प्रकृतियों का उदय रहता है तो उस अवस्था को क्षयोपशम कहते हैं।

करते रहोगे तो कर्म की अनुकूल अवस्था आते ही कार्य सिद्ध हो जायगा। यदि तुम भाग्य के भरोसे निठल्ले ही बैठे रहोगे और हाथ पैर न हिलाओगे तो सफलता नहीं मिल सकती। संभव है किसी समय कर्म की अवस्था कार्य-सिद्धि के अनुकूल हो पर तुम्हारे निष्क्रिय बैठ रहने से वह अनुकूल अवस्था भी यों ही निकल जाय। तो तुम हाथ मलते रह जाओगे। तुम यह नहीं जान सकते कि किस समय कर्म की अनुकूल अवस्था होगी? इस लिये कार्य सिद्ध होने तक बराबर उद्योग करते जाना चाहिए। एक बार की असफलता से हताश न होकर बराबर प्रयत्न करने वाले की सफलता चेरी हो जाती है। समझे?

वीर०—हां, मां! समझ गया कि सफलता प्रयत्न से मिलती है किन्तु उसके लिये कर्म की अनुकूलता होनी चाहिये। अतएव अपने कार्य की सिद्धि के लिये सदैव यत्न करते रहना चाहिये। हां, एक बात पूछने को रह गयी। तुमने कहा था कि कर्म आठ प्रकार के होते हैं। वे कौन कौन हैं?

माता—बेटा! कर्म के निम्नलिखित आठ भेद हैं—

(१) ज्ञानावरण—जो आत्मा के ज्ञान को ढके।

(२) दर्शनावरण—जिस के कारण आत्मा का दर्शन गुण छिप जाय।

(३) वेदनीय—जो सांसारिक सुख दुःख का भोग करावे।

(४) मोहनीय—जो आत्मा के चारित्र और सम्यक्त्व को बिगाड़े।

(५) आयु—जो किसी शरीर में आत्मा को रोक रक्खे।

(६) नाम—जो शरीर की अच्छी बुरी रचना करे।

(७) गोत्र—जिससे उच्च नीच कुल का भेद भाव उत्पन्न हो।

(८) अन्तराय—जो लाभ, भोग, उपभोग, दान और आत्मा के बल में विघ्न उपस्थित करे।

### कठिन शब्दों के अर्थ।

विस्मित-- आश्चर्य से पूर्ण। काला अक्षर भैंस बराबर- अक्षर का ज्ञान न होना। गृहागत- घर आया हुआ। अतिथि-मेहमान। देहावसान- मृत्यु। असाध्य- जो पूरा न हो सके।

# पाठ ११ वाँ

## सुख का पथ

(यूनान के प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानी महात्मा एपिक्टेटस के उपदेश)

१—"मेरी जो इच्छा है वही हो" इस प्रकार आकांक्षा न करके यदि तुम ऐसा विचार करो कि "चाहे जिस प्रकार की घटना हो, मैं उसे प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करूँगा" तो तुम सुखी होगे।

२—रोग शरीर की ही बाधा है, वह आत्मा की बाधा नहीं है। यदि उसमें आत्मा की सम्मति हो तभी वह आत्मा की बाधा

होती है। लंगड़ापन पांव की ही बाधा है, आत्मा की नहीं। जो कुछ भी क्यों न हो, तुम सब अवस्थाओं में ही कह सकते हो कि यह बाधा मेरी नहीं, किसी दूसरे की बाधा है।

३—तब कौन तुम्हारा उत्पीड़न करता है—कौन तुम्हें कष्ट देता है? तुम्हारी अज्ञानता ही तुम्हारा उत्पीड़न करती है—तुम्हें कष्ट देती है। जब हम लोग बन्धु-बांधव से, सुख-सम्पद् से अलग होते हैं तब अपनी अज्ञानता ही हम लोगों का उत्पीड़न करती है। दाई (धात्री) जब थोड़ी देर के लिये बच्चे के पास से चली जाती है, तब बच्चा रोने लगता है किन्तु फिर ज्यों ही उसे थोड़ी मिठाई दी जाती है त्यों ही वह उसका दुःख भूल जाता है। तुम भी क्या उसी बच्चे की तरह होना चाहते हो?

हम जिस में थोड़ी सी मिठाई पर भूल न जायँ हम जिस में यथार्थ ज्ञान द्वारा विशुद्ध भाव द्वारा परिचालित हों, इसका ध्यान रखना चाहिये। वह यथार्थ ज्ञान क्या है?

मनुष्य को यह समझना चाहिये। क्या बंधु—बांधव, क्या पद मर्यादा, यह सब कुछ भी अपना नहीं है—सभी दूसरे की चीजें हैं। अपना शरीर भी अपना नहीं समझना। धर्म के नियम को सदा समझ कर अपनी आंखों के सामने रखना। वह धर्म का नियम क्या है? वह यही है कि जो कुछ वास्तव में अपना है, उसे ही चिपटकर धरना; दूसरे की चीज़ पर दावा न करना। जो तुम्हें दिया गया है, उसीका व्यवहार करना; जो तुम्हें नहीं दिया गया है, उसका लोभ न करना। जो तुमसे वापस ले लिया जाय, उसे तुम इच्छापूर्वक सहज में ही छोड़ देना और जितने

दिनों उसका भोग कर सके हो, उसके लिये देने वाले को (धर्म) को धन्यवाद देना—धन्य समझना।

तुम्हारे लिये जो वास्तव में अमंगलजनक है, उसी को अपने मन से दूर कर दो। दुःख, भय, लोभ, ईर्ष्या, मात्सर्य, विलासिता, भोगाभिलाष, इन सब को मन से दूर करो—किन्तु जब तक तुम ईश्वर के प्रति दृष्टि नहीं रक्खोगे—उनकी आज्ञानुसार न चलोगे—उनके चरणों में अपने जीवन का उत्सर्ग करके उनके आदेश का पालन नहीं करोगे तब तक यह सब कुप्रवृत्तियां तुम्हारे मन से किसी प्रकार भी दूर नहीं होंगी। इस पथ को छोड़ यदि तुम दूसरे पथ पर चलोगे तो तुम से अधिक प्रबल शक्ति आकर तुम्हें पराजित कर देगी; चिरकाल तक तुम बाहर ही बाहर सुख—सौभाग्य की खोज करते रहोगे, किन्तु कभी उसे पाओगे नहीं। कारण, तुम उसी जगह उसकी खोज करते हो, जहां उसके मिलने की कोई संभावना नहीं और उस जगह खोज करने में विलम्ब करते हो जहां वह वास्तव में है।

### कठिन शब्दों के अर्थ

आकांक्षा- अभिलाषा, किसी वस्तु को पाने की इच्छा। बाधा- दुःख, विपत्ति, कठिनाई। उत्पीड़न- दुःख देना, चोट पहुँचाना। मात्सर्य- ईर्ष्या, डाह। उत्सर्ग- बलिदान, त्याग, समर्पण। परिचालित- संचालित, प्रवृत्त।

# पाठ १२ वाँ

## वीर बालक

किसी जाति * की रक्षा तभी हो सकती है जब उसकी संतान जाति के हित को सर्वोपरि समझे। जाति का बच्चा बच्चा जब तक अपने जीवन को जाति के हितार्थ भेंट करने को तैयार नहीं होता तब तक जाति रूपी वृक्ष की जड़ें कभी दृढ़ नहीं हो सकतीं। मनुष्यों का समुदाय जब किसी देश विशेष में सम उद्देश्य रखते हुए जीवन निर्वाह करता है तभी उसको जाति कहते हैं। यह स्पष्ट है कि यदि उस समुदाय में से एक पुरुष भी जाति की हानि करना चाहे तो सरलता से कर सकता है। यही कारण है कि शिक्षा में देश सेवा से बढ़ कर और किसी बात का महत्व नहीं, भारतवर्ष के इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण मौजूद हैं, जहां देशसेवा सम्बन्धी धर्म की अनभिज्ञता के कारण भारतपुत्रों ने अपनी ही जाति के प्रति विश्वासघात किया जिस का फल हम आज तक भोग रहे हैं। यद्यपि विश्वासघाती जयचंद श्रुतियों और स्मृतियों के उपदेशों से परिचित था और उसके यहां वेदशास्त्रवेत्ता ब्राह्मण मौजूद थे फिर भी सब धर्मों से श्रेष्ठ देशसेवा-धर्म से उसका ज़रा भी परिचय न था। उसकी भूल ने जहां उसका राज्य नष्ट किया वहां उन ब्राह्मणों तथा देवताओं को भी मिट्टी में मिला दिया। न केवल इतना ही वरन् आने वाली भारत संतान के लिये उन्नति का दरवाज़ा भी बंद कर दिया।

* इस लेख में जाति शब्द राष्ट्र के अर्थ में आया है।

अहा! देशसेवा की महिमा बड़ी महान है । यही लौकिक एवं पारलौकिक धर्मों का केन्द्र है। जिस जाति ने अपने बच्चों को सब से पहले देशसेवा की शिक्षा नहीं दी, वह मिट गयी । आज छोटीसी अंगरेज जाति इस देश पर शासन कर रही है इसका क्या कारण है? यह इसी लिये कि उसका बच्चा बच्चा अपने देश के लिये सर्वस्व निछावर करने को तैयार है । बच्चो! आज हम तुम्हें यूरप के हालैण्ड देश के एक ऐसे ही वीर और देशभक्त बालक की कथा सुनाते हैं।

हालैण्ड जर्मनी के पश्चिम ओर समुद्र के किनारे का एक छोटा देश है। यहां के निवासी डच कहलाते हैं। पहले पहल इन्हीं लोगों ने भारत के साथ व्यापार आरंभ किया था। यदि कोई उनके देश में जाये तो वहां उसे अनेक अद्भुत चीजें देखने को मिलेंगी। वहां के निवासिओं में से अधिकांश लकड़ी के जूते पहनते हैं और छोटी लड़कियां अजीब किस्म की टोपियां सर पर लगाती हैं।

परन्तु सब से विचित्र हालैण्ड के बंदरगाह + हैं । इनको समुद्री दीवारें भी कह सकते हैं। हालैण्ड हमारे कच्छ ÷ की तरह समुद्र से नीचे की भूमि में स्थित है। इसके तट पर दीवारें बनी हुई हैं। ये दीवारें समुद्र देवता की क्रुद्ध तरंगों को पीछे हटाने के लिये हैं। यदि ऐसा न किया जाता तो इस देश के निवासी समुद्र में डूब जाते। बुद्धिमान कारीगरों ने इस देश की रक्षा के लिये इन दीवारों की रचना की है।

+ वह स्थान जहां जहाज़ ठहरते हैं।

÷ काठियावाड़ (गुजरात) के पश्चिम का एक प्रदेश।

अब यह समझना बहुत आसान है कि डच लोग इन दीवारों की रक्षा तन मन धन से क्यों करते हैं। वे जानते हैं कि उनके घर उनके लाडले बच्चे समुद्र की भेंट हो जायंगे, यदि इन दीवारों की रक्षा न की जायगी।

बहुत दिन हुए कि एक डच बालक पीटर अपने घर के बाग में खेल रहा था। उसकी माता ने घर के अन्दर से आवाज दी और कहा—"पीटर! आओ अपनी दादी के लिये यह पनीर छेना का डब्बा ले जाओ। देखो, इसे मैंने बड़ी मेहनत से बनाया है। इसे लेकर सीधे दादी के घर जाओ, रास्ते में खेलना नहीं और शीघ्र लौट आना ताकि तुम अपने पिता के साथ शाम को भोजन कर सको।"

पीटर ने पनीर के छोटे डब्बे को लिया और अपनी दादी के घर की ओर चला। रास्ते में उसने कहीं अपना समय खेल कूद में नष्ट नहीं किया, न फूल ही चुने। वह सीधा अपने मार्ग पर चला गया और अपनी माता की आज्ञा के अनुसार दादी के घर पहुँचकर पनीर का डब्बा उसके हवाले किया। इतने में अँधेरा हो चुका था।

अपनी दादी से छुट्टी लेकर वह फिर घर की ओर लौटा। जिस रास्ते से लौटना था, समुद्री दीवार उसके पास ही थी। उसने और छोटी अवस्था में पिता से कई बार सुना था कि सैकड़ों हजारों मनुष्यों के परिश्रम द्वारा समुद्री दीवारें तैयार हुई हैं और देश का जीवन इन की रक्षा पर निर्भर है।

हैं! यह क्या? उस सुनसान अंधकार में टप टप शब्द उसके कान में पड़ा। वह चौकन्ना होकर सुनने लगा, उसकी छाती धड़कने लगी।

पीटर ने फौरन उस भयानक शब्द का अर्थ जान लिया। उसको पता लग गया कि समुद्र दीवार के छेद से अन्दर घुसना चाहता है। यदि दीवार के बचाने का शीघ्र कोई उपाय न किया गया तो सबेरा होते होते हालैण्ड की पवित्र भूमि जलमग्न हो जायगी।

वह छोटा बालक क्या कर सकता था? उसने एक मिनट विचार किया और तत्क्षण उस स्थान की ओर दौड़ा जहां से पानी चू रहा था। अपने नन्हे हाथ को दीवार के घेर में डाल-कर सहायता के लिये पुकारा परन्तु कोई नहीं आया। पानी का चूना बंद हो गया। बार बार उसने सहायता के लिये पुकारा परन्तु कोई न आया। घटाटोप अंधकार हो गया था; पुकारते पुकारते वह थक गया। उस में पुकारने की शक्ति न रह गयी; शीत ने उसके शरीर को बिलकुल सुन्न कर दिया परन्तु वाह रे वीर! उसने अपने उन नन्हे और कमजोर हाथों से अपार समुद्र को रोक रक्खा।

प्रातःकाल हुआ। लोग इधर उधर जाने लगे। उन्होंने उस बालक को अपनी जगह पर स्थिर देखा। यद्यपि वह ज्ञान शून्य था, सर्दी से उसका शरीर अकड़ गया था परन्तु अपने देश की रक्षा के लिये वहीं डटा था। उसके पिता ने उसे छाती से लगाया। दीवार की मरम्मत की गयी। सारे देश में पीटर का नाम प्रसिद्ध हो गया।

धन्य है वह देश, जहां के बच्चों को माता पिता देश-सेवा की शिक्षा देते हैं। उसी जाति का भविष्य सुंदर है, जिसके बच्चे पीटर की तरह जाति के हित के लिये अपने प्राणों को तुच्छ समझते हैं।

## कठिन शब्दों के अर्थ

सर्वोपरि- सबसे बड़ा, सब के ऊपर । अनभिज्ञता- अज्ञान, जानकारी न होना । जयचंद- कन्नौज का राजा जिसने महाराज पृथ्वीराज से बदला लेने के लिये विदेशी बादशाह मुहम्मद गोरी को इस देश पर आक्रमण करने को बुलाया श्रुति- वेदादि । स्मृति- पुराण इत्यादि । वेत्ता-जानने वाला, ज्ञाता । पारलौकिक-परलोक सम्बंधी । जलमग्न- जल से डूबी । तत्क्षण- उसी दम ।

# पाठ १३ वाँ ।

## स्वर्गीय सङ्गीत

पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो ।
पुरुष क्या पुरुषार्थ हुआ न जो,
        हृदय की सब दुर्बलता तजो ।
प्रबल जो तुममें पुरुषार्थ हो,
        सुलभ कौन तुम्हें न पदार्थ हो ॥
प्रगति के पथ में विचरो, उठो ,
        पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥१॥
न पुरुषार्थ बिना कुछ स्वार्थ है ,
        न पुरुषार्थ बिना परमार्थ है ।
समझ लो यह बात यथार्थ है—
        कि पुरुषार्थ वही पुरुषार्थ है ।
भुवन में सुखशान्ति भरो उठो ,
        पुरुष हो, पुरुषार्थ करो , उठो ॥२॥

न पुरुषार्थ विना वह स्वर्ग है,
न पुरुषार्थ विना अपवर्ग है।
न पुरुषार्थ बिना क्रियता कहीं,
न पुरुषार्थ बिना प्रियता कहीं।
सफलता वर—तुल्य वरो उठो
पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो ॥३॥
न जिसमें कुछ पौरुष हो यहां,
सफलता वह पासकता कहां?
अपुरुषार्थ भयङ्कर पाप है,
न उसमें यश है न प्रताप है।
न कृमि-कीट समान डरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो ॥४॥
मनुज-जीवन में जय के लिये,
प्रथम ही दृढ़ पौरुष चाहिये।
विजय तो पुरुषार्थ बिना कहाँ।
कठिन है चिर-जीवन भी यहां,
भय नहीं, भव—सिंधु तरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो ॥५॥
यदि अनिष्ट अड़ें, अड़ते रहें,
विपुल विघ्न पड़ें, पड़ते रहें।
हृदय में पुरुषार्थ रहे भरा,
जलधि क्या, नभ क्या, फिर क्या धरा?
दृढ़ रहो, ध्रुव धैर्य धरो उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो उठो ॥६॥
यदि अभीष्ट तुम्हें निज सत्व है,

प्रिय तुम्हें यदि मान महत्व है।
यदि तुम्हें रखना निज नाम है,
जगत में करना कुछ काम है।
मनुज! तो श्रम से न डरो, उठो,
पुरुष हो पुरुषार्थ करो, उठो ॥७॥
प्रकट नित्य करो पुरुषार्थ को,
हृदय से तज दो सब स्वार्थ को।
यदि कहीं तुमसे परमार्थ हो,
यह विनश्वर देह कृतार्थ हो।
सदय हो पर-दुःख हरो, उठो,
पुरुष हो, पुरुषार्थ करो उठो ॥८॥

### कठिन शब्दों के अर्थ

प्रगति– उन्नति, आगे बढ़ना, विकास। अपवर्ग– मुक्ति, निर्वाण, मोक्ष। क्रियता– मान्यता, गति, सफलता। कृमि-कीट– कीड़े मकोड़े। विपुल– बहुत। जलधि–(जल+धि)समुद्र। नभ–आकाश। धरा-पृथिवी। ध्रुव–निश्चित स्थिर। विनश्वर-नष्ट हो जाने वाला या वाली।

# पाठ १४ वाँ

## उपवास

भारतवर्ष के इतिहास में कदाचित् ही कोई धर्मगुरु या महात्मा ऐसा मिले जिसके जीवन में थोड़े बहुत उपवासों की

घटना न प्रसिद्ध हो। प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव ने एक वर्ष और अंतिम श्री महावीर ने छह महीने पर्यन्त समाधियुक्त उपवास किया था। अब भी अनेक जैनाचार्य इक्यासी २ दिन पर्यन्त उपवास करते देखे जाते हैं। अभी अधिक दिन नहीं हुए कि देश के पारस्परिक कलह से दुःखित होकर पूज्य महात्मा गांधी ने इक्कीस दिन तक उपवास किया था। उस समय सारा देश इस कृशकाय महात्मा की ओर आश्चर्यमय दृष्टि से देख रहा था। उपवास की उपयोगिता के सम्बन्ध में उन्होंने कहा था— "हम अपने शुद्ध चरित्र से अपने मन की शुद्धता का विश्वास दूसरों को न करा सकें तो समझना चाहिये कि हमारे चरित्र में ही अपूर्णता है और अपने चरित्र को पूर्णतः शुद्ध करने के लिये उपवास सफल साधन है" इन बातों से हम सहज ही समझ सकते हैं कि उपवास से मन और आत्मा की शुद्धि का कितना गहरा सम्बन्ध है।

उपवास मुख्यतया दो कारणों से किया जाता है। (१) शरीरशुद्धि के लिये और (२) मनःशुद्धि के लिये। आयुर्वेद के मतानुसार हमारे शरीर में वात, पित्त और कफ तीनों विद्यमान हैं। इनमें से किसी एक के बढ़ जाने अथवा घट जाने से नाना प्रकार की बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं। 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' अर्थात् शरीर रोग का घर है। इस घर को जितना ही शुद्ध और स्वच्छ रक्खेंगे रोग उत्पन्न होने की उतनी ही कम संभावना रहेगी। वात, पित्त और कफ में परस्पर विषमता आजाने पर उन्हें सम अवस्था में लाने के कई उपाय हैं। जैसे औषध-चिकित्सा, जलचिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा, वायुचिकित्सा, उपवास चिकित्सा, आदि।

परन्तु इनमें जो अप्राकृतिक चिकित्साएँ हैं उनसे रोगों में उतना लाभ नहीं होता जितना प्राकृतिक चिकित्सा से होता है। उपवास-चिकित्सा अर्थात् उपवास द्वारा रोगों को दूर करना प्राकृतिक चिकित्सा है। पशु भी जब बीमार होते हैं तो स्वयं खाना बंद करदेते हैं। यह प्रत्येक प्राणी के लिये लाभदायक है।

वात पित्त और कफ में परस्पर विषमता क्यों होती है? जरा सी आग पर यदि एकाएक ढेर का ढेर कोयला लाद दिया जाय तो वह बुझ जायगी। यही हाल सब कोयला निकाल लेने पर भी होता है। इसी प्रकार आवश्यकता से अधिक आहार करने से पेट की अग्नि मन्द हो जाती है और वात, पित्त एवं कफ में परस्पर विषमता आजाती है। शरीर रोगों का घर बन जाता है। बहुत से लोग समझते हैं कि जिह्वा की तृप्ति के लिये भोजन किया जाता है; कितने ही अधिक भोजन को ही बल प्राप्ति का साधन समझते हैं, पर ये बड़ी भ्रांत धारणाएँ हैं। इन्हीं गलत विचारों के कारण मनुष्य आवश्यकता से अधिक खाजाता है और पेट की अग्नि मंद पड़ जाने से अपच इत्यादि अनेक रोग हो जाते हैं। आजकल के पढ़े लिखे नवयुवकों में से अधिकांश को हाजमे की शिकायत होती है, इसका कारण यही है कि वे स्वाद के लिये ऐसी बहुतेरी चीजें खा जाते हैं। जिन्हें उनका पेट अपनाने को तैयार नहीं होता।

अधिकांश रोगों का कारण पाचन शक्ति की कमी है। इसे दूर करने के लिये अनेक उपाय हैं पर इनमें 'लंघनं परमौषधम्'—लंघन अथवा उपवास ही सब से गुणकारी उपाय

है। उपवास से पेट में एकत्र हुआ भोजन धीरे धीरे पच जाता है उससे रोग शान्त हो जाता है। पहले पाश्चात्य चिकित्सक उपवास का उपहास करते थे पर आजकल वे भी इसका महत्व समझ कर इसे अपनाने लगे हैं। उन्होंने जगह जगह ऐसे औषधालय खोल रक्खे हैं जिनमें उपवास द्वारा ही चिकित्सा होती है। ऐसे औषधालयों में अमेरिका के डाक्टर मेकफेडन का औषधालय विख्यात है।

एक प्रसिद्ध यूरोपीय डाक्टर श्री डावियन ने लिखा है— "किसी रोगी को भोजन न दो, इससे रोगी नहीं वरन रोग भूखों मर जायगा।" ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे उपवास का महत्व प्रकट होता है। रिचर्ड फासल नामक एक होटल के मालिक को जलोदर होगया। उसके शरीर का वजन बढ़कर पांच मन तक हो गया। चलना फिरना असंभव होने लगा। अंत में कम होते होते पौने चार मन तक आगया था। वह उपवास के साथ व्यायाम भी करता और पानी के साथ नीबू का का थोड़ा थोड़ा रस लेता था।

वैद्यक के प्रसिद्ध ग्रंथ 'भावप्रकाश' में लिखा है कि वात, पित्त या कफ किसी के विकार से उत्पन्न होने वाला रोग केवल उपवास से दूर किया जा सकता है। उपवास के बाद शरीर में स्फूर्ति आती तथा जठराग्नि प्रदीप्त हो जाती है। इस प्रकार पश्चिमीय और पूर्वीय दोनों प्रकार के चिकित्सकों ने इसे लाभकारी बताया है। उपवास के समय कुछ कमजोरी और बेचैनी अवश्य मालूम होती है पर पीछे यह सब दूर हो जाती है और शरीर शुद्ध हो जाता है, उसमें फिर स्फूर्ति और जीवन आ

जाता है। बहुत से लोग समझते हैं कि उपवास में मानसिक शक्ति की हानि होती है पर यह उनका भ्रम मात्र है।

यह तो शारीरिक दृष्टि से उपवास का विवेचन हुआ परन्तु धार्मिक दृष्टि से भी इसका महत्व कम नहीं है। उपवास से मन की शुद्धि का निकट सम्बंध है इसीलिये संसार के सभी प्राचीन धर्मों में इसका विशेष विधान है। जैन, हिंदू, इस्लाम और ईसाई धर्म में इसका बड़ा माहात्म्य है।

निराहार उपवास का ही सब मतों में उल्लेख है पर आजकल अधिकांश व्यक्ति धार्मिक त्योहारों पर जो उपवास करते हैं उन्हें एक प्रकार का ढोंग ही कहा जासकता है। फलाहार की सुविधा का आश्रय लेकर लोग सिंघाड़ा, दूध, हलवा तथा तरह २ के माल पर खूब हाथ साफ करते हैं। यहां तक कि और दिनों से भी अधिक खा जाते हैं। अब तो सिंघाड़े की पकौड़ियां, जलेबी, पूरियां, तिन्नी के चावल, खीर, पेड़े, बर्फियां, तथा नाना प्रकार की मिठाइयां भी फलाहार के नाम पर पेट के अंदर पहुँचायी जाती हैं। कितने ही मुसलमान रोजे के दिनों में रात को दिन के बदले में भी खूब खालेते हैं। जिन त्योहारों को निराहार व्रत का विधान है उनमें प्रातःकाल होने के पूर्व रात को ही उठकर लोग खूब खालेते हैं। इस प्रकार के आचरण से लाभ के बदले हानि की ही अधिक संभावना रहती है। इससे पेट को रोज के जैसा या उससे भी अधिक काम करना पड़ता है। इससे इन्द्रियदमन भी नहीं हो सकता। जो लोग उपवास से किसी प्रकार का लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें निराहार व्रत करना चाहिये। और व्रत के पहले तथा बादवाले दिन को भी बहुत साधारण भोजन करना चाहिये। जिनका शरीर कम-

जोर है उन्हें एक साथ एक रात दिन का उपवास करना चाहिये। तीन दिन से अधिक उपवास करने के पूर्व डाक्टर या वैद्य से सम्मति लेलेनी चाहिये।

### कठिन शब्दों के अर्थ

कृशकाय- जिसका शरीर दुर्बल हो। आयुर्वेद- भारतवर्ष का चिकित्सा-शास्त्र। विद्युत्- विजली। प्राकृतिक चिकित्सा- वह चिकित्सा जिसमें बाहरी बातों की सहायता न लेकर प्राकृतिक (कुदरती) नियमों का सहारा लिया जाय। पाश्चात्य-पश्चिमीय, यूरप और अमेरिका के। चिकित्सक-रोग दूर करने वाला। स्फूर्ति-फुरती। विवेचन- छानबीन। निराहार- विना कुछ खाये।

# पाठ १५ वाँ

## परीक्षा

शिक्षा का उद्देश्य केवल परीक्षा पास करना नहीं, योग्यता सम्पादन करना है, तथापि दूसरों के समक्ष यह प्रमाणित करने के लिये कि हममें अमुक श्रेणी की योग्यता है, परीक्षा देना और प्रमाणपत्र प्राप्त करना आवश्यक है। प्राचीनकाल में योग्यता-प्रदर्शन के लिये कागजी प्रमाणपत्रों का कोई आदर न करता था किन्तु आजकल तो ऐसे प्रमाणपत्रों के बिना प्रायः काम ही नहीं चलता। इसीलिये हमारे देश में भी अनेक विषयों

के अनेक परीक्षालय स्थापित हो गये हैं। इन परीक्षालयों से देश को क्या लाभ हुआ है, यह कहना तो कठिन है पर जो हानियाँ हुई हैं वे स्पष्ट हैं। पुरातन भारत में जैसे पारङ्गत विद्वान हो गये हैं वैसे आजकल कहां हैं? इस अभाव के कारणों में एक आजकल के विद्यार्थियों का परीक्षा में उत्तीर्ण होकर उपाधि ले लेने का मोह भी है। आजकल प्रतिशत दो ही चार विद्यार्थी ऐसे मिलेंगे जो ज्ञानार्जन के लिये शिक्षा ग्रहण करते हैं। शेष सबका उद्देश्य उपाधि-धारण और नौकरियों के पीछे पागल होना है। उपाधि--धारण के इस दूषित अहंकार ने ज्ञान प्राप्ति का वास्तविक लक्ष्य नष्ट कर दिया है। जिससे शिक्षा में एक प्रकार की कृत्रिमता आ गयी है।

अपनी योग्यता और ज्ञानार्जन की मात्रा का अनुमान करने के लिये ही परीक्षा होनी चाहिये क्योंकि यही उसका तात्पर्य है। इस दृष्टि से भी परीक्षा की प्रणाली में पर्याप्त सुधार करने की आवश्यकता है। आजकल प्रायः ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि जिन विद्यार्थियों की योग्यता अधिक होती है वे अनुत्तीर्ण हो जाते हैं और कमजोर लड़के पास हो जाते हैं। कभी कभी तो ऐसे शिक्षार्थी भी पास हो जाते हैं जिनके अनुत्तीर्ण होने की पूरी संभावना रहती है और भलीभांति पाठ्य पुस्तकों का अध्ययन भी नहीं किये होते।

विद्यार्थियों को लिखित उत्तर देने का शिक्षकों को खूब अभ्यास कराना चाहिये। बहुतेरे विद्यार्थियों के अनुत्तीर्ण होने का कारण यह भी है कि उन्हें उत्तर तो याद होते हैं पर उन्हें कैसे लिखना चाहिये यह नहीं जानते। कितने ही परीक्षालय में प्रवेश करते ही घबड़ा जाते हैं। परीक्षार्थियों को अपने अध्य-

यन काल में निर्भीक होकर लिखने का खूब अभ्यास करना चाहिये।

प्रश्नपत्र मिलने पर उसे शांत और गंभीर होकर ध्यान से पढ़ना चाहिये। पहले यह देखो कि परीक्षक क्या पूछता है? जितना वह पूछे उतनेका ही उत्तर सावधानी के साथ लिखो। कितने ही लड़के अपनी योग्यता दिखाने के लिये उससे अधिक लिख जाते हैं जो परीक्षक पूछता है। यह दोष है और इसमें भी नम्बर कट जाते हैं। पहले सम्पूर्ण प्रश्नपत्र पढ़ जाओ और देखो कि किन प्रश्नों के उत्तर तुम्हें खूब अच्छी तरह याद हैं। ऐसे प्रश्नों पर निशान कर दो। फिर जो प्रश्न तुम्हें सबसे सरल जँचे उसका उत्तर सबसे पहले लिखो। बहुत जल्दी न करो अन्यथा लिखने में गलतियां रह जायँगी। जब वह प्रश्न लिख चुको तो फिर देखो कि बचे हुए प्रश्नों में तुम्हें कौन सबसे अधिक याद है। जो खूब याद हो उसे ही लिखो। जो प्रश्न सबसे कठिन मालूम हो उन्हें सबके अन्त में करो। जरूरत से ज्यादा न लिखो क्योंकि जितना समय मिला है उतनेमें ही तुम्हें प्रश्नों के उत्तर लिखने हैं। परीक्षालय में नये आदमियों अथवा निरीक्षकों को देखकर घबड़ाओ नहीं: तुम चुपचाप अपना कार्य करो। प्रश्नों का उत्तर देते समय अपने सामने देखो; इधर उधर देखना बहुत बुरा है बराबर ऐसा करने से निरीक्षक को नकलची होने का सन्देह हो जाता है। ऐसी अवस्था में कितने ही लड़के निकाल दिये जाते हैं और परीक्षा देने के अधिकार से वंचित हो जाते हैं। परीक्षा देने जाते समय अपने साथ कागज, कलम, पेंसिल इत्यादि प्रयोजनीय वस्तुओं को छोड़कर और कुछ न ले जाओ। लिखा हुआ कागज कदापि अपने पास

न रक्खो। कितने ही भारतीय लड़के बड़ी परीक्षाओं में अंग्रेज निरीक्षकों को देखकर घबड़ा जाते हैं तुम ऐसा भय न करो। यदि तुममें दोष न होगा या तुम नकल न करोगे तो ये तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। परीक्षालय में यदि तुम्हें पानी पीने लघुशंका करने अथवा अन्य किसी बात की आवश्यकता पड़े तो तुरंत अपनी जगह पर खड़े हो जाओ। टहलता हुआ निरीक्षक तुम्हारे पास आकर स्वयं पूछेगा और उचित प्रबंध कर देगा। शोर न करो।

इन सब बातों पर ध्यान देने से परीक्षार्थी का उत्तीर्ण होना एक प्रकार से निश्चित है।

कठिन शब्दों के अर्थ।

पुरातन- प्राचीन। पारङ्गत- समर्थ; पूर्णज्ञानी, गंभीर, पण्डित। वास्तविक- असली। कृत्रिमता- बनावट, नकल। तात्पर्य-मतलब। पर्याप्त- काफी। अनुत्तीर्ण- फेल। निर्भीक-निडर। लघुशंका- पेशाब।

# पाठ १६ वाँ

## संसार की चार उपमाएँ

(१)

बड़े बड़े तत्वज्ञानियों ने संसार की समुद्र से उपमा दी है। यह उपमा बैठती भी ठीक है। जैसे समुद्र में तरंगें उठती हैं वैसे ही संसार में विषयवासनाओं की तरंगें उठा करती हैं। जैसे समुद्र ऊपर से समतल मालूम होता है वैसे ही संसार भी ऊपर से सरल दीखता है। जैसे समुद्र बहुत गंभीर होता और कहीं कहीं उसमें भँवर पड़ता है वैसे ही संसार काम--विषय--प्रपंचों से गम्भीर है और उसमें मोह रूपी भँवर पड़ते हैं। जैसे समुद्र तूफानों से नौका को हानि पहुँचाता है, वैसे ही संसार में भी काम रूपी तूफान से आत्मा की हानि होती है। जैसे समुद्र ऊपर से अपनी अगाध सलिल-राशि से शीतल जान पड़ता है पर उसके अन्दर बड़बानल * होता है, उसी तरह संसार में लोभ रूपी अग्नि जलती रहती है।

(२)

संसार की दूसरी उपमा अग्नि से भी दी जाती है। जैसे अग्नि से विकट संताप उत्पन्न होता है, वैसे ही संसार से त्रिविध ताप की उत्पत्ति होती है। जैसे आग का जला जीव बुरी तरह छटपटाता है वैसे ही संसार रूपी ताप से जला हुआ जीव बुरी

* समुद्र की अग्नि। समुद्र में वस्तुतः बड़वानल नहीं होता यह कवियों की कल्पना मात्र है।

तरह नाना प्रकार की पीड़ाओं से बिलखता है। जैसे अग्नि सब को भस्म कर देती है वैसे ही संसार के विषय-भोग लोगों का विनाश कर छोड़ते हैं। अग्नि में ज्यों ज्यों घी और ईंधन पड़ता है, वह अधिकाधिक प्रज्वलित होती जाती है । संसार में भी ज्यों ज्यों तीव्र मोहिनी रूप घी और विषय रूपी ईंधन पड़ता है, वह बढ़ता जाता है।

(३)

संसार की तीसरी उपमा अंधकार से दी जाती है। जैसे अंधकार में रस्सी में सांप का भान हो जाता है वैसे ही संसार में सत्य असत्य और असत्य सत्य मालूम होता है। जैसे मनुष्य अंधकार में इधर उधर भटककर पथ भूल जाता है। वैसे ही लोग संसार में अपना असली मार्ग और उद्देश्य भूलकर विपत्ति भोगते फिरते हैं। अंधकार में हीरा और कांच समान दीखते हैं और दोनोंमें कौन क्या है इसका निर्णय नहीं होता, वैसे ही संसार में भी विवेक और अविवेक की पहचान नहीं होती। जैसे अन्धकार में आंखों के होते हुए भी आदमी अन्धा हो जाता है उसी प्रकार संसार में बुद्धि और शक्ति रखते हुए भी आदमी मोहान्ध और अशक्त हो जाता है।

(४)

संसार की चौथी उपमा गाड़ी के पहिये की है। जैसे पहिया चक्कर काटता रहता है वैसे ही जीव भी संसार में पागल सा फिरता है। जैसे गाड़ी का पहिया बिना धुरी के नहीं चल सकता

वैसे ही संसार भी मिथ्यात्व के बिना नहीं चल सकता। गाड़ी का पहिया, बीच की लकड़ियों पर टिका रहता है, इसी प्रकार संसार भी शंका और प्रमाद पर अवलम्बित है।

इन उपमाओं का तत्त्व समझकर संसार से मुक्त होने के उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिये।

(१)

सागर जैसे सुदृढ़ नौका और विश्वसनीय कर्णधार की सहायता से पार किया जा सकता है वैसे ही संसार रूपी सागर भी सद्धर्म रूपी नौका और सद्गुरु रूपी नाविक की सहायता से पार किया जा सकता है।

(२)

जैसे अग्नि सबको भस्म कर डालती है पर पानी से बुझ जाती है वैसे ही संसाराग्नि संयम और वैराग्य रूपी पानी से बुझ जाती है।

(३)

जैसे अंधकार में दीपक जलते ही सब कुछ दिखायी पड़ने लगता है, वैसे ही संसार रूपी अंधकार में ज्ञान का दीपक प्रकाश फैलाकर सब को ठीक ठीक प्रकाशित कर देता है।

(४)

जैसे गाड़ी का पहिया बैलों के बिना गन्तव्य स्थान पर नहीं जा सकता, वैसे ही संसार चक्र भी रागद्वेष के बिना नहीं चल सकता। संसार चक्र त्यागने की इच्छा वालों को रागद्वेष का त्याग करना चाहिए।

इन उपमाओं में संसार के दुःख और उनके निवारण के उपाय बताये गये हैं। इन्हें मनन कर दूसरों को समझाना चाहिये।

### कठिन शब्दों के अर्थ

तरंगें- लहरें। समतल- सपाट, बराबर। काम-विषयप्रपञ्च-वासना और भोग के जाल से। गंभीर- गहरा। अगाध- बहुत गहरा। सलिल- राशि- पानी का ढेर। त्रिविध ताप- तीन तरह के दुख। कर्णधार- नाविक, मल्लाह।

# पाठ १७ वाँ

## धर्मधीर कामदेव

भगवान् महावीर के समय भारत की चंपा नगरी में कामदेव नाम के एक श्रावक हो गये हैं। उनकी पत्नी का नाम भद्रा था। भद्रा बड़ी सुशीला थी। वह परमा सुंदरी थी। कामदेव को किसी बात की कमी न थी। द्रव्य की तो सीमा नहीं थी। छः करोड़ मुहरें घर में, छः करोड़ व्यापार में, छः करोड़ जायदाद में और इतनी ही कोष में थीं। आजकल इस प्रकार सुंदर व्यवस्था कौन करता है? जिनके पास धन है वे यदि विचार के साथ अपने पूर्व पुरुषों के आचरण से शिक्षा ग्रहण कर व्यवस्था करें तो आये दिन निकलने वाले दिवाले बंद हो जायँ। पर हम तो पूर्वजों की चाल को भूले हुए हैं।

प्राचीन भारत में गोवृंद की अधिकता से घी दूध की नदियां बहती थीं जिनके कारण लोग पुष्ट और बलवान होते थे। आजकल तो घास का घी खाकर लोग गर्व करते हैं। गोपालन प्राचीन भारतीयों का प्रधान कर्त्तव्य था। कामदेव के एक दो गौएँ नहीं छः गोकुल थे। एक गोकुल में दस हजार गाएँ होती हैं अर्थात् कामदेव के पास साठ हजार गाएँ थीं। यदि हम लोग एक एक गाय भी पालें तो शीघ्र यह दुर्बलता और सारे रोग दूर हो जायँ। कामदेव के जीवन की ये दो बातें ही उस समय के सुखी जीवन के प्रमाण उपस्थित करने के लिये पर्याप्त हैं।

जिस युग में धर्मावतार भगवान् महावीर स्वयं लोगों को अपने पावन उपदेशामृत से पवित्र करते थे उस युग के श्रावकों की धार्मिकता का कहना ही क्या? कामदेव का जीवन भी बड़ा पवित्र था। एक समय की बात है कि भगवान् चंपा नगरी में पधारे। दर्शनार्थ जनता की टोलियां उमड़ पड़ीं। कामदेव ने जब यह सुसमाचार सुना तो उनके हर्ष की सीमा न रही। वे तुरंत भगवान् का पावन उपदेश सुनने के लिये रवाना हुए। भगवान् महावीर ने उपदेश किया—"हे प्राणियो! मनुष्य जन्म पाकर भी उसका महत्व न जानने वाले मोहीजीव धाम, धरा धन और रमणी के रंग में रंगकर उसे व्यर्थ नष्ट कर देते हैं।" उपदेश सुनकर कामदेव का कोमल हृदय पिघल गया। उसने श्रावक-धर्म स्वीकार करने का निश्चय करके भगवान् से प्रार्थना की—"नाथ! मैं मुनिधर्म का भार उठाने में असमर्थ हूँ। मुझे श्रावक व्रत देने की कृपा कीजिये। भगवान् ने दया करके उसे श्रावक धर्म से व्रती किया। कामदेव ऐसे प्रसन्न हुए कि पत्नी से जाकर कहा—" प्रिये! भगवान् महावीर जैसे उपदेशक के होते हुए भी

यदि हम श्रावकधर्म से वंचित रहें तो अभागे ही हैं । हे भद्रे! तू भी प्रभु से श्राविकाधर्म स्वीकार करके कृतकृत्य होजा । ऐसा अवसर बारबार नहीं आता ।" भद्रा अत्यन्त प्रसन्न हुई और शीघ्र ही श्राविका हो गयी ।

कामदेव का अपनी पत्नी से कैसा स्वच्छ स्नेह था, इसका आभास इस घटना से मिलता है। वास्तव में उस समय का दाम्पत्य सम्बंध आजकल की तरह तुच्छ वासनाओं की क्षणिक तृप्ति के लिये नहीं होता था । वरन् धर्म के सब अंगों का पालन करने के लिये होता था ।

इस प्रकार श्रावकधर्म का पालन करते हुए कामदेव ने चौदह वर्ष बिता दिये । एक दिन उसने श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं के पालन करने का विचार किया और अपने बंधु बांधवों को भोजन आदि उचित सत्कारों से सत्कृत करके उनकी आज्ञा ले ज्येष्ठपुत्र को घर का सारा कार्य सौंपकर ग्यारह प्रतिमा (पडिमा) करनी स्वीकार की ।

जब कामदेव रात में कायोत्सर्ग में खड़े होकर ध्यानस्थ हो रहे थे तो एक देव पिशाच की आकृति बनाकर उनके पास आया और बोला—अरे ढोंगी कामदेव! ढोंग रचकर लोगों को ठगने बैठा है । मैं तेरी चालाकी खूब जानता हूँ । इस बगुला भक्ति से तू स्वर्ग और मुक्ति की कामना करता है ? मूढ़! अपना भला चाहता है तो यह ढोंग छोड़दे अन्यथा तेरी हड्डियां चूर २ कर दूंगा ।" जब कामदेव इन भयंकर वाक्यों से तनिक भी विच-

लित न हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर तलवार से शरीर पर आघात करना आरंभ किया। फिर भी कामदेव ने ध्यान न छोड़ा। वह जानते थे कि संकट में ही धर्म और धैर्य की परीक्षा होती है।

कामदेव ध्यान में लगे रहे। देव ने क्रुद्ध होकर हाथी का रूप धारण किया और उन्हें गगन-विकम्पनकारी गर्जन के साथ उठाकर पटक दिया और पैर से कुचला, फिर भी कामदेव विचलित न हुए। पर देव बड़ा दुष्ट था। इस वार उसने विषधर सांप का रूप धारण किया और गले में लिपटकर काटने लगा। इस वार भी कामदेव का ध्यान न टूटा। अंत में देव पराजित हुआ। वास्तव में वह कामदेव की ही विजय नहीं थी वरन् धर्म और अधर्म के संग्राम में धर्म की विजय थी; पशुबल पर आत्म-बल की विजय थी; राक्षस पर देवता की विजय थी। ऐसे विजेता केवल आत्मकल्याण ही नहीं करते, जगत् के सामने आदर्श उपस्थित करके भद्र प्राणियों को एक प्रकार का बल भी प्रदान करते हैं जिसकी सहायता से वे हृदय में उत्पन्न होने वाली विकारमयी कुप्रवृत्तियों से अपनी रक्षा करते हैं। ऐसे ही स्वपर-कल्याणरत पुरुष जगत् में अभिवन्दनीय होते हैं।

अंत में हारकर उसी देव ने देववेश धारण कर कामदेव की प्रशंसा की और कहा—"तुम्हारा जीवन धन्य है, तुम कृतकृत्य और स्तुत्य हो।"

दूसरे दिन जब कामदेव भगवान महावीर के दर्शनार्थ गये तो भगवान् ने उपस्थित साधु और श्रावकों को कामदेव की भांति धर्म में दृढ़ होने का उपदेश किया।

हम लोगों में धर्म और कर्त्तव्य के लिये अपने शारीरिक क्षणिक सुखों का बलिदान करने की शक्ति आवे, यही प्रार्थना है ।

## कठिन शब्दों के अर्थ

पर्याप्त- काफ़ी । पावन- पवित्र । उपदेशामृत- उपदेश रूपी अमृत । धरा- पृथिवी । दाम्पत्य सम्बंध- पतिपत्नी का सम्बंध । श्रावक की ग्यारह प्रतिमाएं निम्नलिखित हैं (१) दर्शन प्रतिमा (२) व्रत प्रतिमा (३) सामायिक (४) प्रोषधोपवास (५) सचित्त त्याग (६) रात्रि भुक्ति त्याग (७) ब्रह्मचर्य (८) आरंभत्याग (९) परिग्रह त्याग (१०) अनुमति त्याग (११) उद्दिष्ट त्याग। गगन विकम्पनकारी- आकाश को हिलाने वाली संग्राम- युद्ध । स्वपरकल्याण रत- अपने और दूसरों की भलाई में लगे हुए । अभिनन्दनीय- आदर करने योग्य, पूजा करने लायक । स्तुत्य- प्रशंसा वा स्तुति के योग्य ।

# पाठ १८ वाँ

## व्यवसाय चतुष्क

(सवैया इकतीसा)

केई सुर गावत हैं केई तो बजावत हैं,
केई तो बनावत हैं भांडे मिट्टी सानकैं ।

केई खाक पटके हैं केई खाक शटकै हैं,
केई खाक लपटै हैं केई स्वांग आनिके॥
केई हाट बैठत हैं अम्बुधि में पैठत हैं,
केई कान ऐठत हैं आप चूक जानिकै।
एक सेर नाज काज आपनों शरीर त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्मकाज हानिके॥१॥
शिष्य को पढ़ावत हैं देह को बढ़ावत हैं,
हेम को गलावत हैं नाना छल ठानिकै।
कौड़ी कौड़ी मांगत हैं कायर ह्वै भागत हैं,
प्रात उठ जागत है स्वारथ पिछानिकै॥
कागद् को लेखत हैं केई नख पेखत हैं,
केई कृषि देखत हैं अपनी प्रमानिकै।
एक सेर नाज काज आपनों शरीर त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्मकाज हानिके॥२॥
केई नट कला खेलैं केई पट कला बेलैं,
केई घटकला झेलैं आप वैद्य मानिकै।
केई नाच नाच आवें केई चित्र को बनावें,
केई देश देश धावें दीनता बखानिकै--॥
मूरख को पास चहैं नीचन की सेवा बहैं,
चौरन के संग रहैं लोक लाज मानिकै।

एक सेर नाज काज आपनो स्वरूप त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्मकाज हानिकै॥३॥

केई सीसको कटावैं केई सीस बोझ लावैं,
केई भूप द्वार जावें चाकरी निदानकै।
केई हरी तोरत हैं पाहन को फोरत हैं,
केई अंग जोरत हैं हुन्नर विनानकै॥
केई जीवघात करैं केई छंद को उचरैं,
नाना विध पेट भरैं इन्हें आदि गनिकै।
एक सेर नाज काज आपनो स्वरूप त्याज,
डोलत हैं लाज काज धर्मकाज हानिकै॥४॥

भांडे- बर्तन। सानकै- गूंधकर। खाक-राख; धूल। पटकै हैं- फेंकते हैं। शटकै हैं- छानते हैं। लपटे है- लपेटे हुए हैं। हाट-बजार, पैठ। अम्बुधि-समुद्र। पैठत हैं-घुसते हैं। ऐंठत हैं-मरोड़ते हैं। पेखत हैं- देखत हैं। प्रमानिकै समझ कर। पटकला- वस्त्र बनाने की कला, चित्र दिखा कर मांगने की विद्या। घटकला- शारीरिक विद्या, वैद्यक। पास- प्रमाणपत्र, सार्टीफिकेट। बहैं- करते हैं। निदानकै- आशा करके। पाहन- पत्थर। फोरत हैं- फोड़ते हैं। अंग जोरत हैं- हाथ जोड़ते या सिर नवाते हैं। गानिके- गिनकर, लेकर।

# पाठ १९ वाँ।

## रीति-रवाज

संस्कृत भाषा में एक उक्ति है—"लोको हि अभिनवप्रियः" अर्थात् लोग नये को प्यार करते हैं। यह उक्ति कितने ही विषयों में सत्य प्रतीत होती है परन्तु रीति-रवाजों के विषय में तो इसका जरा भी प्रवेश नहीं दिखायी पड़ता। जो लोग समय की प्रगति को भलीभांति जानते हैं,रीति-रवाजों की परिवर्तनशीलता से परिचित हैं उनके लिये परम्परा से चली आयी हुई दूषित रीतियां कुछ महत्त्व नहीं रखती वरन् समाज का हित करने वाली नवीन प्रथाएँ महत्वपूर्ण प्रतीत होती हैं। परन्तु जिनमें स्वयं विचार-शक्ति नहीं है वे रवाजों को इतना महत्व देदेते हैं कि उनमें सुधार करने अथवा उन्हें बदलने के लिये किसी प्रकार तैयार नहीं होते। ऐसे लोग उलटे स्वतंत्र विचारकों पर ही अक्ल का दुश्मन होने का आरोप लगाते हैं परन्तु विचारपूर्वक देखने पर विदित होगा कि वे स्वयं पुरानी प्रथाओं के अन्ध भक्त होने के कारण अपनी विचार शक्ति खो बैठते हैं। इनकी इस विचारधारा का क्या कारण है?

थोड़ा विचार करने से मालूम होगा कि ऐसे आदमियों के इस व्यवहार का कारण प्राचीनता का ममत्व है। पुरानी पद्धतियों से सैकड़ों वर्षों का परिचय और सम्बंध होने से स्वभावतः ही उनके प्रति साधारण हृदयों में एक प्रकार की ममता जाग उठती है। नयी बातें नये नियम अपरिचित होते हैं, इसलिये साधारण

जनता उनके लाभों को नहीं जानती। इसके अतिरिक्त कुछ शिक्षित और बुद्धिमान व्यक्ति व्यक्तिगत स्वार्थों के लिये अथवा अपढ़ जनता पर अपना रोब गांठने के लिये जनता को नये नियमों से भड़का देते हैं। इसीलिये जो रवाज वर्तमान स्थिति में सर्वथा हानिकर हैं उन्हें छोड़ना भी कठिन हो रहा है।

सामाजिक प्रथाएँ सर्वज्ञ द्वारा प्रतिपादित धार्मिक सिद्धांत नहीं हैं जिनमें परिवर्तन की गुंजाइश न हो। वे समाज के नेताओं द्वारा समय की सुविधाओं को देखकर चलायी गयी हैं। समाज के नेता न तो सर्वज्ञ थे, न उन्होंने इन प्रथाओं को सदा के लिये चलाया था। उन्होंने समय तथा परिस्थिति के अनुसार इनमें परिवर्तन करलेने की स्पष्ट आज्ञा दी है। जब ये नियम बने तो उनकी जरूरत थी वैसी परिस्थिति थी। अब जब समाज की परिस्थिति बदलगयी है, नियम भी बदल जाने चाहिए। पहले लोगों के पास अपरिमित धन था, आजकल अपरिमित दरिद्रता है।अब यदि पहले की भांति आजकल व्याह में धन व्यय करने की प्रथा कायम रखी जाय तो व्याह करना एक आफत होजाय। नियम समाज की सुविधा के लिये बनाये जाते हैं इसलिये नियम समाज के लिये हैं; समाज नियमों के लिये नहीं है। समाज और नियम इन दोनों में समाज ही बड़ी वस्तु है अतएव समाज की रक्षा, कल्याण और सुविधा के लिये उसके नियम बदले जा सकते हैं। केवल नियमों की रक्षा के लिये समाज को कठिनाई भोगने की कोई आवश्यकता नहीं है।

समाज के नेता प्रायः श्रीमान् लोग होते हैं। उन्हें आर्थिक कष्ट नहीं होता अतएव संभव है उन्हें नियमों में परिवर्तन करने

की आवश्यकता न प्रतीत होती हो, परन्तु उन्हें यह विचार लेना चाहिये कि समाज अकेले उन्हींसे बना हुआ नहीं है। उसमें श्रीमानों की अपेक्षा गरीब ही अधिक होते हैं। जो नियम अधिक से अधिक आदमियों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचावे वही अच्छा नियम है—चाहे वह नया हो या पुराना। न कोई नियम पुराना होने से ही अच्छा होता है, न नया होने से बुरा। उसकी अच्छाई या बुराई लोगों की नीतिपूर्ण सुविधा पर अवलम्बित है। इसी कसौटी पर नियमों की परख होनी चाहिये। यदि कोई इस प्रकार विचार नहीं कर सकता तो उसे समाज-नेता होने का कोई अधिकार नहीं है। समाज का नेता वही हो सकता है जो व्यक्तित्व को भूल कर अपने आपको गरीबों की बराबरी का समाज का एक क्षुद्र अंग समझे। जिस समय नियमों का निर्धारण हो उस समय यदि निष्पक्ष, निस्वार्थ और नीतिमान् गरीबों को ही निर्धारक बनाया जाय तो समाज को अत्यधिक लाभ हो सकता है।

एक बात और है। जो प्राचीनता को ही प्रमाण मानकर नये नियमों की अवहेलना करते हैं वे यदि विचार करें तो उन्हें भी पुरानी प्रथाओं में काट छाँट करने की आवश्यकता मालूम होगी। इसका कारण यह है कि जो नियम जिस समय स्थापित किया जाता है वह कुछ दिनों तक तो अपने मूल सिद्धान्त और रूप पर स्थिर रहता है किन्तु शीघ्र ही उसमें विकार आ जाता है और लोग मनमाना अर्थ लगाकर उसका दुरुपयोग करते हैं। ऐसे सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनका मूल स्वरूप और उद्देश्य कुछ और था पर आजकल सर्वथा विकृत हो गया है। कभी कभी तो इतना विकार आ जाता है कि आदर्श की रक्षा होनी

तो दूर रही उसमें भ्रष्टता आजाती है। इस दृष्टि से प्राचीनता की रक्षा के लिये भी नियमों और प्रथाओं में परिवर्तन करना आवश्यक है और जब संशोधन करना ही है तो भली भांति परिवर्तन करके उन्हें समाज की वर्तमान अवस्था के अनुसार कल्याणकारी बनालेना ही उचित है। तात्पर्य यह है कि जबतक वर्तमान रीति रवाजों का भली भांति संशोधन नहीं किया जाता तब तक उनसे समाज का उपकार नहीं हो सकता।

जैसे प्राचीनता-प्रिय व्यक्ति होते हैं, वैसे कोई कोई नवीनता-प्रिय भी होते हैं। ये सब नियमों को पुराना और सड़ा हुआ कह कर उनकी भर्त्सना किया करते हैं। ऐसा करना भी उसी प्रकार का भ्रम है, जैसा सब नवीन नियमों की भर्त्सना करना, अतएव प्रत्येक पुराने नियम को त्याज्य समझना भी भूल है। हमारे समाज में अनेक ऐसी बातें हैं जो पुरानी बातों से मिलती जुलती हैं। ऐसी बातों से यदि वर्तमान समाज को लाभ हो तो उनमें परिवर्तन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम पुराने नियमों की जगह नये नियमों की जो स्थापना करना चाहते हैं वह इसलिए नहीं कि पुराने नियम खराब हैं वरन् इसलिए कि यद्यपि किसी समय वे समाज के लिए उपयोगी रहे होंगे परन्तु समाज की वर्तमान स्थिति में वे उसके लिये लाभदायक होने की जगह उलटे हानिकर हो रहे हैं। जो नियम, जो प्रथाएँ, जो आदर्श और जो सिद्धान्त समाज की वर्तमान स्थिति में उसके लिये कल्याणकर हो सकें उन्हें आश्रय देना और उनका प्रचार करना—चाहे वे नये हों या पुराने—प्रत्येक समाजहितैषी का कर्त्तव्य है।

यह कार्य विचारवान युवक भलीभांति कर सकते हैं। उन्हें नवीनता और प्राचीनता का मोह छोड़कर सत्य की खोज करनी चाहिये। सत्य सर्वत्र है, उदार अन्वेषकों की आवश्यकता है।

### कठिन शब्दों के अर्थ

उक्ति- कहावत। प्रतीत- मालूम, ज्ञात। प्रगति- चाल। परम्परा- बहुत दिनों से, एक के बाद एक। आरोप- दोष, अपराध। ममत्व- अपनापन, स्नेह। पद्धति- रीति, प्रथा। गुंजाइश- जगह, आवश्यकता। श्रीमान्--धनी। क्षुद्र--छोटा। निर्धारण- निश्चय। अवहेलना- उपेक्षा, निन्दा। विकार- बुराई, दोष। तात्पर्य- मतलब। भर्त्सना- निन्दा। अन्वेषक-खोजकरनेवाला।

# पाठ २० वाँ

## जैनों की आस्तिकता

किसी विषय में मतभेद होना उतना बुरा नहीं है जितना मतभेद का घृणास्पद रूप। धार्मिक विषयों में कल्पनातीत मतभेद है, पर यदि वह शुद्ध मतभेद ही होता तो उससे इतनी हानि न होती जितनी संसार को उठानी पड़ी है। इस हानि से बचने की इच्छा के कारण कितने ही युवकों को धर्म से ही घृणा होती जाती है। वे सोचते हैं-- *"न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी"*--न धर्म रहेगा, न उसके

मतभेद से होने वाली हानियाँ होंगी परन्तु यह धारणा गलत विचारों पर अवलम्बित है। संसार में कोई ऐसी वस्तु नहीं जिसका किसी न किसी रूप में दुरुपयोग न होता हो। इससे उन वस्तुओं को ही नष्ट करदेना क्या उचित है? कुछ लोग गोहत्या करके गायों का दुरुपयोग करते हैं इस से गोवंश का ही नाश कर दिया जाय, ऐसा कोई विचारवान व्यक्ति नहीं कहस कता। कुछ लोगों ने यदि शास्त्रों या धर्म का दुरुपयोग किया है तो इस से धर्म का ही लोप कर देना उचित नहीं। ऐसा करने वाले तो उसका दुरुपयोग करने वालों से भी अधिक अपराधी हैं।

हां, यह मानने से कोई इन्कार नहीं करसकता कि बहुतेरे मतोन्मत्तों ने अपने तथा दूसरे धर्मों को विकृत करने की चेष्टा की है। जैनधर्म ऐसे धर्मों में से एक है जिनपर अगणित असत्य आक्षेप हुए हैं। एक सब से बड़े आक्षेप पर इस पाठ में विचार करना है। वह नास्तिकता का आक्षेप है। जब जैनों ने वेदों का विरोध किया तो जनता का विश्वास वेदों से उठ ने लगा। इस से ब्राह्मणों में बड़ा क्षोभ मचा। अन्त में उन्हों ने एक ऐसी युक्ति निकाली कि लोग वेदों पर अविश्वास न करें। वह युक्ति यह थी कि जो वेद को नहीं मानते उन्हें नास्तिक कहने लगे। इसीलिये नास्तिक का जो असली अर्थ (जो परमात्मा को न माने)था उसपर हरताल फेर कर मनगढन्त लक्षण बनाया--"नास्तिको वेदनिन्दकः"--अर्थात् वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक है। तब से लेकर आजतक जैनियों पर प्रायः यह आक्षेप किया जाता है। कि वे नास्तिक हैं परन्तु यदि जैनधर्म को नास्तिक धर्म कहा जायगा तो संसार का एक भी धर्म आस्तिक न कहला सकेगा।

अब इस आक्षेप की निर्मूलता पर विचार कीजिये। वेद की निन्दा करने वाला नास्तिक है। असल में वेद का अर्थ ज्ञान होता है। इस का अर्थ यह हुआ कि जो ज्ञान की निन्दा करे वह नास्तिक है। यह आक्षेप जैनों पर नहीं आसकता क्योंकि वे ज्ञान की निन्दा नहीं करते। यदि वेद का अर्थ ऋग्वेदादि किया जाय तो जैनी भी यह कह सकते हैं कि जो हमारे धर्मग्रन्थों को न माने वह नास्तिक है। यह कौनसा न्याय है कि ब्राह्मणग्रंथों को न मानने वाला नास्तिक कहलाये और जैन-ग्रंथों को न मानने वाला नास्तिक न कहलाए। सच बात तो यह है कि कोई किसी सम्प्रदाय के ग्रंथों को न मानने से ही नास्तिक नहीं कहला सकता। यदि ऐसा हो तो सभी नास्तिक हो जायगे क्योंकि एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय के ग्रंथों का विरोधी है। दुःख है कि ऐसी लचर दलीलें भी विद्वानों के हृदयों में स्थान पा जाती हैं।

जैनों को नास्तिक कहने का एक और भी कारण बताया जाता है। वह भी बेसिर पैर का है। कहा जाता है कि जैन ईश्वर को नहीं मानते। आजकल जैन धर्म के अधिकांश ग्रंथ प्रकाशित हो गये हैं। उन्हें पढ़ने का कष्ट उठाने पर सहज ही लोग यह समझ सकते हैं कि जैन ईश्वर को अस्वीकार नहीं करते। कदाचित् यह दोष इसलिये लगाया जाता हो कि जैन ईश्वर को जगत् का निर्माता नहीं मानते किन्तु अजैन धर्मों को मानने वाले कितने ही आस्तिक धर्माचार्यों ने ईश्वर को जगत् का कर्ता न मानकर उनका स्वतंत्र अस्तित्व माना है। हिंदुओं के ६ प्रधान शास्त्रीय धर्मों में प्रधान सांख्यवादी तो ईश्वर को भी नहीं मानते, प्रकृति को ही अनादि मानकर उसीके परिवर्तन से जगत् की सब वस्तुओं की सृष्टि मानते हैं तो भी उन्हें कोई नास्तिक नहीं कहता, इसी प्रकार

जैन धर्म भी नास्तिक धर्म नहीं हो सकता।

धर्म का उद्देश्य सत्य की खोज करना है। अतएव अपना धर्म हो या दूसरे का जहां सत्यकी प्राप्ति हो वहां से लेना चाहिये। याद रक्खो, सत्य सब सम्प्रदायों से बड़ा है। उसके लिये सम्प्रदाय या मत को छोड़ा जा सकता है; मत या सम्प्रदाय के लिये सत्य को नहीं छोड़ा जा सकता।

### कठिन शब्दों के अर्थ

घृणास्पद— घृणामय, जिसमें घृणा मिली हो। कल्पनातीत—जिसकी कल्पना न की जासके, जो अनुमान की सीमा से बाहर हो। मतोन्मत्त— किसी मत या सम्प्रदाय के लिये पागल रहने वाला। क्षोभ— उत्तेजना, क्रोध। युक्ति— तरकीब। हरताल फेरना— एक मुहाविरा है जिसका अर्थ नष्ट कर देना दबा देना इत्यादि है। लचर—कमजोर।

# पाठ २१ वाँ

## कलियुगी भीमः राममूर्ति

मुजफ्फरपुर शहर में एक दिन बड़ा उत्साह था—वहां के एक नवाब साहब ने प्रोफेसर राममूर्ति से बाजी लगाई थी। नवाब साहब की मोटर राममूर्ति रोकलें तो उन्हें ५००) इनाम मिलेंगे अन्यथा नवाब साहब उनसे १०००) वसूल करेंगे। खेल के बड़े तम्बू में तिल धरने की जगह न थी नवाब साहब अपनी मोटर के साथ उपस्थित थे। ठीक समय पर तम्बू के अन्दर की एक छोटी

कनात से बैण्ड बाजे के शब्द के साथ एक जवान मस्तानी चाल से निकला। उसकी पोशाक सोने के चमचमाते हुए तमगों से भरी थी। चारों ओर घूमकर उसने दर्शकों को नमस्कार किया। नवाब साहब की मोटर की पिछले लोहे की छड़ से एक रस्सा लगाकर उसकी कमर में बांध दिया गया। फिर उसने नवाब साहब से अपनी मोटर तेज करने को कहा। पहली बार मोटर दो चार कदम आगे बढ़ी। लोगों ने समझा राममूर्ति हार गये पर वह जवान हँसते हुए पीछे हटा। इस बार नवाब साहब ने ज्योंही मोटर तेज की वह एक गड़े हुए तख्ते से पैर अड़ाकर लेट गया। जो मोटर दो एक हाथ आगे थी, खिंचकर पीछे आ गयी। नवाब साहब ने मोटर को पूरी ताकत से तेज कर दिया। मोटर उछलने लगी किन्तु राममूर्ति टस से मस न हुए। बेचारे नवाब साहब का मुँह फीका हो गया। राममूर्ति की जीत हुई। दर्शक तालियां पीटने लगे। फिर राममूर्ति ने एक अपनी मोटर मंगाई। नवाब साहब की मोटर और अपनी मोटर दोनोंको दो रस्सों में बांधकर उन रस्सों को अपनी कमर से बांधा। तब दोनों मोटरों को उलटी दिशाओं में हांकने की आज्ञा दी। पहले की तरह दोनों मोटरें उछलने लगीं किन्तु राममूर्ति जरा भी नहीं डिगे। दर्शकों के आनन्द की सीमा न रही, तालियों की गड़गड़ाहट से तम्बू फटा पड़ता था।

आज हिंदुस्तान के घर घर में राममूर्ति का नाम प्रसिद्ध हो गया है। वह हाथी को अपनी छाती पर चढ़ा लेते हैं, २५ घोड़ों की ताकत की दो दो मोटरें रोक लेते हैं। छाती पर बड़ी२ चट्टान रखकर उस पर पत्थर को टुकड़े२ करवा देते हैं। आध इंच मोटी लोहे की जंजीर कमल की डण्डी की तरह आसानी से तोड़ देते हैं, पचास आदमियों से [illegible] देते

हैं यही नहीं, ७५ मील की तेजी से दौड़ती हुई मोटर उनके शरीर पर से पार हो जाती है। यह अलौकिक बल है, दैवी शक्ति है। सुनकर आश्चर्य होता है, देखकर दांतों तले उँगली दवानी पड़ती है। किन्तु ये बातें देखने में असाध्य मालूम पड़ने पर भी असंभव नहीं हैं। प्रयत्न करने पर लोग राममूर्ति जैसा बन सकते हैं। राममूर्ति स्वयं कहते हैं—"निष्फलता क्या है" यह राममूर्ति ने कभी नहीं जाना। एक बार, दो बार, तीन बार, पांच बार, दस बार, कोशिश करते चलो, सफलता अवश्य मिलेगी। "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि"--करूँगा या मरूँगा यही हमारा सिद्धान्त है।"

राममूर्ति में जो अलौकिक बल आज हम देखते हैं वह उनकी लगातार कोशिशों का फल है—ईश्वर का दान नहीं है। बचपन में राममूर्ति बड़े दुबले पतले थे। दो ही वर्ष की उम्र में उनकी माता मर गयीं थीं। पांच वर्ष की उम्र में ही उन्हें दमा (साँस का रोग) हो गया था। उनका चेहरा पीला और रोगी-सा मालूम होता था। अपनी दुर्बलता पर उन्हें बड़ा दुःख था। भीम, लक्ष्मण, हनुमान आदि की कथाएँ सुनकर वह सोचा करते कि कहीं मैं भी वैसा बलवान होता। स्कूल में पढ़ते लिखते समय भी वह यही सोचा करते थे।

केवल कल्पना में लगे रहने से ही काम नहीं चलता। कर्मवीर पुरुष अपनी कल्पना को कार्यरूप में बदलते और संसार में विजयी होते हैं। बालक राममूर्ति ने भी कसरत करनी शुरू कर दी। अपने स्कूल में भी वह फुटबाल आदि खेलने लगे कुछ दिनों तक विलायती ढंग से भी कसरत की पर कुछ लाभ न हुआ। हार कर देशी ढंग से कसरत करने लगे। अखाड़े में डंड बैठक करने और कुश्ती लड़ने लगे। वह कहते हैं—

"आरंभ में कसरत करने में शरीर अकड़ने लगता था। बहुत बार मैं आधी कसरत करके ही छोड़ देता। अखाड़े में आना कठिन मालूम पड़ता किन्तु मैंने सफल होने की प्रतिज्ञा करली थी। सोच लिया था कि यदि शारीरिक शक्ति न प्राप्त कर सका तो मर जाऊँगा। अन्त में मुझे सफलता मिलने लगी। धीरे धीरे कसरत बढ़ने लगी। उन दिनों में सबेरे ही उठकर घर से तीन कोस तक दौड़ता फिर अखाड़े में जाकर खूब कुश्ती लड़ता। लड़कर फिर तीन कोस दौड़ते हुए घर आता और वहां अपने चेलों के साथ कुश्ती लड़ता। उस समय मेरे अखाड़े में डेढ़ सौ जवान थे। उनसे कुश्ती करने के बाद सुस्ताकर तैरने जाता। पीछे तो इतनी भी ताकत न रह जाती कि खड़ा रह सकूँ। मेरे साथी मुझे ऊपर लेजाते और मेरा लंगोट भी वे ही खोलते। फिर शाम को पन्द्रह सौ से लेकर तीन हजार तक डण्ड और पांच हजार से लेकर दस हजार तक बैठक करता। यही मेरी रोजाना कसरत थी। इसका फल यह हुआ कि सोलह वर्ष की उम्र में इतनी ताकत हो गयी कि नारियल के पेड़ पर जोर से धक्के मारता तो दो तीन नारियल टूटकर भद भद गिर पड़ते।"

उस समय राममूर्ति का भोजन भी गजब का था। आजकल के विद्यार्थी तो जरासा अधिक भोजन करते ही पेट की शिकायत और हाजमे की खराबी का रोना रोने लगते हैं। इसका कारण यही है कि जो भोजन वह करते हैं उसे पचाकर खून बना डालने वाली शक्ति उनमें नहीं रहती, पर राममूर्ति के लिये यह बात न थी। दही उनका प्यारा भोजन है। दिन के बारह बजे कसरत आदि से निवट कर वह बादाम का शरबत पीते। घंटे दो घंटे बाद दो तीन सेर दही, तरकारी, भात तथा आध सेर घी खाते, रात में

थोड़ा सा भात और दही। दिन में दो तीन सेर बादाम उनके पेट में जाता और कभी कभी एकाध सेर मलाई में सोना चांदी के वर्क भी चाट जाते। दूध पसन्द नहीं था। मांस, मछली, शराब आदि से तो सदा दूर रहते अर्थात् इन अभक्ष्य वस्तुओं के सदा त्यागी ही थे।

बल तो असाधारण हो गया। देहका चढ़ाव—उतार और सुन्दरता देखकर लोग सिहाते किन्तु अब राममूर्ति को अपने बल की परीक्षा देने के लिये छटपटाहट शुरू हुई। संयोग की बात है कि उसी समय युजेन सैराडो नामक प्रसिद्ध यूरोपीय पहलवान (जिसके डम्बेल की कसरतें आज भारतवर्ष में भी प्रचलित हो रही हैं) संसार में अपने बल का डंका पीटता और संसार के नामी नामी पहलवानों को पछाड़ता हुआ हिन्दुस्थान में पहुँचा। जब मद्रास आया; राममूर्ति उसके बल की जांच करने को व्याकुल हो गये। वे कहते हैं—

"सैराडो के बल की परीक्षा किस प्रकार हो; और मैं उसके आगे टिक सकूँगा कि नहीं, यह जानने को मैं उद्विग्न हो गया। आखिर मैंने सैराडो के नौकर से दोस्ती की। एक दिन उस नौकर को मैंने नशीली चीज खिलादी और जब वह नशे में ऊंघने लगा, मैं तम्बू में घुसगया और सैराडो के 'डम्बेल्स' को आजमाया। मुझे तुरंत विश्वास हो गया कि सैराडो केवल अपनी चालाकी से कीर्ति लूट रहा है। वह बली है जरूर, किन्तु जितना वह बताता है, उतना नहीं। दूसरे ही दिन उसे मैंने चैलेञ्ज दिया—कुश्ती लड़ने को ललकारा। किन्तु वह समझ गया कि मैं उससे बली हूं इसलिये उसने यह कहकर अपनी इज्जत बचायी कि मैं काले आदमी से कुश्ती नहीं लड़ सकता। मुझे

आशा थी कि सैराडो के कुश्ती लड़ने और उसे पछाड़ने से मेरी नामवरी होगी पर उसके लड़ने से इन्कार कर देने पर मेरे मन की बात मन में ही रह गयी।"

जो कुछ हो; सैराडो को देखकर राममूर्ति के मन में भी घूम घूम कर अपने बल की करामात दिखाने की इच्छा उत्पन्न हुई। पहले वह किसी सरकस में भरती होकर अपनी करामात दिखाना चाहते थे किन्तु स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के बढ़ावा और मदद देने पर उन्होंने अपना एक अलग सरकस कायम किया। सैराडो ने बोझ उठाने में अधिक नामवरी पायी थी—वह पचास मन का बोझ उठा लेता था। राममूर्ति उससे दुगुना तिगुना बोझ उठालेते। अपने खेल में लगभग सौ मन का हाथी कलेजे पर रख लेते थे, यह बात तो संसार प्रसिद्ध है।

हिन्दुस्थान में अपने बल का डंका पीटकर राममूर्ति विदेशों में भी गये। इंग्लैण्ड फ्रांस आदि यूरोपीय देशों में भी उनकी धाक बंध गयी। यही नहीं, उनकी वीरता देखकर कितने विदेशी जलने भी लगे। उन लोगों ने राममूर्ति को मार डालने की भी कोशिश की। मलाका द्वीप में इन्हें दो बार जहर दिया गया। पहली बार तो जहर का कोई लक्षण भी मालूम न हुआ। उनकी बलवान आँतड़ी उसे साफ पचा गयी, किन्तु दूसरी बार उन्हें इतना जहर दिया गया जिससे बलवान घोड़ा तक मर जा सकता था। जहर के लक्षण मालूम होते ही राममूर्ति लंगोट बांधकर पांच हजार दण्ड कर गये। पसीने के साथ बहुत कुछ जहर निकल गया तो भी बहुत दिनों तक वह खाट पर पड़े रहे। यों ही फ्रांस में भी कुछ दुष्टों ने जाल रचकर उन्हें मारने का यत्न किया। राममूर्ति छाती पर हाथी चढ़ाने के पहले

एक तख्ता रख लेते हैं। उसी पर हाथी अपना पैर ठीक से रखता है जिसमें पूरा बोझ उनकी छाती पर पड़े। वहां पर दुष्टों ने इनके यूरोपीय मैनेजर को घूस देकर उस तख्ते को बीचों बीच दो टुकड़े कर डाला और फिर सरेस से जोड़ दिया। ज्योंही राममूर्ति की छाती पर हाथी आया, तख्ता कड़क कर टूट गया। हाथी का एक पैर राममूर्ति की छाती पर कुठौर पड़ गया। पसली की तीन हड्डियां टूट गयीं। वह बेहोश हो गये। फिर फ्रांस के अनेक चतुर डाक्टरों की कृपा से अच्छे तो हो गये किन्तु उन्हें छः हफ्ते अस्पताल में रहना पड़ा। इसी कारण राममूर्ति जर्मनी न जा सके, जहां से उन्हें न्यौता आया था। अमेरिका, आस्ट्रेलिया आदि भी जाना चाहते थे किन्तु कई विघ्नों के आपड़ने के कारण न जा सके। राममूर्ति ने युरोप के पहलवानों को कुश्ती के लिये ललकारा था। किन्तु कोई सामने न आ सका। राममूर्ति के पहले ही गामा और इमामबख्श नामी दो भारतीय पहलवानों ने इंगलैण्ड जाकर स्टेन्सेलर्स जिबिस्को नामक रूसी पहलवान को पछाड़ा था, इसलिए हेकेन स्मिथ नामक प्रसिद्ध यूरोपीय पहलवान भी इनके सामने आने की हिम्मत न कर सका।

आजकल राममूर्ति की अवस्था लगभग बयालीस वर्ष की है। उनका जन्म दक्षिण भारत के आंध्र प्रदेश में वीर घट्टम नामक गांव में हुआ था। उनके पिता पुलीस इन्सपेक्टर थे। अब राममूर्ति ने अपना खेल दिखाना बन्द कर दिया है। उनकी इच्छा है कि भारत भर में अखाड़े खुलें और यहां के बालकों एवं युवकों में वीरता का संचार किया जाय। इसी काम के लिए इधर उन्होंने एक योजना तैयार की है जिसे इन्दौर-राज्य ने अपने स्कूलों के लिए स्वीकार कर लिया है। राममूर्ति कोरे

बली नहीं, बुद्धिमान भी हैं। उन्होंने इण्ट्रेंस तक अंगरेजी पढ़ी है। संस्कृत भी जानते हैं, हिन्दी बोल लेते हैं। वह ब्रह्मचर्य के कट्टर पक्षपाती हैं। अभी तक अपना विवाह नहीं किया है और कदाचित् करेंगे भी नहीं। उठती जवानी में उनकी छाती का घेरा ४८ इंच था। फुला लेने पर तो वह ५६ इंच तक हो जाती थी। वे बड़े हँसमुख हैं, हँसी को वह स्वास्थ्य के लिये उपयोगी समझते हैं। पवित्रता को वह ब्रह्मचर्य की नींव समझते हैं। मन से वचन से शरीर से पवित्र रहो, सादा भोजन करो, सरल जीवन रक्खो, प्रतिदिन कसरत करो, इन्हीं बातों का वह उपदेश करते हैं और इन्हें ही संसार में सुखी होने के प्रधान उपाय समझते हैं। भारतीय युवकों की वर्तमान दुर्बलता देखकर वे दुःखी हैं। उनके उद्धार के लिये व्याकुल होकर वह कहते हैं—

"भारत के युवकों का उद्धार ही मेरे जीवन का उद्देश्य है। कृष्ण और लक्ष्मण, भीम और भीष्म या हनुमान जैसे हों या न हों, पर देश में युवकों की एक अजेय सेना तैयार हो, यही मेरी इच्छा थी और है"। देश के कोने कोने में घूमकर राममूर्ति ने युवकों को प्रोत्साहन दिया है। मन, वचन, तन और धन से राममूर्ति भारतवर्ष के सेवक बन गये हैं। भारत के बच्चो और युवको! क्या तुम यह प्रतिज्ञा नहीं कर सकते कि आज से हम हृष्ट पुष्ट, कसरती, बलवान और सदाचारी बनने की पूरी चेष्टा करेंगे?

## कठिन शब्दों के अर्थ

असाध्य-जो परिश्रम करने पर भी न पूरा हो सके। अलौकिक- जो साधारण आदमियों में न हो, असाधारण। डम्बेल्स— लोहे और काठ का होता है,

दोनों सिरों पर गेंद सा गोला और बीच में पतला एवं लम्बा। इसको हाथ में लेकर घुमाते और कसरत करते हैं। बीच में स्प्रिंग होते हैं। उन्हें दबाने से कलाई पर जोर पड़ता है। धाक- आतंक, रोब।

# पाठ २२ वाँ

## द्रव्य

गुरुजी—मोहन! इस लेखनी से पूछो कि यह क्या है?

मोहन— गुरुजी! लेखनी यह कैसे बतायेगी? वह न तो सुन सकती है, न बोल सकती है।

गुरु०— यह सुन नहीं सकती, जान सकती है?

मोहन— नहीं।

गुरु०— क्यों? तुम जान सकते हो और यह लेखनी नहीं जान सकती, इसका क्या कारण है?

मोहन विचार में पड़ गया। वह यह तो जानता था कि लेखनी जान नहीं सकती अर्थात् उसमें ज्ञान शक्ति नहीं है, पर वह यह नहीं जानता था कि क्यों नहीं है? वह सोच ही रहा था कि गुरुजी ने दूसरे लड़के से कहा—"महेन्द्र! तुम बता सकते हो कि लेखनी क्यों जान नहीं सकती?"

महेन्द्र— नहीं साहब! आप ही बताइये।

गुरु०— देखो, छोटी छोटी बातों पर— जो नित्य हमारे देखने में आती हैं- विचार करना चाहिये। लेखनी नहीं जान

सकती यह एक साधारण बात है परन्तु इसके कारणों में गहरा रहस्य है । अच्छा सुनो । वही जान या देख सकता है जिसमें चेतनता हो । ज्ञान और दर्शन-शक्ति ही चेतनता का लक्षण है । हममें यह चेतनता है, लेखनी में नहीं है । जिसमें चेतनता होती है उसे जीव कहते हैं। तुम हम तथा अन्य जान, देख, सुन, चल फिर और बढ़ सकने वाले जितने पदार्थ हैं उन सब में चेतनता अथवा चैतन्य है अत एव वे सब जीव हैं ।

जीव अनन्तानन्त हैं। उनकी गिनती नहीं हो सकती । फिर भी विचार करें तो उन्हें दो भागों में बाँट सकते हैं । एक मुक्त और दूसरा संसारी । मुक्त उन्हें कहते हैं जो तपश्चरण आदि द्वारा सब प्रकार के कर्मों से दूर होकर वीतराग हो चुके हैं । जब सारे कर्मों का क्षय हो जाता है, तभी मुक्ति अवस्था प्राप्त होती है ।

संसारी जीव उन्हें कहते हैं जो कर्मों के अधीन हो रहे हैं । इनके भी दो भेद हैं—त्रस और स्थावर। जिनमें त्रस नामक नाम कर्म है और जो चल फिर सकते हैं, वे त्रस कहलाते हैं। त्रस जीव भी दो प्रकार के हैं । सकल अथवा पंचेन्द्रिय एवं विकल । जिनमें पांचों इन्द्रियां हैं वे सकलेन्द्रिय अथवा पंचेन्द्रिय त्रस कहलाते हैं और जिन के दो तीन या चार इन्द्रियाँ हैं वे विकलेन्द्रिय त्रस कहे जाते हैं। जिनमें स्थावर नामक कर्म का उदय है जिन्हें एक ही इन्द्रिय होती है उन्हें स्थावर जीव कहते हैं। स्थावर जीव पांच प्रकार के हैं । १ पृथिवीकाय २ जलकाय ३ तेजकाय ४ वायुकाय ५ वनस्पतिकाय । पृथिवी

ही जिनका शरीर है वे पृथिवीकाय कहलाते हैं। जैसे बढ़ने वाले खानों के पत्थर । जल ही जिनका शरीर है वे जलकाय कहलाते हैं । इसी प्रकार पांचों के लक्षण समझना चाहिए ।

*इन सब जीवों में शक्ति की अपेक्षा कुछ विभिन्नता* नहीं है, परन्तु कर्मोदय के कारण उनकी शक्तियाँ अव्यक्त हो रही हैं। जब आत्मा सब कर्मों से विलग हो जाता है तब उसकी सब शक्तियाँ व्यक्त हो उठती हैं। उसी अवस्था को मोक्ष कहते हैं। ये जीवद्रव्य के स्वरूप और भेद हुए ।

मोहन— दूसरा द्रव्य कौनसा है ?

गुरु— जिसमें उपर्युक्त शक्तियाँ नहीं पायी जातीं वह जीव नहीं अर्थात् अजीव है। मुख्य द्रव्य यही दो हैं। इन में से अजीव के पाँच भेद हैं—(१) पुद्गल (२) धर्म (३) अधर्म (४) आकाश (५) काल ।

मोहन— पुद्गल किसे कहते हैं ?

गुरु— जिसे हम छू सकें, चख सकें, सूंघ सकें, देख सकें वह पुद्गल द्रव्य है । दूसरे शब्दों में, जिसमें स्पर्श रस गंध और वर्ण (रंग) पाया जाय वह पुद्गल है ।

महेन्द्र— गुरुजी ! आप मुझे देख सकते हैं तो मैं पुद्गल हुआ । मैं सब विद्यार्थियों को देख रहा हूँ तो ये पुद्गल हुए । संसार के सभी मनुष्य एक दूसरे को देखते हैं तो वे सब पुद्गल हुए, किन्तु मनुष्यों में जानने और देखने की शक्ति है इसलिए उन्हें तो जीव कहना चाहिये ।

गुरु०— हाँ, एक मनुष्य दूसरे को देखता है, यह साधारण-

तथा लोकव्यवहार है। वास्तव में हम किसी की आत्मा (जीव) को नहीं देख सकते, केवल उसके शरीर को देख सकते हैं और शरीर तो पुद्गल है ही।

पुद्गल के दो भेद हैं। (१) अणु और (२) स्कन्ध। अणु पुद्गल के सब से छोटे भाग को कहते हैं जिसे हम आँख से नहीं देख सकते। स्कन्ध अणुओं के समूह को कहते हैं जो प्राय आँखों से दिखायी पड़ता है। पुद्गल में अनन्त शक्ति है ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि जिन आठों कर्मों का उल्लेख पीछे के एक पाठ में किया गया है, वे एक प्रकार के पुद्गल ही हैं, जो आत्मा के स्वरूप को आच्छादित करके हमें नाना प्रकार के दुख देते और बुरे विचारों में घुमाते हैं। दोनों द्रव्यों के संघर्ष का परिणाम जीव की विकारमयी अवस्था है।

मोहन— अच्छा गुरुजी! धर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

गुरु०— धर्म द्रव्य उसे कहते हैं जो जीव और पुद्गलों के गमन करने में सहायक हो। यह द्रव्य समस्त लोक में व्याप्त है। यदि यह न होता तो जीव और पुद्गलों की गति नहीं हो सकती थी। धर्म द्रव्य किसी को चलने की प्रेरणा नहीं करता, यदि कोई चले तो उसे सहायता पहुँचाता है।

जैसे जल मछली की गति में सहायक होता है, विना जल के वह चल नहीं सकती परंन्तु चलने के लिए वह जबर्दस्ती नहीं करता।

इससे विपरीत अधर्म द्रव्य है। वह जीव और पुद्गलों की स्थिति में सहायक होता है। वह भी प्रेरणा नहीं करता वरन् उस वृक्ष की तरह उदासीनता से सहायता

पहुँचाता है जो कड़ी धूप में बटोहियों का सहायक होता है। यदि धर्म द्रव्य और अधर्म द्रव्य प्रेरणापूर्वक चलाने और ठहराने लगें तो विलक्षण स्थिति उत्पन्न हो जाय। क्योंकि दोनों नित्य हैं, व्यापक हैं और किसी से कोई निर्बल नहीं है। ऐसा हो तो धर्म द्रव्य ठहरने न देवे और अधर्म द्रव्य चलने न दे।

चौथा द्रव्य आकाश है। यह सब वस्तुओं को अवकाश प्रदान करता है। यदि आकाश न होता तो किसी को कहीं स्थान न मिलता। इसके दो भेद हैं—(१) लोकाकाश और (२) अलोकाकाश। लोकाकाश आकाश के उस भाग को कहते हैं जहाँ जीवादि पांच द्रव्यों की सत्ता है और अलोकाकाश उसे कहते हैं जहाँ आकाश के अतिरिक्त और कोई द्रव्य नहीं पाया जाता। पाँचवाँ अजीव काल है। काल उस द्रव्य को कहते हैं जो जीवादि पदार्थों के परिवर्तन का कारण होता है। काल के सिवा अन्य द्रव्यों के आगे 'अस्तिकाय' शब्द लगाया जाता है वह व्यर्थ नहीं है। जैसे--जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय आदि।

संसार में जितने पदार्थ देखे जाते हैं, उन सबका इन्हीं ६ द्रव्यों में समावेश है। इनके अतिरिक्त और कोई द्रव्य नहीं है।

## कठिन शब्दों के अर्थ।

लेखनी– कलम। रहस्य-- भेद। अनन्तानन्त– जिनका कभी अन्त

न हो सके। व्यक्त- प्रकट, प्रकाशित। अव्यक्त- अप्रकाशित, अप्रकट। विलग- अलग।

# पाठ २३ वाँ

## बुढ़ापा

(मनहर छंद)

बालपनै बाल रह्यो पीछैं गृहभार वह्यो,
लोक लाज काज बांध्यो पापन को ढेर है।
अपनो अकाज कीनो लोकन में जस लीनो,
परभौ विसार दीनो बिषै बस जेर है॥
ऐसे ही गई विहाय अलप सी रही आय,
नर परजाय यह आंधे की बटेर है।
आये सेत भैया अब काल है अवैया अहो,
जानी रे सयाने तेरे अजौं हूं अंधेर है॥१॥

(मत्तगयंद सवैया)

बालपनै न सँभार सक्यो कछु, जानत नाहिं हिताहित ही को।
यौवन वैस वसी वनिता उर, कै नित राग रह्यो लछमी को॥
यों पन दोइ विगोइ दयो नर, डारत क्यों नरकै निज जी को।
आये हैं सेत अजौं शठ चेत 'गई सो गई अब राख रही को'॥२॥

(मनहरछंद)

लार नर देह सब कारज को जोग येह,
यह तो विख्यात बात वेदन में बचै है।
तामैं तरुणाई धर्म सेवन को समै भाई,
सेये तब विषै जैसे माखी मधु रचै है॥
मोहमद भोये धन रामा हित रोज रोये,
यों ही दिन खोये खाय कोदौं जिम मचै है।
और सुन बौरे अब आये सीस धौरे अजौं,
सावधान हो रे नर नरक सौं बचै है॥३॥

(मत्तगयंद सवैया)

बाय लगी कि बलाय लगी, मदमत्त भयौ नर भूलत त्यों ही।
वृद्ध भये न भजै भगवान्, विषै विष-खात अघात न क्यों ही॥
सीस भयो बगुला सम सेत, रह्यो उर अंतर श्याम अजौं ही।
मानुषभौ मुकताफलहार गँवार, तगा हित तोरत यों ही॥४॥
दृष्टि घटी पलटी तन की छवि, बंक भई गति लंक नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रंक भयौ परियंक लई है॥
कांपत नार बहै मुख लार, महामति संगति छांरि गई है।
अंग उपंग पुराने परे, तिसना उर और नवीन भई है॥५॥

(कवित्त मनहर)

रूपको न खोज रह्यो तरु ज्यों तुषार दह्यो,
भयो पतझार किधौं रही डार सूनी सी।
कूबरी भई है कटि दूबरी भई है देह,
ऊबरी इतेक आयु सेर मांहि पूनी सी॥

जोबन ने विदा लीनी जरा ने जुहार कीनी,
हीनी भई सुधि बुधि सबै बात ऊनीसी।
तेज घट्यो ताव घट्यो जीतव को चाव घट्यो,
और सब घट्यो एक तिस्ना दिन दूनीसी।६।

अहो इन आयने अभाग उदै नाहिं जानी,
वीतराग वानीसार दयारस भीनी है।
जोवन के जोर थिर जंगम अनेक जीव,
जानि जे सताये कछु करुना न कीनी है॥
तेई अब जीवरास आये परलोक पास,
लेंगे बैर देंगे दुख भई ना नवीनी है।
उनही के भय को भरोसो जान कांपत है,
या ही डर डोकरा ने लाठी हाथ लीनी है।७।

जाको इंद्र चाहैं अहमिन्द्र से उमाहैं जासों
जीव मुक्ति माहिं जाय भौ-मल बहावै है।
ऐसो नरजन्म पाय विषै विष खाय खोयो,
जैसे कांच साटे मूढ़ मानक गमावै है॥
माया नदी बूडि भीजा काया बल तेज छीजा
आयो पन तीजा अब कहा बनि आवै है।
तातैं निज सीस ढोलै नीचे नैन किये डोलै,
कहा बढ़ि बोलै बृद्ध बदन दुरावै है ॥८॥

(मत्तगयंद सवैया)

देखहु जोर जरा भटको, जमराज महीपति को अगवानी।
उज्ज्वल केस निसान धरैं, बहु रोगन की संग फौज पलानी॥

कायपुरी तजि भाजि चल्यो जिहि, आवत जोवनभूप गुमानी।
लूट लई नगरी सगरी दिन दोय में खोय है नाम निसानी ॥९॥

दोहा।

सुमतिहि तजि जोबन समय, सेवइ विषय विकार।
खलसाटै नहिं खोइये, जन्म—जवाहिर सार ॥१०॥

## कठिन शब्दों के अर्थ

परभौ (भव)- परलोक। विसार दीनो- भुला दिया। जेर- फंसा हुआ। आय (आयु)- उम्र। आंधे की बटेर है- अचानकही होने के अर्थ में मुहाविरा है। सेत- सफ़ेद बाल। वैस (वयस्)- अवस्था। विगोइ दयौ- खो दिया। रचै है- अनुरक्त होती या होता है। भोये- मग्न हुए। कोदौं- एक प्रकार का अनाज। मचै है- उन्मत्त होजाता है। बौर- पागल, नादान। सीस धोरे- सिर पर सफेद बाल। अजौं- अब भी। बलाय- भूत देवता आदि। तगा- तागा धागा। बंक- टेढ़ी। लंक- कमर। नई है- नम गई है। रूस रही- रूठी रही। परियंक (पर्यङ्क) खाट। नार- गर्दन। महामति- सुबुद्धि। कटि- कमर। ऊबरी- बाकी। जरा ने जुहारु कीनी- बुढ़ापे का आगमन हुआ; आते समय जुहारु की जाती है। थिर-जंगम- स्थावरत्रस। उमाहैं- चाहते हैं। सांटे- बदले में। बूड़ि- डूबकर। पन तीजा- तीसरी अवस्था, बुढ़ापा। दुरावै- छिपाता है। जराभट- बुढ़ापा रूपी योद्धा। अगवानी- आगे २ चलने वाला, मुखिया। गुमानी- घमण्डी।

# पाठ २४ वाँ

## आत्मा की सिद्धि

बच्चो! बहुत लोग कहा करते हैं कि आत्मा कोई चीज़ नहीं है। किन्तु विचार करने पर इसका अस्तित्व जान पड़ता है। यह तो सभी अनुभव करते हैं कि शरीर से भिन्न भी कोई चीज़ हममें अवश्य है। आज कल के अनेक पश्चिमीय वैज्ञानिकों ने इतनी उन्नति की है कि वे विभिन्न कल पुरजों के सहारे स्वतः कार्य करने वाले यन्त्र बना लेते हैं पर ये यन्त्र भी केवल एक ही काम कर पाते हैं, जिसके लिये वे बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त उनमें सोचने समझने परिस्थितियों पर विचार करके वैसा कार्य करने की शक्ति नहीं होती। इसका कारण स्पष्ट है। ऐसा समय आ सकता है जब बड़े बड़े वैज्ञानिक और डाक्टर शरीर की रचना कर दें किन्तु सब प्राणिसमूह को स्वतंत्र रूप से चलाने वाला जो नित्य प्राणप्रवाह है उसे कोई जड़ वस्तुओं के संमिश्रण से नहीं बना सकता। जड़ के संयोग से जड़ पदार्थों की ही उत्पत्ति हो सकती है। चेतन की नहीं। यही प्राण जिसमें पाये जाते हैं वही चेतन आत्मा है।

लोग पूछेंगे कि यदि आत्मा जड़ पदार्थों के संयोग से पैदा नहीं होती तो फिर किस तरह उत्पन्न होती है?। ऊपर आत्मा का जो लक्षण बताया गया है उसी पर विचार करने से इसका उत्तर स्पष्ट हो जाता है और वह यह कि आत्मा उत्पन्न होती ही नहीं। उत्पन्न वह चीज़ होती है जो न हो किन्तु आत्मा सदा से है और सदा रहेगी। जब शरीर, जो

उसका आधार है, अयोग्य हो जाता है तब वह दूसरा आधार अथवा दूसरा शरीर धारण करती है। ऐसा नहीं है कि शरीर के साथ आत्मा भी नष्ट हो जाती है। वह न कभी मिटती है न बनती है। वह अनादि और अनन्त है! तथा पृथिवी इत्यादि पंच भूतों से बनी हुई नहीं है।

आत्मा के विषय में एक बार प्रदेशी राजा ने महाराज केशी श्रमण से प्रश्नोत्तर किया था जो बहुत मनोरंजक और शिक्षाप्रद है। प्रदेशी राजा ने कहा—"महाराज! एक बार की बात है कि हमारा कोतवाल एक चोर पकड़ कर लाया। मैंने उसे एक लोहे के कमरे में ठूंस दिया। कमरा इस ढंग का था कि उसमें बन्द कर देने पर हवा का भी प्रवेश न हो सकता था। थोड़ी देर बाद देखा कि चोर मरा हुआ पड़ा था। महाराज! यदि शरीर और आत्मा भिन्न पदार्थ होते तो आत्मा कहाँ चली जाती? उसके बाहर निकलने का कोई मार्ग न था। इससे तो ऐसा ज्ञात होता है कि दोनों एक ही हैं।"

राजा की बात सुन कर केशी श्रमण महाराज बोले—'राजन्! तुम्हारा कहना ठीक नहीं है। जीव अरूपी है। उसकी गति किसी से रुक नहीं सकती। छिद्र न होने पर भी जीव का गमन और आगमन हो सकता है। एक मकान को बिल्कुल बंद कर दो, एक भी छिद्र न रहे। फिर उसके अन्दर ढोल बजाया जाय तो तुम उसकी आवाज़ सुन सकते हो या नहीं? अवश्य सुनोगे, जब मूर्तिक शब्द बिना छेद के बाहर निकल सकता है तो अमूर्तिक आत्मा बिना छेद के क्यों नहीं निकल सकती? अवश्य निकल सकती है। तात्पर्य यह कि छेद न होने से आत्मा और शरीर की एकता नहीं सिद्ध होती।

प्रदेशी०— महाराज ! एक चोर को मारकर हमने कोठरी में डाल दिया था। कुछ दिनों बाद देखा तो उसका शरीर कीड़ों से भरा हुआ था। दीवारों में एक भी छिद्र न दिखायी दिया कि जिससे उन कीड़ों को कोठरी के भीतर प्रवेश करने की जगह मिलती। इस घटना से मालूम होता है कि उसी शरीर से जीव बन गये होंगे अतः आत्मा और शरीर भिन्न नहीं हैं।

केशीश्रमण-भूपाल ! इसका उत्तर पहले हो चुका है। जीव की गति को दीवारों की बात जाने दो, पर्वत भी नहीं रोक सकता। तुमने कभी लोहे का गोला देखा है ?

प्रदे०— हाँ महाराज, देखा है।

श्रम०— अच्छा उसमें अग्नि प्रवेश करती है ?

प्रदे०— हाँ।

श्रम०— क्या उस गोले में छेद होते हैं ?

प्रदे०— नहीं।

श्रम०— जब मूर्तिक अग्नि गोले में घुस जाती है और गोले में छेद नहीं होता तो अमूर्तिक आत्मा कमरे में घुस जाय और कहीं छेद न हो, इसमें आश्चर्य क्या है? इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होता कि शरीर और आत्मा एक ही हैं।

प्रदे०— महाराज ! आप यह मानते हैं कि आत्मा में अनन्त शक्ति है। यदि यह सच है तो एक बूढ़ा आदमी जवान आदमी की तरह बोझ क्यों नहीं उठा सकता? यदि बूढ़े बालक और जवान समान भार उठा सकें

तो आपकी बात मान्य हो सकती है अन्यथा मेरी यही बात ठीक है कि आत्मा और शरीर एक है।

के०श्र०— नरेश! तुम्हारे अन्दर जानने की शक्ति है पर क्लोरोफार्म सुँघा देने से वह दब जाती है। उसी प्रकार आत्मा में अनन्त शक्ति है पर वह कर्म रूपी क्लोरोफार्म से दबी हुई है। मान लो, समान बल वाले दो युवक हैं। एक के पास नई और मजबूत कावड़ है और दूसरे के पास पुरानी और कमज़ोर। क्या वे दोनों बराबर बोझ उठा सकते हैं ?

प्रदे०— नहीं, महाराज!

के०श्र०— बस। इसी प्रकार बालक वृद्ध और युवा तीनों की आत्माएँ शक्ति रखते हुए भी बराबर भार नहीं वहन कर सकतीं।

प्रदे०— महात्मन्! किसी समय हमारा कोतवाल एक चोर पकड़ कर मेरे पास लाया। मैंने तलवार से उस चोर के टुकड़े टुकड़े करके उसमें आत्मा को बहुत खोजा पर वह कहीं न दिखायी दी। तब फिर मैं कैसे उसे शरीर से भिन्न मानूं ?

के०श्र०— राजन्! यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आत्मा अमूर्तिक है और जो अमूर्तिक है उसे तुम कैसे देख सकते हो ? चकमक पत्थर में अग्नि होती है, अरणी की लकड़ी से भी अग्नि प्रज्वलित की जाती है, फूल में सुगंध होती है किन्तु चकमक, अरणी की लकड़ी या फूल के टुकड़े करके भी तुम उनमें

अग्नि या सुगंध को देख नहीं सकते यद्यपि ये वस्तुएँ मूर्तिक हैं। जब मूर्तिक वस्तुओं में से अनेक को देखने की शक्ति हम में नहीं है तो अमूर्तिक आत्मा को शरीर के टुकड़े टुकड़े करके खोजना क्या हास्यास्पद नहीं है ?

इतनी बातचीत के बाद प्रदेशी राजा ने सन्तुष्ट हो आत्मा का अस्तित्व स्वीकार कर लिया।

### कठिन शब्दों के अर्थ

अस्तित्व-- सत्ता, होना। नित्य-- सदैव रहने वाला। पंचभूत-- जल, पृथिवी, अग्नि, आकाश और हवा। मूर्तिक- जिस में रूप रस आदि हों। अमूर्तिक- जिसमें रूप आदि न हों। क्लोरोफार्म- बेहोशी का एक अंग्रेजी दवा। हास्यास्पद -- हँसी के योग्य, अविचार पूर्ण।

# पाठ २५ वाँ

## जलवर्षक वृक्ष

अमेरिका के पूर्व में एटलाण्टिक नामक महासागर है जिसमें फेरो एक टापू है। प्राचीन काल में यहां न पानी बरसता था और न किसी प्रकार का जलाशय—नदी, नाला, सोता आदि ही था। वहां के निवासी कुँआ खोद कर जल निकालना भी न

जानते थे ऐसी अवस्था में बिना जल के उनका जीवित रहना नितान्त असंभव था किन्तु प्रकृति ने वहां एक विचित्र रूप धारण किया। वहां एक प्रकार के पेड़ थे जो जलवर्षक वृक्ष कहे जाते थे, इन्हीं से प्रचुर जल मिलता था। और टापू के निवासियों का सारा काम इन्हीं से चलता था। यात्रियों ने इनका दर्शन किया और उनका हाल भी लिख डाला। इनमें से एक अंगरेज यात्री श्री लूहस जैकसन ने इस अद्भुत वृक्ष के विषय में यों लिखा है-

"यह वृक्ष ओक, सिन्दूर, बलूत के समान मोटा, ४०—४८ फुट ऊंचा और डालियों वाला होता है। इसकी पत्तियों का ऊपरी तल श्याम और भीतरी सफेद होता है। इसमें न तो फूल लगते हैं न फल। दिन को पत्तियां सूर्य की कड़ी किरनों से झुलस जाती हैं पर रात को उनसे पानी की बूंदें टपकने लगती हैं। हर रात को बादल की टोपी उसके सर पर देखकर आश्चर्य होता है और यह आश्चर्य और भी बढ़ जाता है, जब देखते हैं कि पानी जो जड़ के पास एकत्र होकर बहने लगता है इस बादल से नहीं आता वरन् पेड़ से पसीजता अर्थात् पसीने सा छूटता है। बहुत जांच के अनन्तर यह निश्चय किया गया है कि प्रत्येक पेड़ से एक रात में कम से कम बीस हजार टन * पानी निकलता है।

ये वृक्ष टापू भर में छिटके थे। इनसे निकला हुआ जल १५० मील के घेरे में टापू के रहने वाले नरनारी और पशुओं की आवश्यकता को दूर करता था। जैकसन साहब इस भांति अपने विवरण की समाप्ति करते हैं—"यदि मैंने अपनी आंखों इस पेड़

* एक टन २७ मन से कुछ अधिक होता है।

को न देखा होता तो इसके अस्तित्व पर कभी विश्वास न करता।"

सन् १८७७ की ८ वीं सितम्बर के 'इंग्लिशमैन' नामक अंग्रेजी समाचार पत्र के अंक में उसके सम्पादक ने लिखा है कि भारतवर्ष में सूखा बहुत पड़ता है अतएव हमारे सरकारी उद्यानों के व्यवस्थापकों को उस पेड़ की ओर ध्यान देना चाहिये जो पेरू देश के मोयोयाम्बा नगर के जंगलों में पाया जाता है। अमेरिकावाले इसे 'तामियाकास्त्री' अर्थात् जलवर्षक वृक्ष कहते हैं। सुनते हैं कि यह अद्भुत वृक्ष वायुमण्डल की नमी को खींच लेता है और अपनी डालियों तथा पत्तों से उसे बरसाता है, यहां तक कि वह पृथ्वी को पानी से सराबोर कर डालता है। गर्मी में जब नदियां घटजाती हैं और जल दुर्लभ हो जाता है उस समय उसकी यह शक्ति बहुत बढ़ जाती है। एक महाशय ने परीक्षा करके पेरू सरकार से निवेदन किया है कि कृषि के लाभ के लिए देश के सूखे भागों में इसके लगाने का प्रयत्न किया जाय।

## कठिन शब्दों के अर्थ

नितान्त- बिलकुल। ओक, सिन्दूर और बलूत- ये वृक्षों के नाम हैं। श्याम- काला आसमानी रंग का। नमी- तराई, गीलापन। सराबोर- लथपथ।

# पाठ २६ वाँ

## संक्षिप्त धर्म-परीक्षा

(गुरु शिष्य संवाद)

शिष्य—हे भगवन्! संसार में अनेक जीव ऐसे हैं जो धर्म के यथार्थ रूप को नहीं जानते फिर भी उन्हें धर्म शब्द अत्यंत प्यारा लगता है। इसका क्या कारण है?

गुरु— वत्स! धर्म जीव का स्वरूप है धर्म ही जीव का स्व-भाडार है इसीलिए धर्म शब्द सब को प्रिय लगता है। जब सांप के मंत्र का उच्चारण किया जाता है तो वह भी प्रसन्न होकर अपना जहर चूस लेता है। इस प्रकार के मंत्र में सर्प की प्रशंसा रहती है जिससे वह प्रसन्न हो जाता है। इसी प्रकार धर्म जीव का स्वभाव है जिस के कारण वह उसको बड़ा प्रिय लगता है।

शिष्य—महाराज! संसार में लोग धर्म को शरीर से उत्पन्न होने वाला अथवा उसके द्वारा पूर्ण होने वाला बताते हैं किन्तु आप उसे जीव का स्वरूप बताते हैं अतएव इस विषय को और स्पष्ट करके समझाने की दया करें।

गुरु— तुम जानते हो कि चेतना जीव का लक्षण है, वही उसका धर्म है। चेतन में अनन्त गुण हैं जिनमें तीन मुख्य हैं—(१) सम्यग्ज्ञान (२) सम्यग्दर्शन (३) सम्यक् चारित्र। यह चेतना धर्म सदैव जीव में रहता है। निगोद (अर्थात् अत्यंत नीच अवस्था) में भी चेतना धर्म

जीव से अलग नहीं होता वहां भी वह सदैव बना रहता है। हां इतना अवश्य है कि चेतना रहते हुए भी उतने समय तक जीव उसे पहचान नहीं सकता और वैसे ही भूला रहता है जैसे किसी बालक की बाल्याव-स्था में उसके माता पिता चिन्तामणि बांध दें और बालक में समझ आने के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो जाय; तो वह चिन्तामणि रहते हुए भी दरिद्र और दुःखी रहेगा क्योंकि वह नहीं जानता कि हमारे गले में क्या है और उसका किस प्रकार उपयोग करना चाहिये। जब कोई जानकार उससे कहेगा तो भी अज्ञान के कारण उसकी उसपर श्रद्धा न होगी और वह नाना प्रकार के कष्ट भोगे-गा। उसके अशुभ कर्मों का जोर उसे ज्ञान न होने देगा। इसी प्रकार जीव संसार के मायाजाल में लगा हुआ है वह सद्गुरु द्वारा उपदेश पाने पर भी और चेतना धर्म के पास रहते हुए भी विश्वास नहीं करता। हमारे घर में धन गड़ा हुआ है पर जब तक हमें मालूम न हो, हम उससे क्या लाभ उठा सकते हैं यदि कोई जानने वाला आदमी कहे भी कि तुम्हारे घर में धन गड़ा है और हम उसकी बात पर विश्वास न करें तो धन के गड़े रहते हुए भी हम उसका उपयोग करने से वंचित हैं। यदि उसको विश्वास आगया तो उसका उपयोग कर वह अपने को सुखी बना सकता है। इसी प्रकार चेतनाधर्म सदैव इस जीव के पास ही है। सद्गुरु मिलने पर तथा उसकी बात पर श्रद्धा रखके तदनुसार कार्य करने पर लघुकर्मी जीव चेतना धर्म प्राप्त करके सुखी होजाता है।

शिष्य—भगवन्! एक बात समझ में नहीं आई। जीव की निज वस्तु उसके पास ही है तो फिर कौन सी वस्तु प्राप्त करना शेष रहा? उसे यह जीव भूल गया अथवा खो बैठा, यह कैसे हो सकता है!

गुरु— वत्स! यह जीव अनादि काल से रागद्वेष के वश होकर अपने चेतना धर्म को भूला हुआ है। जैसे एक जलाशय निर्मल, मधुर और शीतल जल से भरा हुआ है। पीछे उसपर काई अथवा शैवाल छा गया। अब तो वे गुण वैसे न रहे। पहले जैसी शीतलता न रही, निर्मलता नष्ट हो गयी और मिठास दूर हो गया। यही हाल जीव का भी है उसका चेतनाधर्म कुसंस्कार और राग द्वेष से दब गया है। एक बात और समझ लेनी चाहिये कि शैवाल जल से ही उत्पन्न होता है। इसी प्रकार राग द्वेष इत्यादि नाना प्रकार की वासनाएँ जीव से ही पैदा होकर उसी के चेतनाधर्म को दबा देती और अशक्त कर डालती हैं। इन दोनों में अन्तर यही है कि जीव से राग द्वेष इत्यादि का सम्बन्ध अनादि काल से है किन्तु शैवाल और जल का सम्बन्ध अनादिकाल से नहीं है।

इन बातों से सन्तुष्ट होकर शिष्य ने गुरुजी के चरणों में विनम्र भाव से प्रणाम किया।

कठिन शब्दों के अर्थ।

यथार्थ-ठीक। चिन्तामणि-वह स्वर्गीय रत्न जिसके द्वारा सब इच्छाएँ पूर्ण की जा सकती हैं। शैवाल-सेवार, पानी के ऊपर होने वाली हरे रंग की एक प्रकार की जाल-दार घास।

# पाठ २७ वाँ

## जंगलीपन की निशानी—तम्बाकू

आजकल तम्बाकू का प्रचार इतना बढ़ गया है कि पढ़े लिखे, मूर्ख गँवार, बालक वृद्ध, धनी निर्धन सभी उसके चंगुल में फँस गये हैं। स्टेशन, बाग, घर, रेल गाड़ी, बाजार सर्वत्र इसका प्रभुत्व है। इतना ही क्यों? अनेक जातियों में तो यह जातीय सम्मान के रूप में बर्ता जाता है। जो जाति में रहते हैं उनके साथ हुक्का पिया जाता है अन्यथा नहीं।

तम्बाकू का इतना प्रचार क्यों हो गया? इसीलिए कि लोग यह नहीं जानते कि यह स्वास्थ्य का कैसा घोर शत्रु है और इसके विषमय प्रभाव में आकर कितने ही अपनी कर्तव्यनिष्ठा खो बैठते हैं। इसके निरन्तर सेवन से खून खराब हो जाता है। अधिकांश पढ़े लिखे और सभ्य आदमियों से यदि पूछा जाय कि आप इसे क्यों पीते हैं तो वे कुछ ठीक जवाब न दे सकेंगे। इसका कारण केवल यह है कि उन्होंने देखादेखी, सभ्यता और फैशन समझ कर इसे अपना लिया है। वे दूसरों की नकल करते हैं। आज संसार में कदाचित् ही कोई ऐसा देश हो जो इस जंगली वस्तु के प्रभाव से दूषित न हो रहा हो।

कोलम्बस के नयी दुनिया अर्थात् अमेरिका के खोज करने के पहले एशिया अथवा यूरोप में कोई तम्बाकू का नाम भी नहीं जानता था। सन् १४९२ ई० के नवम्बर मास में जब कोलम्बस ने 'क्यूबा' द्वीप ढूँढ निकाला तो उसने अपने कुछ साथियों को

द्वीप के अंदर वहां के जंगलियों का हाल चाल जानने के लिए भेजा। कोलम्बस के साथी जब उस द्वीप के भीतरी भाग में पहुँचे तो वहां उन्होंने जंगल के बाशिंदों के मुँह और नाक से धुँआ निकलते देखा। यह देखकर उनको बड़ा विस्मय हुआ। लौटकर उन्होंने अपने सरदार को इसकी सूचना दी और कहा कि काले काले 'क्यूबा' निवासी नंगे घूमते हैं और बड़े बड़े पत्तों को लपेटकर उनका एक सिरा जला दूसरे को मुँह में रख शैतान की तरह धुँआ निकालते हैं।

इसी दिन से इस शैतानी और जंगली आदत का आरंभ समझिये। कोलम्बस उन पत्तों को कोई अजीब चीज़ समझकर अजायबघर में रखने के लिये उन्हें यूरप ले गया। वहां कुछ अनभिज्ञ तथा आलसी स्पेन देश के अमीरों ने उस जंगली आदत का मज़ा लेना चाहा। बस फिर क्या था? लगे लोग देखादेखी एक दूसरे की नकल करने: एक प्रथा चल गयी।

१४९४ ईस्वी में जब कोलम्बस ने दूसरी बार अमेरिका की यात्रा की तो उसके साथियों ने वहां के आदमियों को तम्बाकू सूँघते देखा। इसकी चर्चा भी यूरप पहुँची और अमीरों के घर की स्त्रियों ने दिल्लगी दिल्लगी में सुँघनी का प्रयोग आरंभ कर दिया। भरी समाज में जब छींकों की झड़ी लग जाती तो लोग हँसते हँसते लोट पोट हो जाते थे। धीरे धीरे दिल्लगी की यह चीज़ सभ्य समाज की स्त्रियों की प्यारी आदत हो गयी और तम्बाकू सूँघना एक नया फैशन होगया।

१५०३ ईस्वी में स्पेन वाले 'पोरागुआ' नामक प्रांत विजय करने गये तो वहां के निवासियों ने बहुत बड़ी संख्या में उनका

सामना किया। वे बड़े ज़ोर से ढोल बजाते हुए पानी फेंक कर तथा तम्बाकू चबाते हुए हमला करते थे। निकट आने पर उन्होंने तम्बाकू के रस को स्पेन के सिपाहियों की आंखों में फेंकना आरंभ किया। उस जमाने में बम गोले और हवाई जहाज न थे, हाथापाई होती थी, अतएव तम्बाकू चबाने वाले जंगली सहज ही स्पेन के सिपाहियों की आंखों में उसका रस डालकर उन्हें अन्धा कर देते थे। उन जंगली जातियों के लिए स्वत्वरक्षा का यह एक अच्छा साधन था। जब स्पेन वाले उस देश को विजय करके स्वदेश लौटे तो उन्होंने तम्बाकू चबाने की आदत का यूरप में प्रचार किया।

अब यूरोपीय व्यापारियों की बन आयी। स्वार्थ-साधन का अच्छा अवसर देखकर उन्होंने इसका प्रचार करना आरंभ कर दिया। नाना प्रकार से तम्बाकू का दुरुपयोग होने लगा। तम्बाकू में खुशबू भी मिलायी जाने लगी। उसकी प्रशंसा में कवियों ने कविताएँ भी लिख डालीं।

यूरप के ये स्वार्थी व्यापारी इतना ही करके चुप नहीं रहे। उन्होंने एशिया में भी इस जंगली प्रथा को फैलाने की बड़ी कोशिश की। सबसे पहले मुगल सम्राट अकबर को कुछ व्यापारियों ने यह तम्बाकू उपहार स्वरूप दी। फिर धीरे धीरे सर्वत्र इसने अपना अधिकार कर लिया। अब क्या है, अब तो काशी के धर्माभिमानी पण्डितों से लेकर सभ्य बाबुओं तक को इसने अपना दास बना लिया है। कोई सुँघनी सूंघता है। कोई सुरती खाता है, कोई तम्बाकू पीता है, कोई सिगरेट और सिगार फूंकता है। बड़ी बड़ी दुकानें खुल गयी हैं। खूब विज्ञापनबाजी होती है। गरीब मजदूर खों खों करते हुए इसे पीते हैं और आजकल के बाबू भकाभक धुँआ उड़ाते हैं। छोटे छोटे बच्चों तक में बीड़ी, सिगरेट का शौक

देखा जाता है। यह सब यूरप से आई हुई इस कुरीति का फल है।

बच्चो! यदि तुम में कोई तम्बाकू पीता, खाता सूँघता या चबाता है तो हमारी तुमसे प्रार्थना है कि अपनी बुद्धि से विचार करो कि इससे तुम्हें क्या लाभ है? तुम्हें मालूम होगा कि तुम अपना समय, धन और स्वास्थ्य व्यर्थ खो रहे हो। क्या अमेरिका की एक जंगली जाति की इस घृणित प्रथा को अपनाना तुम्हें शोभा देता है?

तम्बाकू एक बड़ा जहरीला पदार्थ है। आध सेर तम्बाकू में जितना ज़हर होता है उसका पूरा प्रभाव मनुष्यों पर हो सके तो उससे तीन सौ आदमी मर सकते हैं। एक सिगरेट के विष के प्रभाव से दो आदमियों की मृत्यु हो सकती है। तम्बाकू का रस खेती को हानि पहुँचाने वाले कीड़ों के मारने के काम में आता है। अमेरिका के कृषक लाखों मन तम्बाकू का रस इस काम में लाते हैं। यदि आप सिगार को खोल कर पत्तों को चौड़ा करके अपने पेट पर रख लें और कपड़े से बांध दें तो कुछ देर बाद उन के विष का प्रभाव आपको स्वयं मालूम हो जायगा।

जो तम्बाकू इतनी विषैली है, उसके सेवन से नीरोग मनुष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा, बुद्धिमान पाठक इसको स्वयं समझ सकते हैं। अनुभव की बात है कि रेल में जब किसी तम्बाकू या सिगरेट पीने वाले के पास इसका सेवन न करने वाले मनुष्य को बैठना पड़ता है तो उसकी जान आफत में आ जाती है। यही दशा उन लोगों की होती है जो पहले पहल तम्बाकू पीना सीखते हैं। छोटे छोटे बच्चे जब अचानक उस कमरे में चले जाते हैं

जहां उनके पिता या अन्य बंधुगण तम्बाकू पी रहे हों तो वहां उनका दम घुटने लगता है।

लोग पूछेंगे कि यदि तम्बाकू ऐसी विषैली वस्तु है तो इसके पीने वाले सभी लोग मर क्यों नहीं जाते? इसका कारण यह है कि वे धीरे धीरे ऐसी आदत डालते हैं और जब शरीर अभ्यास-वश उसको सहन करने योग्य हो जाता है तो उन्हें कुछ कष्ट मालूम नहीं होता। इसी प्रकार अनेक विषैली चीजें जो त्याज्य हैं लोग धीरे धीरे उनके दास हो जाते हैं। जैसे धतूरा, भांग, चरस, गांजा, अफीम, कोकीन तथा संखिया इत्यादि विषैली चीज़ों का अभ्यास भी मूर्ख लोग करते हैं। संखिया तो प्राणान्तक विष ही है। इन्हें यदि पहली बार ही अधिक मात्रा में खाले या पीले तो मनुष्य तुरंत मर जाय। इसीलिए मूर्ख और नशेबाज़ इनका धीरे धीरे अभ्यास डालते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि धीरे धीरे सेवन का अभ्यास करने वाले हानि नहीं उठाते। तम्बाकू या इसी प्रकार की अन्य जहरीली चीज़ों का सेवन करने वाला जल्दी मर जाता है। उसे तपेदिक, दमा, कफ, खांसी आदि अनेक बीमारियां घर दबाती हैं।

इसलिए हे बच्चो! तुम कभी किसी के बहकावे या लालच में आकर तम्बाकू या अन्य किसी नशे का सेवन न करना।

## कठिन शब्दों के अर्थ

फैशन- चाल, बिना लाभ हानि का विचार किये दूसरों की नकल करना।

कोलम्बस- यूरप के स्पेन देश का निवासी था। यह भारतवर्ष को खोजने

निकला तो इसका जहाज अमेरिका की भूमि से जा लगा। अतएव यही अमेरिका का पता लगाने वाला माना जाता है। प्राणान्तक-प्राण ले लेने वाला।

# पाठ २८ वाँ

## अन्योक्तियां

(वैश्य)

बारे कौ तू बनिक है सौदा लै इहि हाट।
चौमुख बनो बजार है बहु दुकान को ठाट॥
बहु दुकान को ठाट कोऊ सांची कोऊ झूठी।
आछी भांति विचार वस्तु लै बड़ी अनूठी॥
बरनै 'दीनदयाल' खोउ धन वृथा न प्यारे!।
घर आवेगो काम इते सब लूटन वारे॥

(किसान)

आछी भांति सुधारकै, खेत किसान बिजोय।
न तु पीछे पछतायगो समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय नहीं फिर खेती ह्वै है।
लै है हाकिम पोत कहा तब ताको दैहै॥
बरनै 'दीनदयाल' चाल तजि तू अब पाछी।
सोउ न सालि सम्हालि बिहंगनि तें बिधि आछी॥

(गुलाब)

नाहीं भूलि गुलाब तू! गुनि मधुकर गुंजार।
यह बहार दिन चार की बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार होहिंगी ग्रीखम आए।
लुवैं चलैंगी संग अंग सब जैहैं ताए॥
बरनै 'दीनदयाल' फूल जौलौं तो पाहीं।
रहे घेरि चहुँ ओर फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥

(निशाकर)

दानी अमृत के सदा देव करैं गुनगान।
सुनो चंद! बंदै तुमैं मोदनिधान जहान॥
मोदनिधान जहान संभु सिर ऊपर धारें।
देखि सिंधु हरखाय निकाय चकोर निहारें॥
बरनै 'दीनदयाल' सबै तुमको सुखखानी।
एक चोर बरजोर घोर निंदैं दुखदानी॥

(सर)

कोलाहल सुनि खगन के सरवर! जनि अनुरागि।
ये सब स्वारथ के सखा दुरदिन दैहैं त्यागि॥
दुरदिन दैहैं त्यागि तोय तेरो जब जैहै।
दूरहिं ते तजि आस पास कोऊ नहिं एहै॥
बरनै 'दीनदयाल' तोहि मथि करिहैं काहल।
ये चल कुल के मूल भूल मति सुनि कोलाहल॥

### कठिन शब्दों के अर्थ ।

वारे कौ- दूसरी जगह का । चौमुख बनौ बजार है- चौपड़ का बाजार है, पक्ष में चार गति वाला संसार है । इते- यहां । बिजोय- बो । पोत- कर, लगान । सालि- धान । बिहंग- पक्षी । कटीली- कांटे वाली । डार- डाली, टहनी । लुवें- (लू का बहुवचन) गरम हवा । जैहै ताए- तप जावेंगे । मोदनिधान- आनन्द का खजाना । निकाय- समूह । बरजोर- जबरदस्त, लुटेरा । खगन- पक्षियों। तोय- पानी, जल । एहै- आवेगा । काहल- मैला । मति- नहीं, जिन ।

# पाठ २९ वाँ

## अमृत-वाणी

(पाल रिशार नामक विद्वान के विचार)

(१)

**मृत्यु जीवन का दूसरा रूप है, जिस प्रकार जीवन मृत्यु का दूसरा रूप है ।**

(२)

**आज का जो कर्म है, वही कल का भाग्य है ।**

(३)

**तू अपने शत्रुओं से प्रेम कर । इससे तेरा कोई शत्रु रहेगा ही नहीं । शत्रु से प्रेम करना ही उसे हटा देना है । अपने धिक्कारने वाले पर यदि तू प्रेम की वर्षा करता रहेगा तो वह तेरा बिगाड़ ही क्या सकेगा?**

(४)

निन्दा करने वालों को तू निन्दा ही करने दे। उन्हें उत्तर मत दे।

(५)

जो निर्धन हैं वे धन्य हैं क्योंकि वे त्रिभुवन के स्वामी हैं।

(६)

जब तुम फौज में भरती होकर और खाकी पोशाक पहन कर हत्या करते हो तब तुम्हारी प्रशंसा होती है। परन्तु क्या बढ़िया पोशाक पहनने से ही हत्या बढ़िया हो जाती है? मारने में तो वीरता हो ही नहीं सकती।

(७)

चाहे एक मनुष्य की हत्या हो चाहे एक जाति या सेना की हत्या हो, सब एक समान निन्द्य हैं।

# पाठ ३० वाँ

## कितना और कितनी बार खाना चाहिए?

इस विषय में डाक्टरों में मतभेद है कि कितना खाना चाहिये। एक डाक्टर की राय है कि खूब खाना चाहिये। इन्होंने भिन्न भिन्न प्रकार के भोजनों का उनके गुणों के अनुसार वजन भी नियत कर दिया है। दूसरा कहता है कि शारीरिक और मानसिक श्रम करने वालों के भोजन परिमाण और गुण दोनों दृष्टियों से भिन्न होने चाहिए। तीसरे का मत है कि राजा रंक

दोनों को बराबर खूराक मिलनी चाहिए। यह आवश्यक नहीं है कि गद्दीधरों और मजदूरों के भोजन के परिमाण में अधिक अन्तर हो। पर इतना सब लोग जानते हैं कि निर्बल और बलवान के भोजन के परिमाण में भिन्नता होनी चाहिए। पुरुष स्त्री, युवक वृद्ध तथा बालक युवक की खुराक में अन्तर होता है। एक लेखक का यह कहना है कि यदि हम अपने भोजन को इतना कुचलें कि मुँह में ही उसका पूरा रस बनकर लार द्वारा वह गले के नीचे उतर जाय तो हम पांच से लेकर दस रुपये भर की खूराक से अपना निर्वाह कर सकते हैं। इसने स्वयं हजारों प्रयोग किये हैं। उसकी पुस्तकों की हजारों प्रतियां बिक चुकी हैं। लोग उन्हें खूब पढ़ते हैं। ऐसी दशा में भोजन का परिमाण निश्चित कर देना असंभव है।

अधिकांश डाक्टरों ने लिखा है कि सैकड़े पीछे निन्नानबे मनुष्य आवश्यकता से अधिक खाते हैं। यह एक ऐसी साधारण बात है कि डाक्टरों के बिना लिखे भी लोग इसे आसानी से समझ सकते हैं। लोग स्वाद के फेर में पड़कर उससे अधिक भोजन कर जाते हैं जितना उनकी पाचनशक्ति पचा सकती है। सारी बीमारियों की जड़ यही बात है।

भोजन के सम्बंध में दो बातों पर खूब ध्यान देना चाहिए। एक तो यह कि भोजन हलका, सादा और सुरुचिवर्द्धक हो और दूसरा यह कि वह आवश्यकतानुसार ही हो, अधिक नहीं। भोजन करते समय खुराक को खूब चबाने की जरूरत है। ऐसा करने से हम थोड़ी खूराक से भी अधिक सार भाग ग्रहण कर सकेंगे और हमारा शरीर हलका एवं पुष्ट रहेगा। इससे भोजन जल्दी पचता है, पाखाना साफ होता है, तबीयत हल्की

और प्रसन्न रहती है। इसके विरुद्ध आचरण करने वालों को प्रायः पेचिश, पेट एवं सरदर्द तथा अनेक प्रकार के रोग आघेरते हैं। जिन्हें रात में सुख एवं शांति की निद्रा न आवे, बेचैनी हो, स्वप्न दिखायी पड़े, जिह्वा का स्वाद खराब जान पड़े, पाखाना साफ न हो, उन्हें समझ लेना चाहिए कि आज का भोजन कल्याणकर नहीं हुआ। इन बातों पर विचार करके प्रत्येक आदमी स्वयं अपनी खूराक का वजन निश्चित कर सकता है। कितने ही आदमियों की सांस से दुर्गंध निकलती है, ऐसे आदमियों का मेदा खराब रहता है। उन्हें खूब सोच समझ कर थोड़ा हलका और शीघ्र पचनेवाला भोजन करना चाहिए। जो लोग अधिक खाते हैं और उसे पचाने की शक्ति नहीं रखते धीरे धीरे उनका खून भी खराब हो जाता है, फुन्सियां और फोड़े निकल आते हैं, नाक तथा मुंह पर दाने पड़ जाते हैं। इन प्राकृतिक चेतावनियों पर अभ्यास-दोष तथा लापरवाही के कारण लोग ध्यान नहीं देते जिसका फल यह होता है कि रोग बढ़ता जाता है। कितनों को कच्ची डकारें आया करती हैं। कितनों को वायु निकलती है, इन सबका अर्थ यही है कि पेट में खराबी आगयी

और पाचनशक्ति को ठीक करने के लिए भोजन में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। सब रोगों की जड़ पाचन का न होना है। इसलिए अधिक तथा देर से पचने वाले (पूरी, कचौरी मिठाई, मलाई, इत्यादि) भोजन को छोड़कर हल्का, सादा और शीघ्र पचने वाला भोजन करना चाहिए। प्रायः प्रीतिभोजनों त्योहारों उत्सवों तथा ब्याहों में हमें सादा भोजन नहीं मिलता। ऐसी जगहों में बहुत थोड़ा और समझ कर खाना चाहिए। स्वाद के वश में होकर आवश्यकता से अधिक खालेने की आदत

छोड़नी चाहिए। देश में अतिथि के साथ खाने पीने के मामले में सर्वत्र जबर्दस्ती की जाती है। ज्यादा से ज्यादा खिलाने की इच्छा उत्सवों में प्रायः देखी जाती है। लोग यह नहीं सोचते कि भोजन जीवनधारण करने के लिए आवश्यक है, स्वाद पर वहीं तक ध्यान देना चाहिए जहां तक वह हमारे स्वास्थ्य में बाधा न डाले। खाने के बाद कितने ही लोग पाचक औषध ढूँढ़ते फिरते हैं। ऐसे लोग पेट के नाना रोगों में फँसकर जन्म भर दुःख उठाते हैं।

जिन लोगों को किसी कारण से अधिक भोजन करने का अभ्यास पड़ गया है उन्हें धीरे धीरे अपनी आदत को सुधारना चाहिए और महीने में दो उपवास अवश्य करना चाहिए। इससे लाभ होगा। बहुतेरे हिंदू चौमासे में एक ही समय भोजन करने का व्रत लेते हैं, इसमें सुखपूर्वक जीवन विताने का रहस्य भरा हुआ है। जब बरसात में हवा में नमी रहती है और सूर्य कम दिखायी देता है तो पेट की पाचन शक्ति दुर्बल पड़ जाती है। ऐसे समय भोजन की मात्रा में कमी कर देना चाहिए।

कितनी बार खाना चाहिए, इस विषय पर भी बहुत मत-भेद है। भारत में अधिकांश मनुष्य दो बार खाते हैं। तीन और चार बार खाने वाले आदमी भी पाये जाते हैं। गरीबी के कारण एक वक्त भी जिनको ठीक तरह से अन्न नहीं मिलता ऐसे लोगों की संख्या भी इस दीन देश में करोड़ों है। आजकल अमेरिका और इंग्लैण्ड में ऐसी सभाएँ स्थापित हो गयी हैं जो लोगों को बतलाती हैं कि दो वार से अधिक नहीं खाना चाहिए। इन सभाओं की सम्मति है कि हमें सबेरे कुछ नहीं खाना चाहिए। हमारी रात भर की नींद खूराक की गरज पूरी कर देती है। इसलिए सबेरे

हमें खाने के लिए नहीं वरन् काम करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए। ऐसे विचार के लोग दिन में दो ही समय खाते हैं और बीच में चाय इत्यादि भी नहीं पीते। इस विषय में ड्यूई नामक एक बहुत ही अनुभवी डाक्टर ने एक पुस्तक लिखकर उपवास करने, सवेरे नाश्ता न करने और फल खाने के लाभ बड़ी उत्तमता से दिखलाए हैं। युवावस्था बीत जाने पर तो कदापि दो बार से अधिक न खाना चाहिए।

## पाठ ३१ वाँ

### महापुरुष हनुमानजी

पूर्व महापुरुषों के विषय में जनसाधारण में अनेक भ्रम फैले हुए हैं। बहुतेरे विद्वान भी उन महात्माओं के यथार्थ जीवन-तत्त्व से अपरिचित हैं। जितना विपर्यास हनुमानजी रावण आदि के व्यक्तित्व में हुआ है, उतना शायद ही कहीं भाग्य से मिलेगा। बहुधा लोग रावण को राक्षस और हनुमानजी को बन्दर समझते हैं। किन्तु वस्तुस्थिति इससे बिलकुल विपरीत है। हम यहां हनुमानजी का परिचय करावेंगे।

महापुरुषों में हनुमानजी का नाम इतना प्रख्यात है कि हिन्दुओं का बच्चा बच्चा उसे जानता है। लेकिन किसी से पूछो कि हनुमानजी कौन थे, तो वह चटपट कह उठेगा—बन्दर थे। इसलिए यह कहना अनुचित नहीं कि हनुमानजी का नाम तो सब जानते हैं, किन्तु हनुमानजी को कोई विरले ही जानते हैं। बालको!

हनुमानजी बन्दर न थे, बरन् हम लोगों से अधिक सभ्य और महात्मा मनुष्य थे। वे जिस बंश में उत्पन्न हुए थे, उस बंश का नाम वानर था। अतः हनुमानजी वानरवंशी थे, पर वानर न थे, यद्यपि विद्या के प्रभाव से अपना रूप वानर सरीखा बना सकते थे। इनकी माता का नाम अंजना और पिता का नाम पवनंजय था। जिस समय हनुमानजी का जन्म हुआ, उस समय सती अंजना शंकावश विजन वन में छोड़ दी गई थीं। पुत्र के सत्प्रताप से उस समय सती अंजना के मामा यकायक वहां आ पहुँचे, जहां अंजना अपनी सखी सहित विलाप कर रही थीं। सौभाग्य-वती अंजना के मामा का नाम प्रतिसूर्य था। प्रतिसूर्य उसे आश्वासन देकर अपने साथ ले गया। मार्ग में, वे सब जिस विमान में जा रहे थे, उसकी छत में रत्नों का एक झूमका लटक रहा था। उसे लेने की इच्छा से बालक माता की गोद से उछला। उछलते ही वह नीचे शैल पर जा गिरा, जैसे आकाश से वज्र गिरा हो। पुत्र के गिरते ही अंजना हाहाकार मचाने और छाती पीटने लगी। रुदन के प्रतिरव से पर्वत की गुफाओं से जो ध्वनि निकलती उससे ऐसा जान पड़ता था कि गुफाएँ भी रो-रोकर अंजना का साथ दे रही हैं। शोकाकुल प्रतिसूर्य ने तत्काल ही नीचे उतर कर जो कुछ देखा उससे उसके विस्मय का कुछ ठिकाना न रहा। उसने देखा शैल का चूरा हो गया है। और बालक आनन्द से पड़ा हुआ है!

मालूम होता है तभी से हनुमानजी का नाम वजरंगी (वज्राङ्गी) पड़ा होगा। सच है-- जिसने पुण्य रूपी कवच को धारण कर लिया है, सामान्य आघात उसका बाल भी टेढ़ा नहीं कर सकते।

प्रतिसूर्य 'हनुपुर' का राजा था। वह बालक पहले पहल हनुपुर में आया था अतः उसका नाम हनुमान रक्खा गया। हनुमान का एक नाम श्रीशैल भी है, क्योंकि उनके पर्वत पर गिरते ही शैल का चूरा हो गया था।

धीरे धीरे बढ़ता हुआ बालक हनुमान कुमार अवस्था में आया। उस समय उसने सब कलाएँ सीखलीं और विद्याएँ साधलीं। इस प्रकार शेषनाग के समान लंबी भुजाओं वाला शस्त्रास्त्रों में प्रवीण, सूर्य ऐसी कान्तिवाला हनुमान यौवन अवस्था को प्राप्त हुआ।

एक समय रावण और वरुण में रण छिड़ा, तो पवनंजय और प्रतिसूर्य रावण की सहायता के लिए उद्यत हुए। उन्हें उद्यत देख हनुमान बोले—"हे पिताओ! आप दोनों यहीं रहें, मैं सब शत्रुओं को पराजित कर दूंगा। मैं बालक हूँ, ऐसा सोचकर मुझपर अनुग्रह न कीजिये। आपके कुल में जन्मे हुए पुरुषों को जब बल दिखाने का अवसर आता है, तब उनकी आयु का विचार नहीं किया जाता। सिंह का छोटा शावक अपने स्वाभाविक पराक्रम से क्या गजेन्द्रों के दांत खट्टे नहीं कर देता है?" हनुमान के अत्यन्त आग्रह करने पर उन्होंने उसे जाने की आज्ञा दी और मस्तक का चुम्बन लिया। हनुमान बड़ों को प्रणाम करके चला। युद्ध में उसने ऐसा अलौकिक पराक्रम दिखलाया कि विजयश्री ने उसे जीत का सेहरा बांधा। हनुमान के दिव्य पराक्रम से प्रसन्न होकर रावण ने अपनी भानजी को उन्हें ब्याह दिया।

कुछ दिन व्यतीत होने पर हनुमानजी का, रामचन्द्रजी के साथ संसर्ग हुआ। राम-रावण के प्रसिद्ध युद्ध में रामचन्द्रजी

की जो सहायता की, उसकी तुलना इतिहास में मिलना कठिन है। सबसे पहले रामचन्द्रजी का संदेश और अंगूठी सीताजी के पास और सीताजी का चूडामणि रामचन्द्रजी के पास इन्होंने ही पहुँचाया था। हनुमानजी की वीरता उनके जीवनवृत्तान्त में पद पद पर प्रस्फुटित होती है। जब वे राम का संदेश लेकर सीताजी के पास गये और सीता ने रावण के भय से उन्हें तुरंत लौट जाने को कहा, तो हनुमानजी मुसकिराकर बोले—"माता! वात्सल्य के कारण ही तुम ऐसा कह रही हो। त्रिलोकविजेता श्री रामचन्द्रजी का मैं दूत हूँ, रावण और उसकी सारी सेना मेरे सामने नगण्य है। यदि आज्ञा हो तो रावण को मार, उसकी सेना को छिन्न-भिन्नकर अपने कंधों पर बिठाकर आपको रामचन्द्रजी के पास ले चलूं।" सीता ने उन्हें रोक दिया, तो भी जाते २ रावण के बगीचे को नष्ट करके राक्षस वंशियों को अपना पराक्रम दिखला दिया और सामना करने वाले रावण के पुत्रों को यम-धाम पहुँचाया। इस प्रकार रामचन्द्रजी की एक बड़ी चिन्ता हनुमानजी ने दूर की।

जब हनुमानजी सीता का संदेश लेकर रामचन्द्रजी के पास पहुंचे तो रामचन्द्रजी ने रावण पर आक्रमण कर दिया। उस युद्ध में हनुमानजी ने रामचन्द्रजी की बड़ी सहायता की थी। राम ने उनके कार्यकौशल स्वामिभक्ति, और वीरता से प्रसन्न होकर 'श्रीपुर' का राज्य भेंट देकर उनकी गौरवश्री बढ़ाई।

हनुमानजी ने बहुत दिनों तक राज्य किया। किसी समय उन्हें सूर्य को अस्त होते देख संसार से विरक्ति हो उठी। उन्होंने सोचा— "अहो! इस संसार में सब का उदय के पश्चात् अस्त होता है। सूर्य का दृष्टान्त इसके लिए प्रत्यक्ष प्रमाण है।

इस प्रकार परिवर्तनशील जगत् में मोहित रहना धिक्कार योग्य है।" इस प्रकार विचार कर श्री हनुमानजी ने अपने पुत्रों को राज्य दे धर्मरत्न नामक आचार्य से जैन--दीक्षा लेली। हनुमानजी के साथ अन्य साढ़े सात सौ राजाओं ने भी दीक्षा ली थी। अन्त में मुनि हनुमान ने कर्मेन्धन को भस्म कर मुक्ति को प्राप्त किया।

प्यारे बालको! श्री हनुमानजी के इस संक्षिप्त चरित्र से तुम भलीभांति समझ सकते हो कि वे कैसे धीर, वीर, पराक्रमी और धर्मात्मा थे। उन्होंने अपने सांसारिक जीवन में शरीरबल से अनेक बार विजयश्री को प्राप्त किया और आध्यात्मिक जीवन में आत्मबल से मुक्तिश्री को प्राप्त किया। ऐसे महान् पुरुषों को पशु कहना, बन्दर समझना महान पाप का कारण है।

इसी प्रकार सुग्रीव नील, प्रतिसूर्य, गवय, गवाक्ष आदि भी विद्याधर राजा थे। इन में प्रायः सभी मुक्त हुए हैं। रावण विभीषण आदि भी सभ्य मनुष्य थे, राक्षस नहीं। इनका वंश 'राक्षसवंश' कहलाता था। इसीसे ये भी राक्षस कहलाने लगे, वस्तुतः उन्हें राक्षस कहना सर्वथा मिथ्या है। वानर वंश और राक्षसवंश की उत्पत्ति कैसे हुई? क्यों उनके ऐसे नाम पड़े? इत्यादि सब बातों का विस्तृत वर्णन जैनों के कथाग्रन्थों में पाया जाता है।

बंगाल में वानर गोत्र, जिसका रूपान्तर 'बनर्जी' हो गया है, अब तक प्रसिद्ध है। किन्तु वानर गोत्र में उत्पन्न होने ही से उन्हें वानर नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार के और भी कितने ही गोत्र विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित हैं। जैसे गोधा, बया, सियार, नाहर, कौशिक

आदि। यदि वानरवंशी होने के कारण हनुमानजी आदि बन्दर हो जायँ, तो जिनका गोधा गोत्र है, वे सब गोधा-सांड हो जावें, जिनका नाहर गोत्र है वे सब नाहर-शेर हो जावें, वया गोत्री सब वया-एक प्रकार की चिड़िया--हो जावें और सियार गोत्री सब शृगाल हो जायँ। जिनका गोत्र कौशिक है, वे सब कौशिक-उल्लू हो जायँ। जब यह कहना अनुचित है, तो वानरवंशी होने से हनुमानजी जैसे पूज्य पुरुषों को बन्दर कहना सर्वथा अनुचित है।

प्यारे बालको! इन भ्रान्तिपूर्ण अमानुषिक कल्पनाओं का उन्मूलन करना तुम्हारा कर्त्तव्य है।

## कठिन शब्दों के अर्थ

विपर्यास- विपरीतता, उलट पलट। प्रख्यात- प्रसिद्ध। विजन- एकान्त, जहां मनुष्यों का गमनागमन न हो। आश्वासन- तसल्ली, ढाढ़स। शैल- पर्वत। प्रतिरव- गूँज; वह शब्द, जो कहीं टकराकर फिर वहीं सुनाई पड़ता है। बजरंगी (वज्राङ्गी) जिसका अंग वज्र का हो। कवच- बख्तर। शावक- बच्चा। दांत खट्टे करना- पराभूत करना, हराना। सेहरा- मौर, जिसे विवाह के समय वर सर पर बांधता है। प्रस्फुटित- प्रगट। वात्सल्य- प्रेम। नगण्य- तुच्छ, नहीं के बराबर। भ्रान्तिपूर्ण- भूल भरा। उन्मूलन करना- उखाड़ना, निवारण करना।

# पाठ ३२ वाँ

## प्रकीर्णकपद्य

### नरजन्म

(मत्तगयंद छन्द)

ज्यों मतिहीन विवेक विना नर,
साजि मतङ्गज ईंधन ढोवै ।
कंचन भाजन धूल भरै शठ,
मूढ़ सुधारस सौं पग धोवै ॥
बाहत काग उड़ावन कारण,
डार महामणि मूरख रोवै ।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि,'
पाय अजान अकारथ खोवै ॥

### लक्ष्मी

नीच की ओर ढरै सरिता जिम,
घूम बढ़ावत नींद की नाईं ।
चंचलता प्रघटै चपला जिम,
अंध करै जिम धूम की झाईं ॥
तेज करै तिसना दव ज्यों मद,
ज्यों मद पोषित मूढ के तांईं ।
ये करतूति करै कमला जग,
डोलत ज्यों कुलटा विन सांईं ॥

संघस्तुति

(३१ मात्रा सवैया)

जे संसार-भोग-आशा तज,
ठानत मुकति पन्थ की दौर।
जाकी सेव करत सुख उपजत,
तिन समान उत्तम नहिं और॥
इन्द्रादिक जाके पद वंदत,
जो जंगम तीरथ शुचि ठौर।
जामें नित निवास गुन मंडन,
सो श्रीसंघ जगत सिरमौर॥

क्रोध

जब मुनि कोइ बोय तप-तरु वर,
उपशम-जल सींचत चितखेत।
उदित ज्ञान साखा गुण पल्लव,
मंगल-पहुप मुकत-फल हेत॥
तब तिहि कोप-दवानल उपजत,
महामोह दल पवन समेत।
सो भस्मंत करत छिन अंतर,
दाहत विरख सहित मुनि चेत॥

सुसंगति

(घनाक्षरी छंद)

कुमति निकंद होय महामोह मंद होय,
जागमगै सुयश विवेक जगै हियेसों।

नीति को दिढाव होय विनै को बढ़ाव होय,
उपजै उछाह ज्यों प्रधान पद लियेसों॥
धर्म को प्रकाश होय दुर्गति को नाश होय,
बरतै समाधि ज्यों पियूष-रस पियेसों।
तोष परिपूर होय दोष दृष्टि दूर होय,
एते गुन होहिं सत संगत के कियेसों॥

### कठिन शब्दों के अर्थ

मतङ्गज- हाथी। बाहत- फेंकता है। चपला- बिजली। कमला- लक्ष्मी। कुलटा- दुराचारिणी स्त्री। सांई- पति, स्वामी। सिरमौर- श्रेष्ठ, शिरोमणि। पल्लव- कोंपल। पहुप-फूल। बिरख-वृक्ष। निकंद नाश। जागमगे-जगमगाता है। दिढाव-दृढ़ता। तोष- संतोष।

# पाठ ३३ वाँ

## शिक्षाप्रद प्रश्नोत्तर

कहते हैं एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल से कहा— "बीरबल! ऐसी चार वस्तुएँ लाओ जिनमें से एक यहां हो वहां नहीं, दूसरी यहां नहीं वहां हो, तीसरी यहां वहां दोनों जगह न हो तथा चौथी यहां और वहां दोनों जगह हो। बीरबल बड़ा बुद्धिमान था। वह बादशाह का आशय तुरंत समझ गया और चारों वस्तुओं के लाने की प्रतिज्ञा करके चला आया। नगर में जाकर एक वेश्या, एक साधु, एक पाखण्डी संन्यासी और एक

धर्मात्मा दानी पुरुष को पकड़ लाया और राजसभा में उपस्थित होकर कहा—"पृथ्वीनाथ! चारों वस्तुएँ प्रस्तुत हैं। अकबर ने पूछा कि कौन वस्तु किस श्रेणी की है इसे समझाकर बताओ। बीरबल बोला—"पहले प्रकार की यह वेश्या है। यह यहां सांसारिक सुख भोगती है पर मरने के बाद इसे नरक की अग्नि में जलना होगा। अतएव यह यहां है वहां नहीं। दूसरे साधु हैं। इन्हें कभी अन्न मिलता है, कभी नहीं। इसके अतिरिक्त ये महात्मा अपनी इच्छा से नाना प्रकार की तपस्या करते हैं। सरदी गरमी की परवाह नहीं करते और महल—श्मशान, आदर अनादर, सोना मिट्टी सब इनके लिए बराबर हैं। इन्हें इस संसार में सुख नहीं पर मृत्यु के बाद असीम सुख मिलेगा। अतः ये यहां नहीं पर वहां हैं। तीसरा यह पाखण्डी संन्यासी है। यह नित्य नगर की गलियों में भिक्षा मांगता फिरता है और नित्य नया ढोंग बनाकर लोगों को ठगता है। इसे न यहां सुख है और न वहां ही मिलेगा। इसलिए यह यहां वहां दोनों जगह नहीं है। चौथा यह धर्मात्मा दानी पुरुष है। यह अपने धन से दूसरों का दुःख दूर करने में कभी संकोच नहीं करता तथा सर्वदा धर्माचरण में लगा रहता है। इसको यहां भी सुख है और वहां भी सुख मिलेगा अतएव यह यहां वहां दोनों जगह है। यही आपकी चार वस्तुएँ हैं।

बादशाह बीरबल की बुद्धिमत्ता से बड़ा प्रसन्न हुआ और उसने यथोचित आदर सत्कार करके सबको विदा किया।

बच्चो! बताओ तुम इनमें से किस श्रेणी के होना चाहते हो?

# पाठ ३४ वाँ

## वायु

जीवनरक्षा के लिये तीन चीजों की अत्यन्त आवश्यकता है- वायु, पानी और अन्न। इनमें अन्न और पानी बिना तो आदमी कुछ समय तक जीवित रह सकता है पर वायु के बिना दस मिनट भी जीना असंभव है। जो वस्तु हमारे जीवन के लिए इतनी उपयोगी है और जिसपर हमारा जीवन निर्भर है, उसके उपयोग की रीतियों से अनभिज्ञ रहना अपना ही विनाश करना है। प्रकृति ने हमारे चारों ओर वायु को फैला रखा है; हमारे आसपास कोई ऐसी खाली जगह नहीं जहां हवा न हो। हमारी अज्ञानावस्था में भी यह वायु नाक और मुंह के रास्ते भीतर जाकर हमारी रक्षा करती है। अतएव हमें उचित है कि हम उसके सम्बंध में पूर्ण जानकारी रक्खें।

हममें से किसी को यदि गन्दा अन्न जल ग्रहण करने को कहा जाय तो वह बिगड़ खड़ा होगा अथवा बुरामानेगा। किन्तु हम लोग वायु के सम्बंध में, जिसके बिना जरा भी जीना असंभव है, ऐसी सावधानी नहीं रखते। नगरों में जाकर देखो, चारों ओर धूल, धुँआ है तथा नाना प्रकार की गन्दगियों से हवा भरी मालूम होगी। कितने ही लोग ऐसी तंग कोठरियों में एकत्र हो जाते हैं जिसमें बहुत कम हवा आने की गुंजाइश रहती है। इस तरह अधिक ताजी औरशुद्ध हवा न आने से कोठरियों में नानाप्रकार के रोगों के कीड़े पैदा हो जाते हैं और उनमें रहने वालों को रोगी बनादेते हैं। महात्मा गांधी ने लिखा है कि सौ में निन्यानवे

की बीमारी का कारण खराब हवा है। क्षय, ज्वर, अपच इत्यादि अनेक रोग हैं जो शुद्ध वायु की कमी से उत्पन्न हो जाते हैं। इन रोगों के दूर करने और अपने को स्वस्थ रखने का सबसे सीधा और सरल उपाय यह है कि हम अधिक से अधिक साफ हवा में सांस लें। जो लोग नगरों में रहते हैं उनको नित्य तीन चार घण्टे बागों में बिताना चाहिए और इतने समय तक खूब तेजी से सांस लेना चाहिए।

क्षय रोग फेफड़ों के खराब हो जाने से उत्पन्न होता है और फेफड़ों के खराब होने का कारण गन्दी हवा है। इसीलिए क्षय के रोगी को लोग पहाड़ों पर ले जाते हैं क्योंकि वहां वायु शुद्ध रहती है। क्षय के रोगी को अधिक स्वच्छ वायु और प्रकाश की परमावश्यकता होती है। इन सब बातों का अर्थ यही है कि यदि आदमी थोड़ा और हलका भोजन करे और स्वच्छ वायु में रहे तो कभी बीमार नहीं पड़ सकता।

स्वच्छ वायु उत्पन्न करने के लिए हमें सफाई की ओर ध्यान देना चाहिए। गांव की वायु नगर की वायु से अधिक स्वच्छ रहती है इसीलिए गांव के आदमी नगर वालों की अपेक्षा अधिक फुर्तीले, परिश्रमी नीरोग और बलिष्ठ होते हैं। हम लोगों की तरह वे दिन रात वैद्य डाक्टर के द्वार पर नहीं दौड़ा करते। नगर की गलियां गन्दी और भ्रष्ट होती हैं। आस पास के निवासी स्वयं अपने मकानों और गलियों की सफाई पर ध्यान नहीं देते। बाजारों में हलवाइयों की भट्ठियां जलती हैं, बड़े बड़े कारखानों में एंजिन से धुआं निकल कर वायु को दूषित करता रहता है। लोगों को इन बातों से बचने का यत्न करना चाहिए।

बहुत से लोगों में यह आदत होती है कि जहां बैठते हैं वहां ही थूकने लगते हैं। यह बड़ी बुरी आदत है। इससे गंदगी फैलती है और छूत के अनेक रोग हमें घर पकड़ते हैं। क्षय रोग के रोगी के थूक में इतने कीटाणु होते हैं कि वे आस पास बैठे आदमियों के शरीर में प्रवेश करके उनके प्राणनाश का कारण तक हो सकते हैं। जिन लोगों को अधिक थूकने की आदत हो उन्हें पीकदान रखना चाहिए अथवा एक पात्र में बालू रख कर उसमें थूकना चाहिए। पीकदान और इस प्रकार के पात्र को नित्य साफ कराते रहना चाहिए।

मकान बनाते समय इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक कमरे में चारों ओर से खूब हवा आ सके। इन सब बातों का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक मनुष्य को अधिक स्वच्छ वायु ग्रहण करना चाहिए।

# पाठ ३५ वाँ

## युद्धवीर 'बारहवां-चार्ल्स'

यूरप के उत्तर में स्वीडन एक देश है। 'चार्ल्स' वहीं का बादशाह था। १६९७ ई० के अप्रेल महीने में इसके पिता ग्यारहवें चार्ल्स की मृत्यु हुई। उसके बाद केवल पन्द्रह वर्ष की उम्र में यह राजगद्दी पर बैठा। उस समय यूरप की दशा अच्छी न थी। जबर्दस्त लोग कमजोर राज्य को हड़पने की ताक में रहते थे। बालक चार्ल्स को गद्दी पर बैठा देख उनकी बन आयी क्योंकि

चार्ल्स के पिता तथा पूर्वजों ने पहले उनकी नसें खूब ढीली की थीं—रूस, जर्मनी, हालैण्ड तथा डेनमार्क के कई प्रान्त लेलिए थे। अब सब के सब अवसर देखकर उमड़ खड़े हुए और उन जीते हुए प्रान्तों को छीन लेने की चेष्टा शुरू कर दी। इतना ही नहीं सबने मिलकर एक साथ गुप-चुप स्वीडन के बाहरी सूबों पर चढ़ाई कर दी किन्तु इससे चार्ल्स जरा भी चिन्तित न हुआ। उसने राज-सभा में सरदारों के सामने भाषण करते हुए कहा—"मैंने निश्चय कर लिया है कि कभी अन्याय से युद्ध नहीं आरंभ करूंगा किन्तु इसके साथ ही न्यायपूर्ण युद्ध को तब तक बंद भी न करूंगा जब तक कि अपने शत्रुओं को पूर्ण रूप से नाश न कर दूँ।" सत्रह वर्ष के एक बालक राजा के मुँह से निकले हुए ये कैसे वीरतापूर्ण शब्द हैं। जहां गद्दी पर बैठते ही उसने शेर और भालू आदि जंगली जानवरों के शिकार और राजसी जलसे शुरू कर दिए थे, वहां इस भाषण के दूसरे ही दिन से शिकार, नाच-रंग, और खर्चीली दावतें बन्द हो गयीं। उसने सोचा-शिकार खेलना या अन्य किसी कुव्यसन का सेवन करना राजनीति नहीं है। इन कुटेवों में पड़कर अनेक राजा अपने सर्वस्व से हाथ धो बैठे हैं। अतः मुझे पहले से ही चेत जाना चाहिए। वह इनकी जगह सेनासंचालन, निशानेबाजी तथा अन्य सैनिक कार्यों में समय बिताने लगा। बाप-दादा के समय के बड़े बड़े योद्धा और सेना-पति आदरसहित बुलाकर सेना में रक्खे गये। फिर तो वह इस तरह शत्रुओं के पीछे पड़ा कि एक एक करके सबसे बदला लिया। डेनमार्क की सेना को बार बार खदेड़ा और जल-सेना लेकर डेनमार्क की भूमि पर जा उतरा। उस समय वह बदला लेने तथा युद्ध करने के लिए इतना बेचैन हो रहा था कि जहाज से उतरते

ही तुरंत खाई में कूद पड़ा—शत्रु की सेना को भगाकर डेनमार्क पर अपना झण्डा गाड़ दिया। अन्त में डेनमार्क के सम्राट ने सारा खर्च और हर्जाना देकर मेल कर लिया।

इधर यह हो रहा था उधर रूस ने इसकी अनुपस्थिति में ८० हजार से भी अधिक सेना लेकर स्वीडन पर चढ़ाई कर दी। इधर चार्ल्स के पास केवल १२ हजार सेना थी जिसमें से ५ हजार पैदल और ३३०० सवार तथा ३७ तोपें लेकर उसने इतनी तेजी से शत्रु पर धावा किया कि रूसी सेनापति 'शेरमेतोक' ने परास्त होकर यह प्रसिद्ध किया कि चार्ल्स के पास इस समय २० हजार चुने हुए सैनिक हैं। रूसी सेना में भय सा छा गया। रूस का वीर सम्राट् पीटर भी सर थामकर बैठ गया। इसके बाद फिर नारवे में एक गहरी लड़ाई हुई जिसमें चार्ल्स की वीरता देखने ही योग्य थी। सेना में वह सबसे आगे था उसके सर के शिरस्त्राण में गोली लगी, तलवार टूट गयी, एक पैर का जूता गिर गया फिर भी वह एक ही जूता पहने लड़ता रहा। रूसी शत्रु की पन्द्रहगुनी सेना के बीच में डटकर उसने जो वीरता दिखायी वह यूरप के इतिहास में एक स्मरणीय घटना है। पहले दिन रूसी सेना के बहुत सैनिक मारे गये। दूसरे दिन पैदल सेना ने हथियार डाल दिया और घुड़सवार सेना भाग गयी। इन हथियार रख देने वाले कैदियों की संख्या १८ हजार से भी ज्यादा थी। अतएव चार्ल्स ने उनके कवच तथा हथियार लेकर सबको छोड़ दिया, केवल बड़े बड़े अफसर बन्दी किये गये। अब वह पोलैण्ड की ओर मुड़ा और वहां के राजा को परास्त करके दूसरे राजा को गद्दी पर बैठाया। इसी प्रकार जीवन भर वह लड़ता ही रहा, लड़ने में उसे आनन्द मिलता था। युद्ध को वह खेल समझता था।

लड़ाइयों में स्वयं साधारण सिपाहियों के साथ रहकर उनके नियमों का पालन करता था। जमीन पर सो रहता। हफ्तों घोड़े की पीठ पर बैठे बीत जाते थे। अपने को कठिनाइयों में डालकर वह हँसता था।

### कठिन शब्दों के अर्थ

डेनमार्क और पोलैण्ड- यूरप के दो देश हैं। शिरस्त्राण- युद्ध में सर की रक्षा के लिए पहनी जाने वाली टोपी। कवच- युद्ध में शरीररक्षा के लिए धारण किया जाने वाला वस्त्र।

# पाठ ३६ वाँ

## प्रकीर्णकपद्य

(१)

जिय पूरव तो न विचार करे,
अति आतुर ह्वै बहु पाप उपावै।
नित आनँद-कंद जिनंदतने,
पदपंकज सों नहिं नेह लगावै॥
जब तास उदै दुख आन परे,
तब मूढ़ वृथा जग में विललावै।
अब पाप अताप बुझावन "कोशन,
आग लगे पर कूप खुदावै"॥

(२)

अतिरूप अनूप रतीपति तें,
न सचीपति ते अनुभूति घटी है।
कवि 'वृन्द' दशों दिशि कीरति की,
मनों पूरनचंद प्रभा प्रगटी है॥
सब ही विधि सों गुनवान बड़े,
बल बुद्धि विभा नहिं नेक हटी है।
जिनचंद-पदाम्बुज प्रीति बिना,
जिमि "सुन्दर नारी की नाक कटी है"॥

(३)

नर जन्म अनूपम पाय अहो,
अब ही परमादन को हरिये।
सरवज्ञ अराग अदोषित को,
धरमामृतपान सदा करिये॥
अपने घट को पट खोलि सुनो,
अनुभौ रसरंग हिये धरिये।
भवि 'वृन्द' यही परमारथ की,
करनी करि भौ तरनी तरिये॥

(४)

(अशोक पुष्पमंजरी)

जै जिनेश ज्ञान भान भव्य कोक शोक हान,
लोक-लोक लोकवान लोकनाथ तारकं।
ज्ञानसिंधु दीनबंधु पाहि पाहि पाहि देव,
रक्ष रक्ष रक्ष मोक्षपाल शीलधारकं॥

गर्म कर्म भर्महार पर्म शर्म धर्म धार,
जैति विघ्ननिघ्नकार श्रीमते सुधारक।
औनकै पुकार मोहि लीजिये उबार है,
उदारकीर्तिधार कल्पवृच्छ-इच्छकारकं ॥

कठिन शब्दों के अर्थ

जिय- जीव। आतुर- उत्सुक। उपावै- कमाता है। नेह (स्नेह) प्रेम। रतीपति- कामदेव। सचीपति- इन्द्र। नेक- जरा भी। घट- यहां हृदय अर्थ है। कोक- चकवा, एक प्रकार का पक्षी। लोकलोक- समस्त लोक को जानने वाले। पाहि- रक्षा करो। जैति- विजयी है। विघ्ननिघ्नकार- विघ्नविनाशक। औनकै- सुन कर। उबार- तार। कल्पवृच्छ-इच्छकारकं- कल्पवृक्ष की तरह मनचाहा फल देने वाले।

# पाठ ३७ वाँ

## अमृत-वाणी

(१)

सज्जन पुरुष को उचित है कि जैसे वह किसी साधु पुरुष के सामने नम्र वचन बोलता हो वैसे ही दुष्ट पुरुष के सामने भी हाथ जोड़ कर बोले—दुष्ट को तो अवश्य ही मीठी मीठी बातों से सन्तुष्ट करके छोड़े। जो मनुष्य प्रेम, सत्कार और मित्रता की

इच्छा रखते हैं तथा प्रिय वचन बोलते हैं वे मनुष्य के रूप में देवता हैं।

—शुक्राचार्य।

(२)

संतोष कहां रहता है? गरीब के टूटे फूटे झोपड़े में। प्रेम कहां रहता है? माता के अंचल में। आनन्द कहां रहता है? बच्चे की तोतली बोली में। स्वर्ग कहां पर है? ईमानदार की मुट्ठी में। दरिद्रता कहां रहती है? लोभी के हृदय में। नाश कहां रहता है? कंजूस के गड़े हुए धन में। दुःख कहां बसता है? कर्कशा स्त्री जिस घर में हो। पाप का अड्डा कहां है? दिल की खोटाई में।

—महात्मा कनफ्यूशश।

(३)

स्वाधीनता में ही सुख है, पराधीनता ही दुःखों की जड़ है। बन में तोते सुख से कितना चहकते हैं किन्तु वही सोने के पिंजड़े में रखने पर भी दुःखी जान पड़ते हैं।

—बाबा दीनदयाल गिरि।

(४)

संसार में मित्र बहुत कम हैं और इसीलिए मँहगे भी हैं।

—पोलक

(५)

यह विश्वास रखो कि तुम्हारा सच्चा मित्र वही है जो तुम्हारी घृणा और नाराजगी की कुछ परवाह न करके तुम्हारी भूलों को एकान्त में तुम्हें बतलाता है।

—सर वाल्टर रेले।

# पाठ ३८ वाँ

## स्याद्वाद

इन्द्र०— शान्ति, ओ शान्ति! वह मनुष्य, जो यहां होकर गया है, बहुत ऊँचा था।

शान्ति— (एक लम्बा बड़ का वृक्ष दिखाकर) इस वृक्ष से भी ऊँचा था?

इन्द्र०— आजकल कहीं इतना ऊँचा आदमी सुना भी है? भाई! वह अन्य मनुष्यों से ऊँचा था, किन्तु इस पेड़ से तो नीचा ही था।

शान्ति— तुम बड़े विचित्र मनुष्य प्रतीत होते हो, छोटा भी कहते जाते हो और बड़ा भी बतलाते हो। तुम्हारी बातों का कुछ ठिकाना भी है? भला, जब छोटा है तो बड़ा क्यों बतलाते हो? और यदि बड़ा है तो बड़ से छोटा क्यों कहते हो? एक ही वस्तु में विरुद्ध धर्म नहीं पाये जा सकते।

इन्द्र०— भाई! एक ही चीज से बड़ा और छोटा बताया जाय तो विरोध हो सकता है। मैं भिन्न २ अपेक्षाओं से बड़ा छोटा बतलाता हूं। बड़ की अपेक्षा छोटा और हमारी तुम्हारी अपेक्षा बड़ा। अब विरोध कैसे हो सकता है। अच्छा, तुम ही बताओ, तुम छोटे हो या बड़े?

शान्ति— मैं छोटा हूँ!

इन्द्र०— छोटे हो, चींटी से भी छोटे?

शान्ति— नहीं जी, आदमी क्या चींटी से छोटे होते हैं? मैं तो चींटी से बहुत बड़ा हूँ।

इन्द्र०— ठीक, बहुत बड़े हो, तो इस झाड़ से भी बहुत बड़े हो?

शा०— नहीं, झाड़ से बहुत छोटा हूँ!

इन्द्र०— बस, यही तो मैं भी कहता हूँ। जैसे तुम चींटी से बड़े और वृक्ष से छोटे हो उसी प्रकार वह मनुष्य छोटा-बड़ा था। सब ही वस्तुएँ इसी प्रकार की हैं। इसमें किसी प्रकार का विरोध नहीं होता।

शा०— विरोध तो मालूम होता है। ठीक समझ में नहीं आता।

इन्द्र०— देखो भाई! इनमें विरोध है या नहीं? इस बात को जानने का उपाय यही है कि ये एक जगह रहते हैं या नहीं। यदि एक जगह न रह सकते हों, तो समझना चाहिए कि ये विरोधी हैं। और यदि, एक जगह रह सकते हों, तो उनमें विरोध हो ही नहीं सकता। अग्नि और पानी एक ही जगह नहीं रहते, इसीसे विदित होता है कि वे विरोधी हैं, सांप और नेवला एकत्र नहीं रह सकते, अतएव वे भी विरोधी हैं। बड़ापन और छोटापन यदि विरोधी होते तो एक जगह न रहते। और जब एक साथ रहते ही हैं तो विरोध नहीं हो सकता।

शा०— तुम अपनी बातों के वात से मुझे आकाश में उड़ाना चाहते हो। जब छोटे बड़े में विरोध नहीं है तो और जगह भी विरोध नहीं रहेगा। तब तो तुम हो और

नहीं भी हो, अर्थात् तुममें अस्तित्व और नास्तित्व दोनों होंगे, हम बोलते हैं और नहीं भी बोलते, तुम पिता और पुत्र दोनों हो। इनमें कुछ विरोध न रहेगा।

इन्द्र०— शान्ति! तुम बड़े भोले हो। तुम जिन बातों से डरते हो, वे सब ही बातें तुम्हारे अन्दर पाई जाती हैं। तुम कहते हो "हम हैं भी और नहीं भी हैं" यह कहना ठीक हो जायगा। भाई! ठीक क्या हो जायगा, ठीक ही हैं। तुम मनुष्य हो, पशु नहीं हो, अर्थात् तुममें मनुष्य की अपेक्षा अस्तित्व और पशु की अपेक्षा नास्तित्व है। तुम मुझसे बोलते हो, दूसरे से नहीं बोलते। अतः तुम बोलने वाले हो और नहीं भी हो। और इस बात को कौन अस्वीकार कर सकता है कि प्रत्येक पुरुष अपने पिता की अपेक्षा पुत्र है और पुत्र की अपेक्षा पिता। इस प्रकार की विचार-दृष्टि को ही स्याद्वाद कहते हैं। अर्थात् किस वस्तु में किस अपेक्षा से कौन २ सा गुण (धर्म) रहा हुआ है, इसी बात को स्याद्वाद बतलाता है। स्याद्वाद विरोध का विरोध करता है। जहां स्याद्वाद रूपी सविता का उदय हुआ कि विरोधतिमिर दुम दबा कर नौ दो ग्यारह हुआ। संसार से यदि धार्मिक सामाजिक वैर-विरोध आदि दस्युओं का मुँह काला करना हो तो धर्म के सिंहासन पर इसी महानृपेन्द्र को बिठलाना चाहिए। स्याद्वाद-सम्राट की विजय-वैजयन्ती फहराती देख, धार्मिक क्षेत्र से कलह ईर्षा अनुदारता आदि दोष भयभीत होकर भाग जाएँगे।

तब ही धार्मिक क्षेत्र में रामराज्य होगा। शान्ति! शान्ति से विचार करो।

शान्ति— मैं इस समय विस्मित सा हो गया हूँ। आपने दार्शनिक तत्त्वों के रहस्योद्घाटन के लिए जो कुञ्जिका बतलाई है, वह बड़ी सीधी-साधी और विचित्र है। मानों मैं किसी नवीन सृष्टि में आ पड़ा हूँ। जिन्हें मैं हमेशा देखा करता था, वे ही पदार्थ आज विलक्षण मालूम होते हैं। स्वयं मुझ में भी कुछ नवीनता सी आ गई मालूम होती है।

इन्द्र०— तुम वही हो, सृष्टि वही है, केवल दृष्टि में परिवर्तन हुआ है। बात यह है कि स्याद्वाद प्रत्येक पदार्थ को पृथक् २ पहलुओं से प्रतीत कराता है, अतएव उससे पदार्थ का पूर्ण ज्ञान हो जाता है, और स्याद्वाद का प्रतिपक्ष-एकान्तवाद पदार्थ के एक ही अंश को बतलाता है, अतः उससे अधूरा ज्ञान होता है। अब तक तुम पदार्थ के अधूरे—अपूर्ण—ज्ञान को ही पूरा समझे बैठे थे, अब पूरे और अधूरे का भेद समझे हो। इसीसे सर्वत्र विलक्षणता मालूम होती है।

शान्ति— तुम स्याद्वाद की बहुत उपयोगिता बतलाते हो, यदि ऐसा होता तो जगत में जितने ऋषि महर्षि हुए उन सबने इसे स्वीकार किया होता। अच्छी चीज कौन नहीं स्वीकार करता। यही नहीं, सुनते हैं किसी २ ने तो स्याद्वाद को असत्य बतलाया है। इसका क्या कारण है?

इन्द्र०— तुम्हारे विचार से संसार में एक भी सिद्धान्त एक भी सम्प्रदाय और एक भी देव सच्चा न होना चाहिए। क्योंकि किसी भी सिद्धान्त या सम्प्रदाय को सब लोग स्वीकार नहीं करते हैं। किसी सिद्धान्त की सत्यता सब या अधिक लोगों की मान्यता से नहीं होती वह उससे बिलकुल भिन्न वस्तु है। लोग ज्ञान या चारित्र की कमी से या अपनी प्रतिष्ठा के लिए सच्चे सिद्धान्त को न मानकर भिन्न सम्प्रदाय खड़े करते हैं। यह सच है कि किसी २ आचार्य ने स्याद्वाद को असत्य बतलाया है, परन्तु निष्पक्ष विद्वानों ने उनकी इस कृति को हास्यास्पद ही समझा है।

शान्ति— अच्छा ये बातें जाने दो, तुम कहते हो स्याद्वाद से बैर विरोध का विनाश होता है। सो कैसे?

इन्द्र०— सुनो। किसी जगह थोड़े से अन्धे बैठे थे। भाग्य से वहां एक हाथी आ निकला। सब के सब हाथी के निकट पहुँचे। किसी ने सूंड़ पकड़ी तो किसी ने कान, किसी ने जांघ पकड़ी तो किसी ने खींसें, किसी ने पूँछ पकड़ी तो किसी ने पीठ। सबने समझा, हमने हाथी पकड़ लिया है। सब अपने २ ज्ञान को सच्चा समझ सन्तुष्ट हो गये। कालान्तर में हाथी की चर्चा छिड़ी। जिसने पूँछ पकड़ी थी वह बोला-हाथी रस्सा सरीखा होता है। सूंड़ पकड़ने वाला दूसरा अंधा उसकी बात काट कर बोला—झूठ, बिलकुल झूठ। हाथी रस्सा सरीखा नहीं होता वह तो खंभ सरीखा होता है। तीसरा बोला—आंखें काम नहीं देतीं तो क्या

हुआ? हाथ तो धोखा नहीं दे सकते। मैंने हाथी को टटोलकर देखा था, वह सूप (छाज) ऐसा था। तुम नाहक ही चकमा देना चाहते हो। तीनों की बात सुनकर चौथे सूरदास बोले—पहले पाप किये सो अंधे हुए, अब झूठ बोल कर क्यों उन पापों की जड़ों में जल सींचते हो। हाथी तो दण्ड सरीखा था। इस तरह सब में वाग्युद्ध ठन गया। एक दूसरे की भर्त्सना करने लगे। यह हाल देखकर कोई एक आंखों वाले सत्पुरुष पधारे। उन्हें अन्धों की आपस की चें-में सुनकर हँसी आई। पर दूसरे ही क्षण उनका चेहरा गम्भीर हो गया। उन्होंने सोचा—भूल हो जाना अपराध नहीं है, परन्तु किसी की भूल पर हँसना अपराध है। उनका हृदय करुणार्द्र हो गया। उन्होंने कहा—भाइयो! मेरी बात सुनो। भिन्न २ अपेक्षाओं से तुम सब सच्चे हो। कोई किसी को झूठा न कहो सब को सच्चा समझो। हाथी रस्सा सरीखा भी है, सूप सरीखा भी है और खंभा सरीखा भी है। तुम हाथी के एक २ अंग को ही हाथी समझ रहे हो। यही तुम्हारी भूल है। इस प्रकार उस सज्जन ने समझा-बुझाकर आग में पानी डाला।

इसी प्रकार संसार में जितने एकान्तवादी सम्प्रदाय हैं वे पदार्थ के एक २ अंश-धर्म को ही पूरा पदार्थ समझते हैं। इसीलिए दूसरों से लड़ते झगड़ते हैं। पर वास्तव में वह पदार्थ नहीं, पदार्थ का एक अंशमात्र है। स्याद्वाद बतलाता है कि वह मान्यता किसी एक दृष्टि से ही ठीक हो सकती है, उसे सर्वथा ठीक

बतलाना और दूसरे अंशों को भ्रान्त कहना ही भूल है। वह इस भूल को बता कर पदार्थ के सत्य स्वरूप को आगे रखता है प्रत्येक सम्प्रदाय को किसी एक विवक्षा से ठीक बतलाने के कारण स्याद्वाद कलह को शान्त करने की क्षमता रखता है।

शान्ति— स्याद्वाद से संशय उत्पन्न हो जाता है। हम है या नहीं? इस प्रकार का विकल्प हृदय में पैदा होने लगता है। इसीलिए स्याद्वाद को संशयवाद कहना ठीक है न?

इन्द्र०— नहीं, ठीक नहीं है। संशय और स्याद्वाद में आकाश पाताल जितना अन्तर है। उनका आपस में तनिक भी लगाव नहीं है। संशय में, दो पदार्थों में से किसी का निश्चय नहीं होता और स्याद्वाद में दोनों का निश्चय हो जाता है। जैसे—हम हैं या नहीं? यह संशय है। अनेकान्त नहीं है। अनेकान्त कहता है हम मनुष्य हैं, पशु नहीं हैं। इसमें संशय नहीं है? अतः इसे संशय रूप बतलाना अनुचित है।

अनेकान्त वस्तु का स्वरूप है। जगत में जब तक वस्तुएँ हैं, तब तक अनेकान्त रहेगा ही। वस्तु का कभी नाश नहीं होता तो अनेकान्त भी कभी नहीं मिट सकता।

## कठिन शब्दों के अर्थ

वात- हवा, वायु। अस्तित्व- होना, मौजूदगी। नास्ति- न होना, गैर-मौजूदगी। सविता- सूर्य। विरोधतिमिर- विरोध रूपी अंधकार। दुम दबा कर- डर

कर। दस्युओं- चोरों, लुटेरों। मुँह काला करना- भगाना, हटाना। महानृपेन्द्र- बड़ा भारी राजा। विजय-वैजयन्ती-विजय कीपताका। पृथक् २--जुदे २, भिन्न २। पहलुओं- तरफों। प्रतिपक्ष- विरोध। एकान्तवाद- वह मान्यता जो वस्तु को पूर्ण रूप से न विचार कर की गई हो, अधूरे को पूरा कहना। चैं-भैं- झगड़ा। आग में पानी डालना- झगड़ा मिटाना। लगाव- सम्बन्ध।

# पाठ ३९ वाँ

## किसान

धन्य तुम हे ग्रामीण किसान,
सरलता-प्रिय औदार्य-निधान।

छोड़ जन-संकुल नगर-निवास,
किया क्यों विजन ग्राम में गेह?
नहीं प्रासादों की कुछ चाह,
कुटीरों से क्यों इतना नेह?

विलासों की मंजुल मुसकान,
मोहती क्या न तुम्हारे प्राण? ॥१॥

सहन कर कष्ट अनेक प्रकार,
किया करते हो काल-क्षेप।
धूल से भरे कभी हैं केश,
कभी अंगों में पंक प्रलेप।

प्राप्त करने को क्या वरदान,
तपस्या का यह कठिन विधान? ॥२॥

तीर सम लगती चपल समीर,
अग्रहायण की आधी रात।
खोलकर यह अपना खलिहान,
खड़े हो क्यों तुम कम्पित-गात?

उच्च स्वर से गा--गाकर गान,
किसे तुम करते हो आह्वान? ॥३॥

स्वीय श्रम-सुधा-सलिल से सींच,
खेत में उपजाते जो नाज।
युगल कर से उसको हे बन्धु,
लुटा देते हो तुम निर्व्याज।

विश्व का करते हो कल्याण,
त्याग का रख आदर्श महान ॥४॥

लिए फल फूलों का उपहार,
खड़ा यह जो छोटा--सा बाग।
न केवल वह द्रुम--बेलि समूह,
तुम्हारा मूर्ति मंत अनुराग।

हृदय का यह आदान--प्रदान!
कहां सीखा तुमने मतिमान? ॥५॥

देखते कभी शस्य--शृंगार,
कभी सुनते खग-कुलक-लगीर।

कुसुम कोई कुम्हलाया देख,
बहा देते नयनों से नीर ।
प्रकृति की अहो कृती संतान,
तुम्हारा है न कहीं उपमान ॥६॥

राज-महलों का वह ऐश्वर्य,
राज-मुकुटों का रत्न-प्रकाश ।
इन्हीं खेतों की अल्प विभूति,
तुम्हारे हल का है मृदु हास ।
स्वयं सह तिरस्करण अपमान,
अन्य को करते गौरव-दान ॥७॥

## कठिन शब्दों के अर्थ

औदार्यनिधान- उदारता का खजाना । जन-संकुल- मनुष्यों भरा हुआ । प्रासाद- महल । कुटीर- झोंपड़ी । मंजुल- सुन्दर । पंकप्रलेप- कीचड़ का लेप। समीर- हवा । अग्रहायण- अगहन, मगसिर । खलिहान- जहां फसल काटकर इकट्ठी की जाती व गाई जाती है, वह स्थान । गात- शरीर। निर्व्याज- निष्कपट । शस्य- धान, अनाज । खग-कुल गीर- पक्षियों के समूह का मनोहर गान। उपमान- दृष्टान्त मिसाल । तिरस्करण- तिरस्कार, दुत्कार ।

# पाठ ४० वाँ

## राजर्षि प्रसन्नचन्द्र।

दीर्घतपस्वी भगवान् महावीर के समय में पोतनपुर नामक एक नगर था। उसमें सोमचन्द्र राजा राज्य करते थे। उनकी पत्नी का नाम धारिणी और पुत्र का नाम प्रसन्नचन्द्र था।

किसी समय महारानी धारिणी महाराज सोमचन्द्र के सिर के केश देख रही थी। देखते-देखते उसे एक सफेद बाल दिखाई दिया। रानी ने यह कह कर कि "यह आपकी वृद्धावस्था की सूचना करता है", उसे राजा की हथेली में रख दिया। बाल देख राजा को बड़ी कचवाट हुई। उसने कहा—"हमारे पूर्वज श्वेत बाल होने से पहले ही राज-पाट छोड़कर प्रव्रज्या अङ्गीकार कर लेते थे। किन्तु मेरे कचों की कचास का नाश हो गया, तो भी मेरा हृदय दीक्षित होने में कचियाता है। मैं बड़ा अधम हूँ।" इतना कहकर राजा ने राज्य को तिनके की तरह त्याग कर प्रसन्नचन्द्र को राज-काज सौंप दिया और आप परिव्राजक हो गया। उसी समय रानी धारिणी और उनकी धाय राजा के साथ चली गई।

राजा सोमचन्द्र ने वन में जाकर तापस के व्रत लिए। रानी धारिणी जब वन में गई, तभी गर्भवती थी। उससे एक पुत्र का प्रसव हुआ। पुत्र के प्रसव होते ही धारिणी का शरीरान्त हो गया। तापसों के पास सिवा वल्कल के और धरा ही क्या था, जिससे पुत्र की हिफाजत करते? अतएव उन्होंने उस नव जात शिशु को वल्कल-वस्त्रों में लपेट रक्खा। इसीसे उसका नाम वल्कलचीरी

पड़ गया। रानी धारिणी मरकर स्वर्ग गई। उसने अवधि ज्ञान से अपने पूर्वभव का सारा वृत्तान्त जाना और पुत्र-मोह से मोहित हो, महिषी का रूप बना वल्कलचीरी को दूध पिलाने लगी।

बालक वल्कलचीरी शनैः शनैः बढ़ते २ बड़ा हुआ। वन के फलफूलों पर ही उसका निर्वाह होता था। जन्म से ही वह एकान्त कानन में रहा था, अतएव वह लोक-व्यवहार से सर्वथा अनभिज्ञ था।

इधर राजा प्रसन्नचन्द्र को जब यह समाचार विदित हुआ कि उसका छोटा भाई पिता के साथ वन में रहता है, तो उसने उसे किसी विश्वस्त आदमी को भेजकर बुला भेजा। किन्तु वल्कलचीरी आने को राजी न हुआ। उसे आया न देख उसने एक नवीन युक्ति निकाली। उसने कुछ वेश्याओं को बुलाया और सब बात समझाकर, प्रलोभन द्वारा बुलाने को कहा। वेश्याएँ सज-धज कर तरह २ के मिष्टान्न लेकर सिंहपोत वन में, जहां कि वल्कलचीरी अपने पिता के साथ निवास करते थे, रवाना हुई।

वन में जाकर वेश्याओं ने एक बाल ब्रह्मचारी क्षत्रियपुत्र को देखा। उसके ललाट पर दिव्य तेज विराज रहा था। शरीर सुभग, सुदृढ़ और कान्त था। गणिकाएँ उसे देख आपस में बतियाने लगीं—यह तापसकुमार कौन होगा? इतने में वल्कलचीरी भी उनके पास आपहुँचा। वह बाह्य बातों से अभिज्ञ तो था ही नहीं, गणिकाओं को देखकर उन्हें वन्दना की और बोला—अहो तापसो! आप कहां से पधारे हैं? आपका आश्रम कहां है? कहां जाइयेगा? वेश्याएं आकारप्रकार से उसे ताड़ गई और बोली *हम लोग वीतराग के यति हैं,* पोतन नामक आश्रम में हमारा

निवास है, यहां तुम्हारा दर्शन करने और तुम्हारी भक्ति करने आये हैं। गणिकाओं की बात सुन अतिथिसत्कारक वल्कलचीरी बोला—मैं ये फल-फूल वन से लाया हूँ इन्हें ग्रहण कीजिये। आज आपका सत्कार करके मैं कृतार्थ हुआ। वेश्याएं बोलीं—आपके फल बिलकुल नीरस हैं, इन्हें खाने को जी नहीं चाहता। हमारे पोतनाश्रम के फल अत्यन्त स्वादिष्ट हैं, उन्हें खाने के लिए मुंह से लार टपक पड़ती है। वल्कलचीरी ने उत्सुक होकर फल देखना चाहा, तो गणिकाओं ने सुस्वादु मोदक दिखाकर खाने को कहा। उसने ऐसे सरस फल कभी खाये न थे, अतः उसे वे बहुत रुचे। वह जिह्वा इन्द्रिय के प्रलोभन में फंसकर उन रंगे सियार तापसों के साथ चलने को कटिबद्ध हो गया। वेश्याएँ अनायास ही अपनी सफलता समझकर फूली न समाई। वल्कलचीरी उपकरण रखकर ज्यों ही आश्रम से लौट रहा था, त्यों ही सब वेश्याएँ राजर्षि सोमचन्द्र को आते देख रफूचक्कर हो गईं। वल्कलचीरी मृगपोत की भांति अकेला हो कर इधर-उधर भटकने लगा। इतने में पोतनपुर जाने वाला एक रथी उसे दृष्टिगोचर हुआ। उसे देख उसने नमस्कार किया और उसी के साथ हो लिया। वल्कलचीरी रथ में बैठी हुई स्त्री को देखकर बोला—तात! नमस्कार। रथी समझ गया कि इस तापस का वन में ही जन्म और लालन-पालन हुआ है, इसीसे इसे स्त्री-पुरुष का भेद नहीं मालूम है। कुछ दूर चलने पर वल्कलचीरी खेदखिन्न होकर फिर बोला—इन हरिणों को रथ में जोतकर वृथा ताड़ना क्यों देते हो? रथी ने कह दिया—इन बैलों ने पूर्वजन्म में ऐसे ही कर्म किये हैं, उसी का इन्हें फल मिल रहा है। इस प्रकार बातचीत करते २ पोतनपुर आ गया।

वल्कलचीरी पोतनपुर पहुँचकर गली २ दुकान २ भटकने लगा। उसे जब कोई स्त्री या पुरुष दिखाई देता, वह भ्रात या तात कह कर यथायोग्य वन्दना करता था। भटकते २ वह वेश्याओं के मुहल्ले में आ पहुँचा। वहां किसी वेश्याने उसे भूला हुआ ऋषितनय समझकर अपने आश्रम में रख लिया। वेश्या की प्रक्रिया से जब वह इन्द्रिय विषय की ओर आकर्षित हो गया तो उसने अपनी पुत्री उसे ब्याह दी। वल्कलचीरी सब कुछ भूल कर गणिकातनया के साथ भोगविलास में मस्त हो गया।

राजा प्रसन्नचन्द्र की भेजी हुई वेश्याओं ने आकर उसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। प्रसन्नचन्द्र को यह वृत्तान्त सुन वल्कल-चीरी की और भी अधिक चिन्ता सताने लगी।

कुछ दिन पश्चात वल्कलचीरी का पता चला। राजा प्रसन्न-चन्द्र ने वेश्या को बुलवाया और पूछा—तू ने मेरे भाई को अपनी पुत्री के साथ क्यों ब्याहा? वेश्या विनय से बोली-भूपाल! इसमें मेरा लेशमात्र भी दोष नहीं है। मैं जो ऐसा जानती, तो अपनी बेटी राजकुमार के साथ काहे को ब्याहती? दैवयोग से ही यह बनाव बन गया है। अनजान में जो कुछ हो गया, उसे भी क्षमा कीजिये। वेश्या को निर्दोष समझ राजा कुछ न बोला, किन्तु मंत्री के साथ जाकर ठाठ से पट्टहस्ती पर बैठा कर वल्कलचीरी को राजमहलों में ले आया। इसके बाद राजा प्रसन्नचन्द्र अपने अनुज के साथ आनन्द पूर्वक कालयापन करने लगा।

एक दिन वल्कलचीरी प्रसन्नचन्द्र के पुत्र को खेला रहा था। खेलाते २ उसे अपने बाल्यकाल की स्मृति हो उठी। उसने मन ही मन कहा—अभागे वल्कलचीरी! तू कैसा अधम है, तेरे

जन्मते ही माता परलोकवासिनी हो गई। किसी तरह पिता ने पाला-पोसा, लाड़-प्यार कर बड़ा किया, तो बुढ़ापे में उनका परित्याग कर भोग-विलासों में मस्त हो रहा! तेरा जैसा दुष्ट संसार में दूसरा कौन होगा? इस प्रकार विचारकर वल्कलचीरी ने पिता के पास जाने का निश्चय किया। उसने प्रसन्नचन्द्र से कहा— "मैं जब से पिताजी को छोड़कर आया हूँ, कभी वन्दना करने नहीं गया। अब, जब तक पिताजी के दर्शन न कर लूंगा, तब तक आहार ग्रहण न करूंगा।" प्रसन्नचन्द्र उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा सुन स्वयं भी दर्शनार्थ जाने को उद्यत हो गया। दोनों भाई मिल कर पिता के पास पहुंचे। उनके चरण-कमलों में प्रणाम करके दोनों सामने बैठे। पिताने उन्हें गोद में बिठलाया, उस समय उनके आनन्दाश्रु बह निकले।

कुछ देर बाद वल्कलचीरी वहां पहुंचा, जहां वह पहिले उपकरण छिपा गया था। वे सब धूल से भर गये थे, इसलिए अपने उत्तरीयवस्त्र से पोंछने लगा। पोंछते २ उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया। उसने देखा कि मैं पहले भवमें जैन श्रमण था और उसी के पुण्य प्रताप से देवलोक में जाकर यहां राजपुत्र हुआ हूँ। विचार करते २ उसके हृदय-समुद्र में वैराग्य की लहर उमड़ी बारह भावनाओं का चिन्तन करते २ थोड़ी देर में ही उसे केवलज्ञान हो गया। उसी समय केवली वल्कलचीरी ने राजर्षि सोमचन्द्र और राजा प्रसन्नचन्द्र को धर्मोपदेश दिया। सब मिलकर भगवान् महावीर के पास, जो उस समय पोतनपुर में विराजमान थे, पहुंचे। वहां भगवान् की दिव्यध्वनि सुनकर राजर्षि और राजा दोनों ने जैनदीक्षा अङ्गीकार की।

एक समय की बात है कि ज्ञातनन्दन प्रभु महावीर का वैभारगिरि पर समवसरण आया। राजगृह से महाराज श्रेणिक उनके दर्शनों के लिए गये। मार्ग में किसी वन में राजर्षि प्रसन्नचन्द्र एकाग्र मन से आत्म-ध्यान में तल्लीन थे। महाराज श्रेणिक ने महावीर स्वामी को यथाविधि वन्दना की और पूछा—भगवान् मार्ग में मैंने श्रीमान् प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को ध्यानस्थ देखा और वन्दना की। प्रभो! यदि उनका इसी समय शरीरान्त हो जाय तो किसी गति में जावें? भगवान् ने शान्त स्वर में उत्तर दिया—सातवें नरक में। यह उत्तर सुन श्रेणिक विस्मित सा हो रहा। उसने फिर पूछा— प्रभो! राजर्षि प्रसन्नचन्द्र का यदि अभी शरीरान्त हो, तो किस गति में जावें? भगवान् ने उत्तर दिया-छठे नरक में। इस नये उत्तर को सुनकर श्रेणिक का संशय और बढ़ गया। उसने उत्कण्ठित होकर फिर वही प्रश्न किया। अब की बार भगवान् बोले पांचवें नरक में। यह तीसरे ही उत्तर से श्रेणिक के विस्मय का ठिकाना न रहा। एक ही प्रश्न और उत्तर दाता केवली। भूल होने की आशंका नहीं, फिर भिन्न २ उत्तर क्यों मिल रहे हैं? यह बात श्रेणिक की समझ में न आ सकी। वह बारम्बार वही प्रश्न पूछने लगा और भगवान् प्रत्येक बार जुदे २ ही उत्तर देने लगे। अन्त में सर्वार्थसिद्धि का नम्बर आया भगवान् ने कहा—यदि राजर्षि का इस समय देहान्त हो तो सर्वार्थसिद्धि विमान में जावें। किन्तु श्रेणिक का संशय न मिटा। अब की बार उसने पूछा—भगवान्! ऐसा शंकाजनक उत्तर क्यों दे रहे हैं? भगवान् उत्तर देने को ही थे कि गगन में देवदुन्दुभि का नाद होने लगा। श्रेणिक के नाद का निदान—कारण—पूछने पर भगवान् पहले जैसे शान्त स्वर में बोले—राजर्षि प्रसन्नचन्द्र

को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई है, देवता उसका महोत्सव मना रहे हैं। श्रेणिक मानो स्वप्न देख रहा हो, इस प्रकार अटपटाकर बोला— नाथ! आप तो फिर भी संशयोत्पादक ही वचन कह रहे हैं। मेरी समझ में कुछ नहीं आया, स्पष्ट करने का अनुग्रह कीजिये। परम कृपालु भगवान् बोले—हे देवानुप्रिय! मैंने जो २ कुछ कहा है, ठीक ही कहा है। जीवों की गति परिणामों के अनुसार होती है और परिणाम सदा सदृश नहीं रहते समय २ परिवर्तित होते रहते हैं। जब तुमने ऋषि को वन्दना की थी, उनके शुभ परिणाम थे। तुम्हारे आगे बढ़ते ही तुम्हारा सुमुख नामक सेवक आया। उसने ऋषि की प्रशंसा की, तब भी उनके परिणाम शुभ ही रहे। सुमुख के अनन्तर दुर्मुख सेवक आया। वह ऋषि को देखकर बोला—अरे! यह पाखण्डी साधु बना बैठा है, और चंपा का राजा दधिवाहन आदि इसके अल्पवयस्क बालक को मार कर राज्य छीन लेंगे। दुर्मुख के दुर्वचन सुनते ही ऋषि समाधि से भ्रष्ट होकर मन ही मन मारकाट मचाने लगे—युद्ध करने लगे उस समय यदि उनका शरीरान्त होता तो वे सातवें नरक जाते। तुमने जब दूसरी बार प्रश्न किया तब युद्ध समाप्तप्रायः था सब अस्त्र शस्त्र बीत चुके थे। केवल एक ही शत्रु का काम तमाम करना अवशेष था। उसे मारने के लिए ऋषिने मुकुट लेने को मस्तक पर हाथ फैलाया। पर मुकुट को गायब देख उन्हें अपने पद की सुध आ गई। उन्होंने सोचा— अहो! मैं कौन हूँ? मैं तो यति हूँ। मैं सर्व प्रकार के परिग्रह का त्यागी हूँ। मेरी शत्रु मित्र पर समदृष्टि होनी चाहिए। इस प्रकार विचारश्रेणी के दूसरी ओर मुड़ते ही क्रमशः केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई।

सच है--प्रतिसमय अनन्त कर्मों का बंध होता रहता है। जीव यदि एक समय के लिए शुभ परिणाम रक्खे अनन्त शुभ कर्मों का उपार्जन कर सकता है। मनुष्य को चाहिए कि प्रतिसमय मन पर अंकुश रक्खे और शुद्ध भावों को प्राप्त करने की चेष्टा करता रहे।

### कठिन शब्दों के अर्थ

कषवाट- खेद, चिन्ता। प्रव्रज्या- दीक्षा। कचों- बालों। कच्चास- कच्चापन। कचियाता है- आगा पीछा करता है। वल्कल-छाल। महिषी-भैंस। अनभिज्ञ- अजान। गणिकाएँ- वेश्याएँ। रफूचक्कर- होना- चम्पत होना, भाग जाना। मृगपोत= हरिण का बच्चा। तनया- लड़की। पट्टहस्ती= मुख्य हाथी। उत्तरीय वस्त्र= ओढ़ने का कपड़ा। श्रमण- साधु। दुन्दुभि= एक प्रकार का बाजा। अटपटा कर- झिझक कर। अल्पवयस्क- थोड़ी उम्र का।

# पाठ ४१ वाँ

## अमृत वाणी

(१)

अनुभव जीवन का जीवन और विकास का साधन है। मनुष्य को जब तक शुभ और अशुभ दोनों प्रकार का अनुभव न हो उसे भले-बुरे का विवेक ही कैसे हो सकता है?

(२)

विचार वचन और वर्तन में सत्य की बान डालने से, शनैः शनैः आध्यात्मिक—आन्तर-दृष्टि जागृत होती है। वह दृष्टि शान्त होने पर भी इतनी तीक्ष्ण होती है कि माया के प्रत्येक आवरण की धज्जियां उड़ा देती है—उसके सामने किसी प्रकार का कपट सफल नहीं हो सकता।

(३)

छोटी-मोटी असुविधाओं की ओर, भोजन-आनन्द की ओर और शारीरिक सुखों की ओर विरक्ति धारण करने का अभ्यास डालो। बाह्य वस्तुओं के संयोग और वियोग को उदारता पूर्वक सहन करो। दुखों का सत्कार न करो तो दुत्कार भी न दो।

(४)

मन को संयत बनाने के लिए, हमारे मन में कैसे विचार आते हैं, इसकी छानबीन सदैव रखनी चाहिए और विचारों की पसंदगी का कार्य सदा चालू रहना चाहिए।

(५)

तुम्हें शीघ्र ही भान होने लगेगा कि ज्यों-ज्यों तुम अपने मन में शुभ या शुद्ध विचारों का स्वागत और अशुभ का निग्रह करते हो, त्यों-त्यों स्वतः ही शुभ विचार तुम्हारे मन में अधिक आने लगेंगे और अशुभ विचार कम।

(६)

जिसे, किसी व्यक्ति पर पूज्यभाव न हो उसे अपने मन को

एकाग्र करने का सफल साधन यही है कि वह कोई सद्गुण पसन्द करले और उसीको केन्द्र बनाकर मन को एकाग्र करे।

(७)

शास्त्रों में सम्यग्दर्शन—तत्त्वार्थश्रद्धान की गुण-गाथा क्यों गाई गई है? इसीलिए कि आत्मदर्शन में पड़ने वाली अड़चनों के समय यदि श्रद्धा न हो तो मनुष्य का मन डगमगा जाता है, और धैर्य टूट जाता है।

(८)

हमारे सामने जो आदर्श वर्त्तमान है, उसकी सफलता में होने वाले दुःख सांसारिक सुखों से लाख दर्जे अच्छे हैं। यही नहीं वरन् दुनियावी लाभों की अपेक्षा आदर्श की चिन्ता अतीव उपयोगी—मूल्यवान् भी है।

(९)

जैसे तुम्हें अपना दुःख मालूम होता है, वैसा ही दूसरों का दुःख मालूम होना चाहिए। हृदय-भेदन होने पर जैसे तुम्हें मालूम होता है, वैसा ही दूसरों के विषय में समझो। सदा स्मरण रक्खो—"आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।" अर्थात् तुम्हें जो आचरण अच्छा न लगे वह दूसरों के प्रति भी न करो।

## कठिन शब्दों के अर्थ

विवेक- भेद विज्ञान। शनैः शनैः- धीरे-धीरे क्रमशः। धज्जियां उड़ाना- छिन्नभिन्न करना। निग्रह- दबाना, काबू में करना। केन्द्र- मुख्य स्थान। गुण-गाथा- गुणों का समूह।

# पाठ ४२ वाँ

## आदर्श दम्पति

प्रातः काल का समय था। नियमित परिपाटी के अनुसार गुरुदेव के व्याख्यान का समय हो रहा था। श्रावक और श्राविकाओं के समूह के समूह उपाश्रय की ओर बढ़े चले जाते थे। सब की दृष्टि गन्तव्य मार्ग में गड़ी हुई थी शायद इसलिए कि पदाघात से किसी जीव जन्तु की हिंसा से पाप के गढ़े में न गिर पड़े। धरती की ओर झुके हुए सब के मस्तक ऐसे मालूम होते थे, जैसे गुरुभक्ति के भार से ही झुक गए हों। बगल में मनोहर महल अपना सिर ऊँचा किए खड़े थे। किन्तु इनमें से कोई उनकी ओर आंख उठाकर भी न देखता था, जिससे साफ प्रकट होता था कि इनकी दृष्टि में गुरुभक्ति और धर्म के सामने इन महलों का कुछ भी महत्व नहीं है। जो लोग उपाश्रय में पहुँचते, वे गुरु महाराज को विधिपूर्वक वन्दना नमस्कार करके उनकी सुख-साता पूछकर शिष्टाचार का पालन कर नियत स्थान पर बैठते जाते थे।

व्याख्यान का समय हो चुका। गुरु महाराज ने अपने मुख-चन्द्र से उपदेश-पीयूष की वर्षा करना प्रारम्भ किया, श्रोता जन बड़े चाव से उसे पान करने लगे। उनके चेहरे प्रसन्न थे, मानो उपदेशामृत का पान करके अजमरामर होने से उनके सब मनोरथ पूरे हो गये हैं। महाराज ने आज ब्रह्मचर्य की महिमा बताई। वे कहने लगे–भद्रजीवो! ब्रह्मचर्य मानवजीवन की शान्ति का प्रथम सोपान है। जिसने इस वासना को जीता, उसे शेष चार इन्द्रियों को जीतना बहुत सुगम है। अतः पहले पहल इस वासना का

शमन कर दूसरी इन्द्रियों की वासनाएँ अपना सिर उठावें उससे पूर्व ही उन्हें आत्मसागर में मिला देने से आत्मा पूर्ण शान्ति का अनुभव कर सकता है। वास्तविक मनुष्यत्व ब्रह्मचर्य में ही है।" इत्यादि कह कर गुरुदेव ने व्याख्यान समाप्त किया। सब श्रोता एक एक करके अपने २ स्थानों पर जाने लगे। इतने में एक सुन्दर सुकुमार बालिका गुरु महाराज के सामने आकर खड़ी हुई। वह बोली–पूज्य! मुझे यह व्रत दीजिये।

गुरुजी बालिका की यह अभ्यर्थना सुन, मुसकिरा दिये। उनकी मुसकराहट में बालिका की अभ्यर्थना में अज्ञानता की आशंका थी।

"बालिका! तू अभी बहुत छोटी है। तुझे अभी इस व्रत की क्या आवश्यकता है?।"

"गुरुजी! जीवनक्षितिज पर काले मेघों की घन घोर घटाएँ उमड़ें उससे पहले की मेरी यह तैयारी क्या अयोग्य है?"

"किन्तु यह ब्रह्मचर्य व्रत बहुत कठिन है"

"पूज्य! कठिन है, पर सुन्दर भी है न? इसीसे मेरा मन ललचाता है" बालिकाने यह बात निडरता पूर्वक निःसङ्कोच होकर कही।

"बोलो! किस प्रकार व्रत लेना चाहती हो?"

"महाराज! आजन्म ब्रह्मचर्य पालन करने की मेरी तीव्र लालसा है।"

बालिका! तू क्या कहती है, इसका तुझे भान है? किसी वृत्ति को एकदम दबा देने से आघात-प्रत्याघात के नियमानुसार उस

वृत्तिका बल बढ़ता जाता है। किसी वृत्ति को काबू में करने के लिए धीरे २ प्रयत्न करना चाहिए"

"गुरुजी! आपका कहना यथार्थ है। संयम तन और मन को उन्नत बनाकर आध्यात्मिक जीवन का साक्षात्कार कराता है। मैं इस प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिए अधीर हो रही हूँ क्या इसमें आप सहायता न करेंगे?"

"अच्छा, मेरा कहना मानोगी? ।"

"जी हां" कहकर बालिका महाराज की ओर उत्कण्ठा से देखने लगी "बालिके! तू इतनी प्रतिज्ञा कर कि—"कृष्णपक्ष में मन वचन और काय से जीवन पर्यन्त शुद्ध ब्रह्मचर्य पालूँगी।"

"गुरुजी! आज्ञा स्वीकार है।" कहकर बालिका खुशी-खुशी चली गई,

बालिका का नाम विजया था। उसके पिता का नाम धनावह था। धनावह कच्छदेश के नामी सेठ थे।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

उसी नगर में एक अर्हद्दास सेठ रहते थे। उनके लड़के का नाम विजयकुमार था। विजयकुमार बहुत प्रतापी था। उसने भी एक दिन गुरु महाराज के श्रीमुख से ब्रह्मचर्य का महत्व सुनकर शुक्लपक्ष में ब्रह्मचर्य पालन करने की प्रतिज्ञा ली।

जिस दिन विजयकुमार प्रतिज्ञा लेकर घर लौटा उसी दिन अर्हद्दास ने उसकी सगाई की चर्चा छेड़ी। वे बोले—"विजय! आज इसी नगर में रहने वाले धनावह श्रेष्ठी के यहां से सगाई की बात कही गई है। तुम्हारी क्या इच्छा है?"

विजय०—"पिताजी! मुझे क्या चिन्ता है? आप जो करेंगे, वह उचित ही करेंगे।"

पुत्र की सम्मति समझकर अर्हद्दास ने धनावह की पुत्री विजया से विजयकुमार की सगाई पक्की कर दी। जब विवाह का समय आया, तो खूब धूमधाम मची। दोनों ओर से तैयारियां होने लगीं। यथासमय बरात आई। सब शिष्टाचार का यथायोग्य पालन हुआ। अन्त में पाणिग्रहण का शुभ मुहूर्त आ गया। पुरोहितजी ने पाणिग्रहण कराया और उपस्थित समुदाय की ओर लक्ष्य कर बोले—क्या आप लोगों में से कोई यह बतावेगा कि पाणिग्रहण का क्या रहस्य है?। सभा में सन्नाटा छा गया। जब किसी ने कुछ उत्तर न दिया तो पुरोहितजी कहने लगे—"पाणिग्रहण करके भी पाणिग्रहण का रहस्य न समझने से विवाहित स्त्रीपुरुष चतुर्भुज नहीं बल्कि चतुष्पद होते हैं और उनका गृहस्थ जीवन, जो कि स्वर्गीय जीवन से भी उत्तम है, अनिष्ट का कारण हो गया है। पाणिग्रहण का अभिप्राय बहुत गूढ़ नहीं है, परन्तु विचार-बुद्धि जब तक जिस ओर जरा भी आकृष्ट न हो, तबतक सहज से सहज बात भी हमारे मस्तिष्क में नहीं आ सकती। विकृत बने हुए सामाजिक संस्कारों से संस्कृत बालक-बालिकाओं के हृदयों में विषय-तृप्ति-लालसा की दुर्गन्ध अपना साम्राज्य स्थापित कर लेती है, तब यथार्थ विचार और बुद्धि रूपी सुरभि पास भी नहीं फटकने पाती। यही कारण है कि लोग गृहस्थ-जीवन के प्रथम सोपान पाणिग्रहण का भी तत्त्व नहीं जानते। अस्तु, सब जानते हैं कि मित्र के साथ हाथ मिलाया जाता है, दास दासी के साथ नहीं। अतः स्त्री को दासी नहीं वरन् मित्र के समान गिनना चाहिए। जीवन की आड़ी-टेढ़ी पगडंडियों को

तय करने में यह दूसरा हाथ, रिपु और विरोध भावना का संहार करने के लिए शक्तिमान् है।"

पुरोहितजी ने समयोचित शिक्षा देकर सब क्रियाएँ समाप्त की। विवाहोत्सव सानन्द समाप्त हुआ। बरात वापस लौट गई। विजया, जो अब तक सुहावनी २ बातें कह माता-पिता का दिल बहलाव करती थी, उन्हें त्याग कर जीवन के नवीन मार्ग की यात्रिणी बनी। अब तक वह बालिका थी, अब स्वामिनी हुई।

\+ + + + +

यथासमय पति-पत्नी का सम्मिलन हुआ। विजयकुमार ने अपनी प्रतिज्ञा की बात छेड़ी। विजया ने जब जाना कि पतिदेव की शुक्लपक्ष में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा है तो वह चंचल नहीं हुई। उसने दृढता से कहा—"आपने जो प्रतिज्ञा ली है, उसमें मैं और भी सहारा दूंगी।"

विजया की यह गोलमोल बात विजयकुमार की समझ में न आई। उसने कहा "विजया! जैसे तुम्हारी गंभीरता का माप करना मेरे लिए असंभव है, वैसे तुम्हारे वार्तालाप को समझना भी क्या संभव न होगा। देवि! जैसे तुम्हारा हृदय सरल है, वैसे ही सरल भाषा में बोलो, तो काम न चलेगा"? विजयकुमार के व्यंङ्ग्य से विजया कुछ लज्जित-सी हो कर बोली—"आपने शुक्लपक्ष में ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा ली है और मैंने कृष्णपक्ष में।"

विजय—ऐ! क्या यह बात सच है? तुमने सचमुच ऐसी प्रतिज्ञा ली है?"

विजया—"पतिदेव! सच है, बिलकुल सच। और इसी में मुझे सुख का अनुभव होता है। घबराइये नहीं शरीर-सुख का

तो अनेक साधन हैं, परन्तु आत्मिक-सुख का ऐसा साधन किसी भाग्यवान् को ही नसीब होता है।"

विजय०—पर......

विजया—इसमें 'पर' 'अपर' के लिए कोई स्थान नहीं है। मैं आज से ही दोनों पक्षों (पखवाड़ों) में ब्रह्मचर्य का पालन करूँगी, और आप शुक्लपक्ष में ही ब्रह्मचर्य पालन कीजियेगा।'

विजय०—यह क्योंकर होगा विजया! तुम दोनों पक्षों में ब्रह्मचर्य पालन करोगी, और मैं एक पक्ष में, यह कैसे संभव है? मालूम होता है इस समय तुम्हारा मस्तिष्क अस्थिर हो रहा है, इसीसे ऐसी बेजोड़ बातें निकल रही हैं।

विजया—नाथ! मेरा मस्तिष्क अस्थिर नहीं है, न बात ही बेजोड़ है। जिसके हो सकने का उपाय है, वह असंभव नहीं। अनुग्रह करके आप दूसरा पाणिग्रहण कर लीजिये।

विजय०— विजया! भोली विजया! तू नहीं समझती कि मैं क्या कह रहा हूँ। क्या विशुद्ध प्रेम का कभी विभाग हो सकता है? या तुम मेरे प्रेम की परीक्षा करना चाहती है? क्या तुम समझती हो कि मैं विषय-वासना की तृप्ति के लिए आत्महनन करूँगा? क्या भोगलालसा को पूर्ण करने के लिए जीवन की अमूल्य भावनाओं का होम कर दूंगा? जैसे सती साध्वी स्त्रियों को एक ही जन्म में दूसरा पति असंभव है, वैसे मेरे लिए भी एकपत्नी व्रत ही बस है।

विजया— नाथ! संसार में सौतिया-डाह प्रसिद्ध है। कदाचित् आपको भी इससे भय होगा। मैं विश्वास दिलाती हूँ कि

मैं उसे बहिन के समान गिनूँगी, और उसका आदर-सम्मान करूँगी। क्या अभी भी मेरी प्रार्थना स्वीकृत न होगी?

विजय०— मुझे यह बात नहीं रुचती। क्या आत्मवाद की बातें करने वाला जैनपुत्र हाड़-मांस चींथने के लिए तैयार होगा? विजया! मैं इतना अधम नहीं हूँ कि पत्नी-प्रेम के पवित्र आदर्श को कलंकित करूँ। गृहस्थजीवन में रहकर चतुर्थ पुरुषार्थ की प्राप्ति के लिए तैयारी करना विवाह का लक्ष्य है, भोग-लालसा को चरितार्थ करना नहीं। भोग-लालसा का चरितार्थ करना विषयी पुरुषों के द्वारा उत्पन्न किया हुआ निम्नतम विकार है। द्वितीय पाणिग्रहण करना, इस विकार की पुष्टि का स्पष्ट साक्षी है। मैं इसे पाप समझता हूँ। विजया! मुझे इस पापपङ्क में पटकने का प्रयत्न न करो। तुम मेरी उन्नायक हो, तुम्हारे मुख से ऐसी बातें शोभा नहीं देतीं।

विजया, पति का युक्तिपूर्ण उत्तर और अलौकिक दृढ़ता देख चुप हो रही। कुछ देर के लिए सन्नाटा हो गया शान्ति को भंग कर विजयकुमार बोले लेकिन हमें इसकी बहुत सावधानी रखनी चाहिए कि माता-पिता को हमारी प्रतिज्ञा की खबर न होने पावे, यदि खबर पड़ी तो उन्हें बहुत दुःख होगा।

"पर छिपा रखना तो बहुत कठिन है"

"यदि प्रगट हो जाय, तो मुनिदीक्षा ले लेनी होगी"

\+ \+ \+ \+ \+

आज प्रातःकाल से ही चहल पहल मची है। बालक से लेकर बूढ़े तक सब लोग नगर बाहर चले जा रहे हैं। हर एक की

जिह्वा पर केवली भगवान् की बात है। उनकी बातचीत से ही विदित होता है कि नगर के बाहर केवली भगवान् पधारे हैं।

आज केवली भगवान् ने, अपनी देशना में विजयकुमार सेठ और विजया सेठानी की खूब प्रशंसा की। वास्तव में गृहस्थी का परित्याग कर ब्रह्मचर्य पालन करने की अपेक्षा, गृहस्थी में स्त्री के पास रहते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य के पालन करने में अधिक जितेन्द्रियता और विशुद्ध उपयोग की आवश्यकता है। केवली भगवान् के मुखारविंद से इस दम्पति की प्रशंसा सुनकर जिनदास नामक एक सेठजी को उनके दर्शन करने की उत्कण्ठा हुई। वे दर्शन करने चले पहले पहल यकायक विजयकुमार के पिता से उनकी भेंट हुई। अब तक उन्हें जिस बात का स्वप्न में भी ध्यान न था, वही सुनकर उनके मानस-समुद्र में तरह २ के विचारों की तरंगें उठने लगीं। अपने सुपुत्र का संयम और केवली भगवान् द्वारा की हुई प्रशंसा का विचार करते ही उनकी रोम-राजि मारे हर्ष के पुलकित हो उठती, कभी ममता-वश संसारिक सुख से वञ्चित समझ खेदखिन्न हो जाते।

इधर, दम्पति को जब यह विदित हुआ कि हमारी प्रतिज्ञाओं का हाल पिताजी पर प्रकट हो चुका है, तो दोनों ने पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार मुनि और आर्यिका की दीक्षा अङ्गीकार की। ब्रह्मचर्य की धधकती हुई भट्टी में कुछ कर्मेंधन स्वाहा हो ही चुका था, शेष बचे हुए कर्मों का आत्यन्तिक नाश कर अनन्त अनुपम अनिर्वचनीय आनन्द-स्थान-मुक्ति को प्राप्त किया।

## कठिन शब्दों के अर्थ

परिपाटी- चाल परम्परा। गन्तव्य मार्ग- जिस मार्ग से चल रहे हों। अभ्यर्थना- प्रार्थना। क्षितिज- पृथ्वी का एक दूर का हिस्सा जो ऊँचे स्थान पर खड़े होकर देखने से चारों ओर दिखाई पड़ता हुआ वह वृत्ताकार स्थान जहां आकाश और पृथ्वी दोनों मिले जान पड़ते हैं। आघातप्रत्याघात का नियम- आघात करने से फिर भी आघात होता है, यह नियम, जैसे गेंद को जोर से धरती पर पटकने से वह फिर ऊपर उछलती है। साक्षात्कार-प्रत्यक्ष। सन्नाटा- शान्ति नीरवता। चतुर्भुज- विष्णु, चार हाथों वाला। चतुष्पद- पशु। विकृत- विकार वाले, दूषित। संस्कृत जिनमें- संस्कार मौजूद हो। सुरभि- सुगन्ध। रिपु- बैरी। व्यङ्ग्य- गूढार्थ वाक्य, ताना। बेजोड़- असम्बद्ध, बे सिर पैर की। अनिर्वचनीय- जो शब्दों से न कहा जासकता हो, केवल अनुभव से मालूम पड़ने वाला हो।

# पाठ ४३ वाँ

## सूक्तियां

(१)

निरधि से नीरद न लेता खारेपन को है,
मीठेपन को ही युक्तियुक्त अपनाता है।
क्षीर से अलग कर नीर को विवेक हँस,
क्षीरभाग पानकर अति मोद पाता है॥
विषधर-विष को छूता है समीर कभी,

चन्दन--सुगन्ध को दिगन्त पहुँचाता है।
दूसरे के दोष को न देखता सुजन कभी,
पर-गुण-गण खोजना ही उसे आता है॥

(२)

छाया, फूल, फल, शाखो देता है सभी को सदा,
चाहे आप जाके उसे सींचिए या काटिए।
शीतल सुस्वादु नीर कूप क्या पिलाता नहीं,
मन चाहे आप उसे खोदिए या पाटिए॥
सभी की क्षुधा को समभाव से बुझात अन्न,
चाहे उसे सलिल से धोइए या छांटिए।
सुजन परार्थ से न मुख मोड़ता है कभी,
चाहे उसे स्तुति को सुनाइए या डांटिए॥

(३)

कैसा वह पारस जो लोहा को न सोना करे,
विप्र वह कैसा जिसे शास्त्र का न ज्ञान है?
वज्र वह कैसा जो न पर्वतों को चूर्ण करे,
कैसा वह क्षत्री जो कि नहीं बलवान है?
कल्प-तरु कैसा जो न कामना को पूर्ण करे,
वैश्य वह कैसा जो कि करता न दान है?
खल वह कैसा जो न निन्दा करे सज्जनों की,
साधु वह कैसा जिसे खलपर न ध्यान है?

(४)

शिर-मात्र शेष रह जाने पर भी सरोष,
क्या न राहु शत्रुओं से बदला चुकाता है?

राहु-मुख--अर्द्धग्रास बनकर भी दिनेश,
क्या न तम-राशि का विनाश कर पाता है?
जब तक पावक न भस्मता को प्राप्त होता,
क्या न तब तक वह काठ को जलाता है?
तब तक वीर धीरता को छोड़ता है नहीं,
जब तक नहीं वह मर मिट जाता है।

(५)

रवि के आलोक को विलोक कोक खिलता था,
जल--हीन होने पर वही मुरझाता है।
वायु के झकोरे से बचाया जिस अञ्चल ने,
दीपक को, फिर वही उसको बुझाता है॥
जिस जल-कण ने बचाया प्राण चातक का,
बन के उपल वही उसको मिटाता है।
सुसमय पा के मानो मित्र-भाव रखता जो,
कुसमय पाके वही शत्रु बन जाता है॥

(६)

शत्रु, मित्र, पुत्र, या कलत्र भी किसी के साथ,
कोई कभी आता नहीं प्राण एक आता है।
तन मन धन क्या निधन कभी होंगे नहीं,
फिर अपकृत्य कैसे मानव को भाता है॥
धर्म का निदान दया, दान को निधान मान,
शुभ कर्म कीजिए जो सब सुख-दाता है।
काल के कराल गाल में ही लीन होंगे सभी,
भूमि पर सुयश, अयश रह जाता है॥

(७)

थोड़े दिन पल्वल के तीर में बिता ले हंस,
देख व्योम बीच मेघव्यूह चलने लगा।
कुछी दिनों केतकी के कांटों से बचा ले अङ्ग,
देख भृङ्ग जलज का जाल खिलने लगा॥
कुछ काल खेल खाके भग जा विदेशी खंज,
देख अग्नि कुण्ड-सा दिनेश जलने लगा।
इने गिने दिनों तक धैर्य रख सुजन तू,
देख वह दुर्जन का पांव हिलने लगा॥

(८)

जलधि के मध्य से निकल के डपोरशङ्ख,
सच बोल यहां पर किस हेतु आया है?
निपट लबार और हो के धोखेबाज तू ने,
अति भव्य शुभ्र रूप किस भांति पाया है?
वचन के दान करने से कभी चूकता न,
बड़े बड़ों को भी वाक्यजाल में फँसाया है।
तुझ से किसीने कुछ पाया नहीं आज तक,
जिसको मिलाया उसे धूल में मिलाया है॥

(९)

हमीं गुरु शिष्य हमीं बाल वृद्ध और हमीं,
प्रजा प्रजानाथ और हमीं ज्ञेय ज्ञान हैं।
धनिक भिखारी हमीं, सुखित दुखारी हमीं,
हमीं गुणवान हमीं दोष के निधान हैं॥
हमीं हैं अनाथ हमीं नाथ हैं सनाथ के भी,

हमीं अभिमान हमीं तुच्छ हैं महान हैं।
हमीं यमराज राजराज और रङ्क हमीं,
हमीं जीव, ईश हमीं भीरु बलवान हैं॥

(१०)

एकता में द्वैतता की झलक दिखाती जिन्हें,
जाति या समाज में भी जो हैं बिखरे हुए।
देश का या वेश का है जिनमें आवेश नहीं,
जिनमें विदेशियों के भाव हैं भरे हुए॥
नर-सिंह होने पर भी जो नर गीदड़ों से,
नरता को छोड़ कर रहते डरे हुए।
जीते यदि आप हैं तो जीते जी न भूलियेगा,
जानिए न जीते उन्हें मानिए मरे हुए॥

(११)

चेत! हा अचेत सा पड़ा है क्यों तू चेतता न,
बार बार मानव-शरीर को न पायगा।
विरत हो कामना से रह परमार्थ-रत,
विषय को भोग कर कभी न अघायगा॥
करना जिसे हो उसे कर अविलम्ब क्योंकि
नहीं रह जायगा तू काम रह जायगा।
खायगा किसे न काल, तू क्या पछतायगा न
विकराल काल तुझे लेने जब आयगा॥

## कठिन शब्दों के अर्थ

+ नीरधि- समुद्र । नीरद- मेघ । क्षीर- दूध । विषधर-विष- साँप का जहर । समीर- हवा । दिगन्त- दिशाओं का अन्त । शाखी- वृक्ष । पाटिए- पूरिए । सरोष- गुस्सा सहित । ग्रास- कौर, कवल । दिनेश- सूर्य । कोक-कमल। उपल-पत्थर(गड़े)। कलत्र-स्त्री । निधन-मरण,विनाश । गिदान- मूल । निधान- खजाना । पल्वल- तालाब, तलैया । व्योम- आकाश- । व्यूह- समूह । केतकी- केवड़ा । भृङ्ग- भौंरा । जलज- कमल । खंज- एक तरह का पक्षी। ड्पोरशंख-कुछ नहीं देने वाला, खाली बोलने वाला । निपट- निरा, बिलकुल । लबार- गँवार, फूहड़ । दुखारी- दुखी । आवेश- अभिमान । नरसिंह- मनुष्यों में शेर के समान अत्यन्त पराक्रमी । नरगीदड़- दब्बू, डरपोक, कमजोर । अविलम्ब- विलम्ब न करके, शीघ्र ही । विकराल- भयंकर, भीषण ।

॥ इति सम्पूर्णम् ॥

---

+ जल अर्थ वाले शब्द के आगे 'धि' जोड़ने से समुद्र का और 'द' जोड़ने से मेघ का और 'ज' जोड़ने से कमल का अर्थ हो जाता है ।

पुस्तक मिलने का पता—

**अगरचन्द भैरोंदान सेठिया**

**जैनशास्त्रभण्डार (लाइब्रेरी)**

**बीकानेर (राजपूताना)**

पुस्तक मिलने का पता—

**अगरचन्द भैरोंदान सेठिया**

जैन शास्त्रभण्डार (लाइब्रेरी)

बीकानेर [राजपूताना]

सेठिया जैन प्रिंटिंग प्रेस बीकानेर में मुद्रित १—५—२८